इस्लाम के दीपक
प्रसाद उपाध्याय

ओ३म्

इस्लाम के दीपक

★

लेखक

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०

प्रकाशक

ट्रैक्ट विभाग, आर्य समाज चौक,

इलाहाबाद

प्रथमवार]   १९६३   [मूल्य ५)

विषय-सूची

अध्याय	विषय		पृष्ठ

———

अध्याय १

अथ—श्री

कुछ दिनों से हम अरबी भाषा का और विशेषतया कुरान शरीफ़ का अध्ययन कर रहे हैं। यह अध्ययन हम अपनी नंगी आँख से कर रहे हैं, न तो कट्टर मुसल्मानों की उस ऐनक के द्वारा जिससे हज़रत मुहम्मद साहेब या इस्लाम धर्म की हर बात सर से पैर तक श्रेष्ठ गुणों से युक्त और सुन्दर भावों से भरी दिखाई पड़ती है और जिसके कारण साधारण मुसल्मान किसी बात में अपनी बुद्धि लगाना पाप और दण्डनीय समझता है। और न उस ऐनक से जो इस्लाम धर्म में कोई अच्छी बात देख ही नहीं सकती। हमारे अध्ययन का परिणाम यह है कि कुरान शरीफ़ में बहुत सी बातें लगभग वही हैं जिनको भारत के ऋषि मुनि प्राचीन काल से मानते चले आये हैं। और इस्लाम के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद साहेब ने जिन पर पर्याप्त बल दिया है। साथ ही हमको यह जानकर आश्चर्य हुआ कि साधारण मुसल्मानों के इस्लाम और हज़रत मुहम्मद साहेब के आरंभिक इस्लाम में उतना ही भेद है जितना वैदिक ऋषियों के एक-ईश्वर-वाद और विन्ध्याचल के देवी पर बकरा चढ़ाने वाले हिन्दू ब्राह्मण के विश्वासों में है। वैदिक ऋषि और विन्ध्याचल के पंडे के मध्य में लाखों वर्षों का अन्तर है और हम सुगमता से समझ सकते हैं कि इस दीर्घ काल में ज़माने ने कब-कब और किस प्रकार पलटा खाया होगा। पत्थर का कोयला अपनी आकृति से बता रहा है कि आरम्भ में मैं न पत्थर था न

कोयला। अपितु मैं एक हरा भरा वृक्ष था जिसमें हरे-हरे पत्ते और हरी-हरी शाखायें थीं। मेरा रंग काला नहीं था। न मुझमें पत्थर की कठोरता थी। प्रकृति ने मुझे भूमि में दबा दिया और भूगर्भ की गरमी ने मेरी दशा बदल दी। यह परिवर्तन साल दो साल या दस पाँच साल में नहीं हुआ। इतने दिनों में तो भूमि में गाड़ी हुई लाश भी इतनी नहीं बदलती। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि इन परिवर्तनों के लिये हजारों और लाखों वर्ष चाहियें। हर एक पत्थर के कोयले पर जिसे आप रेल के इंजनों में जलता देखते हैं इन परिवर्तनों का लाखों साल का इतिहास अंकित है। अफ्रीका के किम्बरले (Kimberley) नगर में जाकर वहाँ की हीरे की खदान का अवलोकन कीजिये। वह कीमती हीरा जो आज हजारों रुपयों को बिकता है किसी समय यही पत्थर का कोयला था। प्रकृति ने अपने सूक्ष्मतम नियमों द्वारा साधारण पत्तों को कोयला बनाकर फिर उस कोयले को हीरे के रूप में बदल दिया। यह है कुदरत का खेल ! हम जिसको खेल कहते हैं वह वस्तुतः खेल नहीं है। सृष्टि-नियम के एक अनन्त प्रवाह की साक्षी है। इसलिये सृष्टि-क्रम के इस परिवर्तन के अन्तर्गत यदि मानवी निर्बलताओं ने एक ईश्वर-भक्त वैदिक ऋषि की सन्तान को विन्ध्याचल के अन्धविश्वासी के रूप में बदल दिया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु इस्लाम धर्म के लिये तो अभी अधिक से अधिक चौदह सौ वर्ष ही गुज़रे हैं। भारत के प्राचीन इतिहास के आगे तो यह बहुत अल्प काल है। इस थोड़े से समय में इस्लाम कहाँ से कहाँ पहुँच गया! यह बात हर एक की समझ में आसानी से नहीं आती। आज एक मुसलमान जो हज करने जाता है। दूरस्थ देशों की लम्बी यात्रा की यातनाओं को सहन करता है। अपनी आयु भर की कमाई खर्च करता है और

अरब देश के कष्ट-प्रद जल-वायु का सामना सिर पर कफ़न बाँध कर करता है और ऐसे दृढ़ विश्वास से करता है कि उसे स्वर्ग मिलेगा और जब वह स्वर्गलोक में प्रवेश करेगा तो पुराने सब कष्ट विस्मृत हो जायँगे। उसके समक्ष मुसल्मान विद्वान् कवियों के यदि निम्न पद्य रख दिये जायें तो वह इनको समझ न सकेगा :—

'ओ हज्ज करने वालो' कहाँ जाते हो ? कहाँ जाते हो ? तुम्हारा प्यारा तो यहीं है। लौट आओ, लौट आओ। प्यारा तो तुमसे सटा बैठा है। तुम्हारा पड़ोसी (पार्श्ववर्ती) है। तुम कहाँ जंगल में भटकते फिरते हो।'*

पर केवल इस्लाम ही इस अन्ध विश्वास का शिकार नहीं है। हर धर्म के अनुयायियों में यह निर्बलतायें दिखाई देती हैं। हर देश और जाति के इतिहास में यह चढ़ाव उतार मिलते हैं। धर्म-सम्प्रदायों के संस्थापकों और संरक्षकों की शिक्षायें साधारण अनुयायियों के हाथ में पड़कर कितनी दूषित हो जाती हैं इसके लिये हर मज़हब और हर मुल्क के इतिहास में उदाहरण मिलेंगे। जो घटना प्राचीन काल में घटी वह वर्तमान में भी घट रही है और भविष्य में भी आकर रहेगी। इसलिये जो लोग अपने तथा मानव जाति के कल्याण के लिये सुधार के इच्छुक हैं उनके लिये आवश्यक है कि हर बात की बुद्धि की कसौटी पर कसते रहें 'और जहाँ बिगाड़ देखें वहीं सुधार का यत्न करें। कुरान शरीफ़ की निम्नलिखित आयत न

---

* ऐ क़ौम बहज रफ्ता कुजा एद। कुजा एद। माशूक़ हमीनस्त बिआयेद, बिआयेद। माशूके तो, हम सायये तो दीवार ब दीवार। दर वादिये सरगश्ता चिरायेद चिरायेद ॥

केवल मुसल्मानों के लिये ही अपितु दूसरों के लिये भी सोचने योग्य हैं :—

"क्या तुम दूसरों के लिये ही भलाई की शिक्षा देते हो ? और अपने को भूल जाते हो ? तुम शास्त्र पढ़ते हो। क्या समझते नहीं हो।"*

जिस दोष की ओर कुरान में संकेत है उसके अपराधी सभी धर्मों के अनुयायी हुआ करते हैं और विशेषतः वह जिन्होंने धर्मोपदेश और धर्म प्रचार का काम अपने ऊपर लिया होता है। यह स्वयं तो कुमार्ग पर चलते हैं परन्तु दूसरों को उच्च स्वर से उपदेश देते हैं। यह शास्त्र पढ़ते भी हैं और पढ़ाते भी हैं परन्तु शास्त्र के सत्य अर्थ को समझने का यत्न नहीं करते। जो मुसल्मान अन्य मतावलम्बियों को काफ़िर कहता है और उसको घृणा की दृष्टि से देखता है वह स्वयं एक अल्लाह को भूल कर कबरों के सामने सिजदा करता है। काबे में जाकर काले पत्थर (संगे असवद) का वैसा ही सन्मान करता है जो एक हिन्दू मन्दिर में जाकर किसी मूर्ति की करता है। लेकिन जो कसौटी उसने दूसरों के कर्मों को जाँचने के लिये बना रक्खी है उसका अपने ऊपर प्रयोग नहीं करता। कुरान शरीफ़ का संकेत ऐसे ही लोगों की ओर है। महात्मा तुलसीदास ने भी तो यही कहा था कि "पर उपदेश कुशल बहुतेरे"। अर्थात् दूसरों को उपदेश करने वालों की दुनियां में कमी नहीं।

'इस्लाम के दीपक' से हमारा तात्पर्य उन आन्दोलनों से है जो हज़रत मुहम्मद साहेब या कुरान शरीफ़ के द्वारा मानवी अविद्या के अन्धकार को दूर करने के लिये प्रस्तुत किये गये।

---

* अ तअमुरौनन्नास बिल् बिर्रिवतंसौन अन्फ़ुसकुम्। व अन्तुंतत्-लूनल्किताब। अफ़लाताक़िलून (बक़र ३४)।

इनमें कितने सफल हुये कितने अपूर्ण रहे और कितने सर्वथा असफल रहे इन पर विचार करना हर मनुष्य का कर्तव्य है। अँधेरे को दूर करने के लिये दीपक जलाये जाते हैं अरबी भाषा में दीपक का पर्य्याय है *"मिस्बाह"*। सुबह होती है तो रात की अँधेरी दूर हो जाती है। दीपक के जलाने से भी वही अँधेरी दूर होती है। परन्तु हर दीपक न पूरा प्रकाश देता है न देर तक जलता है। हर दीपक के जलने के लिये तेल चाहिये और बत्ती चाहिये। बिजली के दीपक के लिये भी एक पावर-हाऊस चाहिये जहाँ से बिजली का सिलसिला बराबर जारी रहे। हज़रत मुहम्मद साहेब ने भी एक दीपक जलाया। और यथा-शक्ति यत्न किया कि इसके प्रकाश से हर मनुष्य को लाभ पहुँचे। परन्तु ईश्वर को छोड़कर और कोई सत्ता निर्विकार नहीं है। हर संस्था या प्रगति निर्बल मनुष्य के हाथों में पड़कर निर्बल हो जाती है। यह कैसे हो सकता है कि किसी दीपक में इतना तेल डाल दिया जाय कि अनन्त काल तक बना रहे।

हमारे इन लेखों को पढ़कर आर्य समाज के लोगों को तो बहुत आश्चर्य होगा। वह आश्चर्य से पूछेंगे कि क्या कुरान शरीफ़ में भी कोई अच्छी बात हो सकती है और क्या पिछली चौदह शताब्दियों में इस्लाम ने मनुष्य जाति के किसी वर्ग को कुछ लाभ पहुँचाया? इसके विरुद्ध बहुत से मुसल्मान तो हमसे अति क्रुद्ध होंगे कि इस काफ़िर ने इस्लाम जैसे पूर्ण धर्म की आलोचना की है। जब थोड़े से मतभेद के आधार पर धर्माध्यक्षों ने नास्तिकता का दोष लगाकर बहुत से मुसल्मानों को प्राणदण्ड दे दिया तो इस्लाम की आलोचना को वैधानिक समझने वाले के लिये कोई जगह बाकी नहीं रहती। लेकिन किसी सम्प्रदाय में ऐसे गंभीर और सत्य-प्रिय लोगों की कमी नहीं जो प्रत्येक सिद्धान्त पर वास्तविकता के आधार पर विचार करते और

दूसरों के मतों को बिना सोचे समझे अपना मत बना लेने से दूर रहते हैं। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में लिखा है। कि "मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।" जिस मनुष्य को यह विश्वास हो गया कि ईश्वर को सत्य ही प्रिय है और सत्य का पालन ही ईश्वर की सच्ची उपासना है वह सांसारिक समस्त हितों और प्रयोजनों को त्याग कर सत्य की खोज करता है। और जिस किसी साधन से सत्य की प्राप्ति हो सके उसको अंगीकार करता है। इन लेखों को लिखने से मेरा यही अभिप्राय है कि अपने विचार प्रकाशित कर दूँ। लोग पढ़ें। अपनी बुद्धि का प्रयोग करें और जो ठीक जचे उसे मानें।

———

अध्याय २

पहला दीपक—हज़रत मुहम्मद साहेब

इस्लाम के दीपकों में सबसे पहला स्थान हज़रत मुहम्मद साहेब का है। मैं इनको पहला दीपक कह सकता हूँ। यदि मुहम्मद साहेब न होते तो इस्लाम न होता। यदि इस्लाम न होता तो मुहम्मद साहेब को इतना गौरव प्राप्त न होता। केवल क़ुरान शरीफ़ के आधार पर ही मैं यह कह सकता हूँ कि मुहम्मद साहेब का व्यक्तित्व संसार के महान् पुरुषों में से एक था। मैं महापुरुषों की तुलना करना नहीं चाहता कि कौन महापुरुष किस महापुरुष से बड़ा या उत्कृष्ट है। अज और अमर प्रभु की अनादि और अनन्त सृष्टि में महान् पुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। परन्तु यह बात सुगमता से कही जा सकती है कि मुहम्मद साहेब अपने युग और देश के उच्चतम व्यक्ति थे। हम मुहम्मद साहेब के अनुयायी हों या न हों। हम उनको पैगम्बर मानें या न मानें। परन्तु यदि मुहम्मद साहेब के जीवन चरित्र पर ध्यान दिया जाय तो जो लोग उनको पैगम्बर नहीं मानते उनके दिलों में भी उनका मान होगा। जो लोग मुहम्मद साहेब को पैगम्बर मानते हैं वह उनके वैयक्तिक गुणों को ईश्वर से सम्बद्ध कर के उनकी इच्छा शक्ति का वास्तविक मूल्य नहीं आंक सकते। उनको दृष्टि में जो कुछ मुहम्मद साहेब ने किया वह ईश्वर की ही आज्ञा से किया। उसमें उनका कुछ वश न था। किसी मनुष्य की योग्यता का मान उसके स्वतन्त्र कर्मों से होता है, न कि उन कामों से जिनके करने में वह परतन्त्र हो। यों तो समस्त सृष्टि

ईश्वर की है। मनुष्य भी, पशु पक्षी भी, छोटी सी चींटी भी। यह सब ईश्वर के शक्ति के द्योतक हैं। उसी की आज्ञा का पालन करते हैं। परन्तु मनुष्य स्वतन्त्रतापूर्वक जानबूझ कर जो कर्म करता है उन्हीं से उसकी योग्यता का अनुमान होता है। ईश्वर किसी को अपने हाथ का खिलौना नहीं बनाता। जब तक कर्म करने में स्वतन्त्रता न हो शुभ और अशुभ फल का प्रश्न ही नहीं उठता। जब मैं हज़रत मुहम्मद साहेब के जीवन पर अरब देश के सुधारक के रूप में दृष्टिपात करता हूँ तो मेरे हृदय और मस्तिष्क पर उनका विद्या, बुद्धि, पराक्रम और नीतिज्ञता का विशेष प्रभाव पड़ता है।

हज़रत मुहम्मद साहेब के लिये यह कुछ कम इज़्ज़त की बात नहीं कि उनके जीवन में ही उनके बड़प्पन का सिक्का समस्त अरब पर बैठ गया। और भूमण्डल की जनसंख्या का एक विशेष भाग आज भी हज़रत मुहम्मद साहेब का अनुयायी होने में अपना गौरव समझता है। चौदह सौ वर्ष तक इतने मुल्कों, इतनी क़ौमों और इतने प्रभावशाली व्यक्तियों ने हज़रत मुहम्मद साहेब को मर्यादा पुरुषोत्तम और पैगम्बरों में उच्चतम होने की पदवी दी और उनके लिये दुआ करते हैं यह कोई छोटी बात नहीं है। मालूम नहीं कि जब मुहम्मद साहेब अरब देश में अरब वालों के लिये सुधार का काम कर रहे थे, उस समय मैं कहाँ और किस योनि में था। मैं पुनर्जन्म को मानता हूँ और उन दिनों कहीं न कहीं अवश्य रहा हूँगा। परन्तु यदि मैं उन दिनों अरब में रहा हूँगा तो अरब वालों के विचारों का मेरे ऊपर विशेष प्रभाव रहा होगा। और उस दशा में मैं मुहम्मद साहेब के अनुयायियों में अवश्य ही हूँगा। जैसे आज भारतवर्ष के वर्तमान विचारों से प्रभावित होकर मैं स्वामी दयानन्द की शिक्षा का अनुयायी हूँ। जब मैं क़ुरान शरीफ़ को पढ़ने लगता हूँ तो

मुहम्मद साहेब के चातुर्य और साहस की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। यद्यपि मेरे विचारों और वर्तमान मुसल्मानों की मान्यताओं में पूर्व पश्चिम का अन्तर है।

यहाँ हम हज़रत मुहम्मद साहेब के जीवन के आरम्भिक भाग पर दृष्टि डालना चाहते हैं।

हज़रत मुहम्मद साहेब २० अप्रेल ५७१ ईसवी (अर्थात् ९ रबीउल अव्वल) सोमवार को प्रातःकाल मक्के में उत्पन्न हुये थे। उनके पिता का नाम *अब्दुल्ला* था। जो कुछ मास पूर्व यात्रा करते हुये मदीने में मर चुके थे। इनकी माता का नाम *आमिना* था। आमिना एक सद्‌गुण युक्त पतिव्रता महिला थी। यद्यपि अरब में विधवाओं को पुनर्विवाह करने का विधान था तो भी आमिना के समक्ष दूसरे विवाह का प्रश्न नहीं उठा। वह प्रतिवर्ष अपने श्वसुर *अब्दुल मतलब* के संरक्षण में मदीने को जाया करतीं और प्रथा के अनुसार अपने मृत पति की कबर का दर्शन किया करती थीं। जब मुहम्मद साहेब छः साल के थे तब वह भी अपने पिता जी की ज़ियारत के लिये मदीने गये थे! मार्ग में ही आमिना का देहान्त हो गया और वह मक्के और मदीने के बीच में *अबवा* नामक स्थान में दफन की गईं। इस प्रकार मुहम्मद साहेब छः साल की आयु में ही माता और पिता दोनों से वंचित हो गये। और उनके पालन का भार उनके पितामह अब्दुल मतलब के सिर पर आ पड़ा।

प्रायः देखा जाता है कि जो लोग बचपन में अनाथ हो जाते हैं वह आगे चलकर बहुत बड़े आदमी हो जाते हैं। संभवतः इस के दो कारण हैं। प्रथम तो पितृ विहीन बालक दूसरे लोगों की दया और सहानुभूति का पात्र बन जाता है। इस प्रकार उसके पालन और शिक्षण में कभी कभी उन साधनों का आधिक्य हो

जाता है जो माता पिता के संरक्षण में पलने वाले बच्चों को प्राप्त नहीं होते। दूसरी बात यह भी है कि बच्चा माता पिता के दबाव में न रहकर स्वातंत्र्य-प्रिय हो जाता है। और वह प्रयत्न करता है कि स्वयं अपने पैरों पर खड़ा हो सके। दूसरे लोग जो उस पर कृपा दृष्टि रखते हैं उतना दबाव नहीं डाल सकते जितना मा बाप डाला करते हैं। मैंने देखा है कि बहुधा अनाथालयों के आठ दस साल के बच्चे उन बीस वर्षीय लड़कों से अधिक वीर और साहसी होते हैं जिनको अपने माता पिता की देखभाल और अनुग्रह के सब साधन प्राप्त हैं।

हज़रत मुहम्मद साहेब जहां अपने माता पिता के संरक्षण से वंचित हो गये वहां उनके स्थान में दूसरे साधन आ उपस्थित हुये। उनके पितामह (अब्दुल्ला के बाप) अब्दुल मतलब मक्के के एक माननीय व्यक्ति थे। वह कुरैश वंश से सम्बन्ध रखते थे जिसकी अरब भर में विशेष प्रतिष्ठा थी। अब्दुल मतलब के लड़के वाले बहुत थे। यदि अब्दुल्ला जीवित रहते तो मुहम्मद साहेब के पालन-पोषण का कर्तव्य केवल अब्दुल्ला तक ही सीमित रहता। परन्तु लड़के की मृत्यु पर पोता विशेष रूप में पितामह की दया का पात्र बन गया। वह परिवार भर के प्यारे हो गये। अब्दुल मतलब ने उनसे पालन पोषण का विशेष प्रबन्ध किया। अरब में उस युग में यह प्रथा थी कि उच्च घरानों के बच्चे ग्रामीण स्त्रियों के सुपर्द कर दिये जाते थे वह उनको दूध पिलातीं और हर प्रकार की देखभाल करती थीं। कहा जाता है कि अरब की देहाती बोली अधिक ललित और विशद समझी जाती थी। इसलिये बच्चों को भाषा सिखाने का काम देहाती औरतों के हवाले किया जाता था। शायद एक कारण और भी समझ में आता है। नगर स्वभावतः अधिक धनाढ्य और विलास-प्रिय होते हैं। विलास प्रियता मनुष्य की संतति को

निर्बल कर देती है। अरब के बच्चे अपने आरंभिक जीवन के कुछ वर्ष देहात में व्यतीत करके अरब के प्राचीन रहन-सहन को बनाये रखने में अधिक सफल हो जाते होंगे। सारांश यह है कि अब्दुल मतलब ने अपने पोते को शिक्षा का विशेष प्रवन्ध किया। बालक मुहम्मद एक दक्ष और स्नेह-पूर्ण स्त्री *हलीमा* के सुपुर्द कर दिया गया। जो हारिस की पत्नी थी। मुहम्मद साहेब की महत्ता में हलीमा का भी भाग है अन्यथा हलीमा का नाम आज कौन जानता ? हलीमा ने अत्यन्त दक्षता से मुहम्मद साहेब की चार साल तक देख भाल की और जब वह चार साल के हो गये तो माता आमिना को समर्पित कर दिये गये।

अब्दुल मतलब अपने पोते को बहुत प्यार करते थे। बच्चा अधिकतर अपने दादा के साथ आँख की पुतली की तरह रहता था। पोते दादा के साथ शिष्टाचार नहीं बरतते। वह लाडले हो जाते हैं। और दादा के सिर चढ़ जाते हैं। मुहम्मद को वह सभी अधिकार प्राप्त थे। वह शिष्टाचार-विधान के आधीन न थे, जब उनके चाचा लोग किसी बात पर उनको डाँटते तो अपने बाप अब्दुल मतलब से ही डाँट खा जाया करते थे। अब्दुलमतलब कहा करते थे कि 'मुहम्मद बहुत अच्छा लड़का है। उसको कुछ मत कहो।' मुहम्मद स्वभावतः इस वातावरण में रहकर ढीठ हो गये। यह ढिठाई आगे चलकर उन की प्रकृति का एक अंश बन गई। वह स्वतंत्र और साहसी हो गये। उनकी इच्छा शक्ति में आश्चर्यजनक उन्नति हुई। वह किसी से दबने वाले मनुष्य न थे। उन्होंने किसी के सामने सिर नहीं झुकाया अपितु दूसरों को उनके समक्ष झुकना पड़ा।

वैदिक साहित्य की एक धर्म पुस्तक है ऐतरेय उपनिषद्। उसमें जीवात्मा के विकास के सम्बन्ध में लिखा है कि जीव सबसे पहले अपने बाप के शरीर में प्रविष्ट होता है। वहाँ बाप

का वीर्य-कण ही उसका शरीर होता है। वहाँ रहकर वह जीव अपने बाप के शारीरिक गुणों को धारण करके साथ-साथ उसके आचार तथा आध्यात्म सम्बन्धी गुणों को भी प्राप्त करता है। यही कारण है कि प्रत्येक जीवधारी का बच्चा अपने शारीरिक और आत्मिक गुणों में से अधिकांश को अपने साथ लाता है। यही वीर्यकण नियत काल के पश्चात् सृष्टि-व्यवस्था के अनुसार सहवास के समय स्त्री की योनि में प्रवेश कर लेता है। और माता के गुणों को प्राप्त करने लगता है। अर्थात् वह पहले अपने बाप के गर्भ में था अब माता के गर्भ में आया। वह पहला गर्भ (जन्म) था, यह दूसरा गर्भ (जन्म) है। पहले गर्भ में बाप से दाय भाग पाया। दूसरे गर्भ में माता से। जब गर्भ के दिन पूरे हो गये तो बाहर आया। इसी बाहर आने का नाम उत्पत्ति या जन्म है। इस प्रकार हर बच्चा अपने माता और पिता दोनों से शारीरिक और मानसिक प्रवृत्तियों का कुछ न कुछ भाग दाय में प्राप्त करता है। इस दाय भाग का परिमाण अथवा अनुपात बच्चे की निज योग्यता पर होता है। जिस प्रकार शिष्य अपने गुरु के गुणों की अपनी योग्यता के अनुसार प्राप्ति करता है उसी प्रकार सन्तान भी किया करती है।

हज़रत मुहम्मद साहेब को अपने माता-पिता से दाय भाग में क्या मिला ? इसका हिसाब लगाना कठिन है। क्योंकि समस्त भीतरी घटनायें ज्ञात नहीं हैं। अनुमान की बहुत गुञ्जायश है। अनुमान ठीक भी हो सकता है और असत्य भी। जब तक विस्तृत घटनायें ज्ञात न हों कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु अब्दुल्ला के विषय में दो तीन बातें तो मालूम ही हैं। पहली तो यह कि कुरैश वंश अरब भर में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। अब्दुल्ला के पूज्य पिता अब्दुल-मतलब अरब के प्रतिष्ठावान व्यक्ति थे। सम्मान के तीन हेतु हो सकते हैं। इनकी विद्या, इनकी

पुण्यशीलता और इनकी वीरता। यह तीनों बातें कुरैशियों में पाई जाती थी। अब्दुल्ला को भी यह दायभाग में मिली होंगी। और इन्हीं के द्वारा मुहम्मद साहेब भी इन तीनों श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न हुये। यह उनके उत्तर चरित्र से प्रमाणित होता है। दूसरी बात है अब्दुल्ला का नाम। इस नाम से प्रमाणित होता है कि कुरैश वंश के लोग आस्तिक और ईश्वर भक्त थे। 'अल्लाह' का नाम उनके परिवार के लिये नया न था। न अरब वालों के लिये। अरबी भाषा में 'अल्लाह' शब्द का प्रयोग कब से चला आता है इसके लिये अधिक अनुसन्धान अपेक्षित है। 'अल् इलाह' में 'अल्' तो अरबी भाषा का है ही। परन्तु 'इलाह' कई रूपों में इबरानी भाषा में प्रयुक्त हुआ है। हम नहीं जानते कि हज़रत *आदम* जिन को मुसलमान लोग सबसे पहला पुरुष मानते हैं किस भाषा को बोलते थे ? और ईश्वर के लिये किस नाम का प्रयोग करते थे ? हर पूजनीय वस्तु का नाम 'इलाह' है। और 'इलाह' में 'अल्' लगकर 'अल्लाह' एक नियत वस्तु के लिये विशिष्ट हो गया है। (अल्लाह का अर्थ है विशेष पूजनीय वस्तु)। ऋग्वेद में जो लाखों वर्ष प्राचीन पुस्तक मानी जाती है आरम्भ में ही ईश्वर के लिये 'ईल्य' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'ईल्यः' का धात्वर्थ है 'पूजनीय'। वेद में यह शब्द ईश्वर के लिये विशेषतया प्रयुक्त हुआ है। वेद मंत्र (ऋग्वेद १।१।२) का का स्पष्ट अर्थ यह हैं :—"हे ईश्वर तू पूर्व और नूतन या छोटे बड़े सभी के लिये पूजनीय है। तुझे केवल विद्वान् ही समझ सकते हैं।" जिस प्रकार अरब में 'अब्दुल्ला' नाम रक्खा गया उसी प्रकार आजकल भी भारतवर्ष के लोग 'ईश्वरदास' आदि नाम रखते हैं। जिससे उनके परिवार की आस्तिकता का परिचय मिल सके। 'अब्दुल्ला' नाम से प्रकट् होता है कि अब्दुल्-मतलब और उसके परिवार को 'अल्लाह' शब्द प्रिय था। और मुहम्मद

साहेब ने इसी 'अल्लाह' शब्द के गौरव को ऊँचा करने का यत्न किया। बाप 'अब्दुल्लाह' (ईश्वरदास) कहलाते थे। बेटे को लोगों ने हबीबुल्लाह (ईश्वर-प्रिय) की पदवी दी। जो काम बाप पूरा न कर सके बेटे ने पूरा कर दिया।

तीसरी बात यह है कि अब्दुल्ला का पेशा तिजारत (व्यापार) था। उनकी मृत्यु ही एक यात्रा के बीच में हुई थी जो तिजारत के लिये की गई थी। मुहम्मद साहेब ने भी जब होश संभाला तो इसी पैतृक व्यवसाय का अवलम्बन किया। और बड़ी दक्षता से सम्पादन किया। इनकी गणना बुद्धिमान, ईमानदार और अनुभवी व्यापारियों में होती थी। इस गुण के कारण उनका सम्बन्ध हजरत खुदैजा से हो गया जो एक धनवान व्यापारी की विधवा थीं। और जिन्होंने मुहम्मद साहेब को ईमानदार समझकर अपने व्यापार के काम में इनसे सहायता ली। एक चालीस वर्षीय अनुभवी तथा सद्गुण युक्त महिला के लिये हजरत मुहम्मद साहेब जैसे सुन्दर, शुद्ध, चरित्र, तीव्र-बुद्धि, और ईमानदारी के लिये मशहूर पचीस वर्षीय नौ जवान की ओर आकर्षित हो जाना कुछ आश्चर्य की बात न थी। अतएव जब हजरत मुहम्मद साहेब ने देखा कि स्वयं खुदैजा की ओर से प्रसंग का आरम्भ हुआ है तो उन्होंने इस सम्बन्ध को भाग्य की असाधारण देन समझकर स्वीकार कर लिया और उभय पक्ष के सम्बन्धियों की अनुमति से हजरत खुदैजा मुहम्मद साहेब की विधानानुसार पत्नी बन गईं। खुदैजा के विवाह ने हजरत मुहम्मद साहेब के भावी उद्देश्य में कहाँ तक सहायता की इसका अनुमान हजरत मुहम्मद साहेब के स्वयं अपने कर्मों और वचनों से होता है। कहा जाता है कि पति-भक्त पत्नी होने के अतिरिक्त वह सबसे पहले मुहम्मद साहेब की पैगम्बरी की अनुगामिनी बनीं। हजरत खुदैजा को इस्लामी इतिहास का

बुनियादी पत्थर समझना चाहिये। हजरत मुहम्मद साहेब के आरम्भ के बीस वर्ष एक माननीय विद्वान के रूप में व्यतीत हुये। उस समय तक उनके नबी (पैगम्बर) होने का प्रसंग किसी ओर से नहीं उठाया गया। न मुहम्मद साहेब को ज्ञात था कि मैं 'नबी' हूँ या होने वाला हूँ। न उनके किसी सम्बन्धी को, न उनके वंश या देश वालों को। एक बात अवश्य थी कि जो कोई उनके सम्पर्क में आता था वह उनकी शिष्टता और बुद्धिमत्ता से प्रभावित हो जाता था।

उनके दादा अब्दुल=मतलब साधु प्रकृति के रहे होंगे। क्योंकि मक्के के बाहर एक मठ (पहाड़ी गुफा) था 'हरा' नामक। वहाँ वह एकान्तवास और ध्यान के लिये चले जाते थे। भारतवर्ष के हर नगर और गाँव में ऐसे लोग मिलेंगे। मुहम्मद साहेब ने भी अपने दादा से यह शिक्षा ली। और उन्होंने भी इसी 'हरा मठ' में जाकर ध्यान करना आरम्भ किया। उस ध्यान की रूपरेखा क्या थी यह मालुम नहीं। भारतवर्ष तो "*योग विद्या*" के लिये विख्यात है योग की भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ हैं। योग पर सैकड़ों पुस्तकें हैं सैकड़ों गुरु या योग सिखाने वाले हैं। बौद्ध देशों में भी "*ध्यान योग*" की शिक्षा दी जाती है। यहाँ हम उन सब बातों का उल्लेख करना नहीं चाहते। योग मन की एकाग्रता का विशेष साधन समझा जाता है। योगी पुरुष का मन संसार की वाह्य चीजों से रुक कर अन्तरमुखी हो जाता है। इससे सूक्ष्म विषयों पर विचार करने की योग्यता हो जाती है। हजरत मुहम्मद साहेब जब '*गार हरा*' में जाकर ध्यान करते होंगे तो नश्वर जगत् की परिवर्तन-शील अवस्था पर भी अवश्य विचार करते होंगे और अरब के रस्मोरिवाज की ओर भी उनका ध्यान अवश्य जाता होगा। मुहम्मद साहेब की महत्ता का आरम्भ यहीं से होता

है। साधारण रीति से मनुष्य केवल आत्म-हित को ही बात सोचता है। परन्तु जब उसको दूसरों के दुःखों का भी अनुभव होने लगता है तो वह अपनी जाति, देश या वंश का पथ-प्रदर्शक बन जाता है। हजरत मुहम्मद साहेब इस प्रकार साधारण 'मुहम्मद' से 'हजरत मुहम्मद साहेब' बन गये।

———

अध्याय ३

क्या मुहम्मद साहेब उम्मी थे ?

हमने जिन सद्‌गुणों का उल्लेख किया है वह मुहम्मद साहेब के आरंभिक जीवन में ही प्रकाशित होने लगे थे। यह केवल कल्पित न थे। अपितु उनके दैनिक कार्यों और प्रवृत्तियों से प्रकट होते थे। परन्तु हमको बड़ा आश्चर्य होता है जब हमको पता चलता है कि सर्व साधारण मुसल्मानों में यह मशहूर है कि हज़रत मुहम्मद साहेब "*उम्मी*" थे। और इस्लामी विद्वानों ने अपनी विचित्र युक्तियों, आलोचनाओं तथा कल्पनाओं से इस विचार की पुष्टि की है। क़ुरान शरीफ़ में एक आयत है सूरत एराफ़ आयत १५७, यहाँ मुहम्मद साहेब को 'उम्मी'* कहा गया है। इस से अगली आयत में इसी शब्द को फिर दुहराया गया है।† इन आयतों में कोई ऐसा शब्द नहीं है जो 'उम्मी' पद के अर्थों का ज्ञापक हो सके। यहाँ मुहम्मद साहेब को 'रसूल', 'नबी' और 'उम्मी' बताया है। परन्तु सूरत बक़र की ७८वीं§ आयत में 'उम्मी' शब्द को बहुवचनान्त लिखा है। और वहाँ

---

* अल्लज़ीन यत्तबिऊनर्रसूलन्नबी अल् उम्मीं। (सूरत एराफ़ आयत १५७)

† फ़ामिनू बिल्लाहे व रसूलिहिन्नबी इल् उम्मीं। (सूरत एराफ़ आयत १५८)

§ व मिनहुँ उम्मियून लातामिलूनल् किताब इल्ला अमानीए व इन्नहुँ इल्ला मज़नून। (बकर ७८)

अर्थ स्पष्ट हैं। वह आयत यह है :—और कुछ लोग इनमें अनपढ़ हैं। कि अपने मिथ्या विचारों के अतिरिक्त ईश्वर की किताब से अभिज्ञ ही नहीं। और वह प्रमाद से काम लेते हैं।" इस आयत में उम्मी का अर्थ है मूर्ख, अनपढ़ जो ईश्वर की किताब से अनभिज्ञ हैं और केवल अटकल लगाते हैं। 'नबी' और 'रसूल' का विशेषण 'उम्मीं' जो सूरत एराफ़ में बयान किया गया है वह मूर्ख, अनपढ़, अटकल लड़ाने वाले अर्थों को नहीं देता। मुहम्मद साहेब के जीवन के वृत्त भी इस विचार का खण्डन करते हैं कि वह 'उम्मीं' थे अर्थात् मूर्ख, अनपढ़, या अटकल लड़ाने वाले, जो धर्म पुस्तक से अनभिज्ञ और इधर-उधर के मिथ्या प्रलापों में लगे रहें। यहाँ यह प्रश्न है कि 'उम्मी' शब्द का इसके अतिरिक्त क्या अर्थ लिया जाय कि सूरत एराफ़ की आयत निरर्थक या गलत सिद्ध न हो।

अरबी भाषा में 'उम्म' का अर्थ है माता। 'उम्मी' का अर्थ हुआ वह बच्चा जो अभी उत्पन्न हुआ है और जिसकी शिक्षा अभी आरम्भ नहीं हुई। इस अर्थ के अनुसार तो हर मनुष्य 'उम्मी' उत्पन्न होता है और कुछ दिनों उम्मीं रहता है। परन्तु जैसे जैसे उसकी शिक्षा आरंभ होती है उसका उम्मीपन भी समाप्त हो जाता है। हज़रत मुहम्मद साहेब के साथ भी ऐसा ही हुआ। वह अपनी आयु के प्रथम वर्ष में औरों के समान 'उम्मी' रहे होंगे। इसमें न कुछ असत्य है न अनादर है। परन्तु उनकी शिक्षा तो शीघ्र ही आरंभ हो गई थी। हलीमा की अध्यक्षता में उन्होंने चार वर्ष तक अरबी भाषा आदि की शिक्षा प्राप्त की। भाषा तो बच्चे को पहले चार वर्ष में ही आ जाती है। हमारे घरों में चार वर्ष के बच्चे भाषा का जो शुद्ध उच्चारण और मुहावरों का ठीक प्रयोग सीख जाते हैं वह विदेशियों को बीसियों वर्ष की शिक्षण के पश्चात् भी प्राप्त नहीं होती। आप अपने घरों के

बच्चों पर यह बात आसानी से आजमा सकते हैं। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि वह चार साल तक 'उम्मी' रहे। इसके अतिरिक्त उनका परिवार मूर्खों का परिवार न था। इस परिवार की विद्वत्ता विख्यात थी। अब्दुल मतलब स्वयं विद्वान् थे। वह अपने पोते की शिक्षा से कैसे उदासीन रह सकते थे ? अब्दुल मतलब की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद साहेब का लालन पालन उनके चाचा अबूतालिब के संरक्षण में हुआ। यह 'अबूतालिब' अपने समय के विशेष विद्वानों में थे। जब हज़रत मुहम्मद साहेब पहले पहल हज करके मक्के से वापिस आये और मक्के के लोगों ने उनको मार डालने की कोशिश की तो अबूतालिब ने एक प्रसिद्ध क़सीदा (कविता) लिखा था जिस की प्रसिद्धि आज तक चली आती है। इस क़सीदे में मक्का के तीर्थ के गौरव, क़ुरैशवंश की मानमर्यादा और मुहम्मद साहेब की धर्म निष्ठा तथा सत्य प्रियता का विशेष वर्णन है और यह भी दिखाया गया है कि यद्यपि हम मुहम्मद साहेब पर ईमान नहीं लाये हैं (अर्थात् यद्यपि हमने उनको पैगम्बर स्वीकार नहीं किया है। तथापि वह हमारे वंश के हैं अतः जब तक हममें दम है उनकी रक्षा करेंगे।) हमने यहाँ इस क़सीदे का विशेष उल्लेख इसलिये किया है कि जिन लोगों ने यह मशहूर कर रक्खा है कि अरब में उस ज़माने में लिखने पढ़ने का कोई विशेष प्रबन्ध न था यह केवल इस्लामी विद्वानों के मस्तिष्क की उपज है। हम यह नहीं कहते कि अरब में उस युग में आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज, कलकत्ता, इलाहाबाद, काहिरा आदि के समान यूनीवर्सिटियाँ थीं। परन्तु हम यह मानने के लिये तैयार नहीं हैं कि उस युग के अनुसार अरब में पठन पाठन का कोई प्रबन्ध ही न था। या अरब के लोग उम्मी (अनपढ़) थे। अबूतालिब के पुत्र हज़रत अली जिनके पालन का विशेष प्रबन्ध मुहम्मद साहेब ने स्वयं अपने पैसे से किया था

अरबी भाषा, अरबीदर्शन तथा अरबी की अन्य विद्याओं के विशेषज्ञों में गिने जाते थे। उनके व्याख्यान अरबी साहित्य में नमूने के तौर पर पेश किये जाते हैं। अरब के लोगों को अपनी भाषा विज्ञता पर इतना गर्व था कि वह विदेशियों को 'अजमी' अर्थात् गूंगा कहा करते थे। अर्थात् अरब वाले कहा करते थे कि केवल हमीं बोलना जानते हैं अन्य देशों के लोग गूंगे हैं। भारत वर्ष के सहस्त्रों वर्ष पुराने संस्कृतज्ञों की भी लगभग ऐसी ही धारणा थी। वह लोग केवल संस्कृत को ही 'वाणी', 'वाक्' या भाषा कहते थे। और बाहर वालों को 'म्लेच्छ' कहते थे क्योंकि उनको शुद्ध उच्चारण करना नहीं आता था। म्लेच्छ' संस्कृत शब्द है। इसका अर्थ काफिर (नास्तिक) विधर्मी या बुरा आदमी नहीं है। 'म्लेच्छ' केवल उनके लिये प्रयोग में आता था जिनको संस्कृत शब्दों का ठीक-ठीक उच्चारण नहीं आता था। अरब के लोग भी बाहर वालों को 'अजमी' या गूंगा कहते थे।

सर्व साधारण में यह भी प्रसिद्ध है कि मुहम्मद साहेब को लिखना पढ़ना नहीं आता था। यह केवल 'उम्मी' शब्द को न समझने के कारण है। जब लोक में कोई बात प्रसिद्ध हो जाती है और विद्वान् लोग किसी निज स्वार्थवश उसका बल पूर्वक खण्डन करने से बचते हैं तो असत्य बात भी सत्य कहलाती है। अरब में मुहम्मद साहेब के जमाने में पठन पाठन का पर्याप्त प्रबन्ध था, लोग लिखना जानते थे, मुहम्मद साहेब स्वयं व्यापारी थे। दूसरे देशों में व्यापारी के रूप में यात्रा करते थे। व्यापार का लेखा रखते थे। अन्य देशों से अनुभव प्राप्त करते थे। अतः वह अनपढ़ तो हो ही नहीं सकते। ऐसा कहना उनका अपमान तथा सचाई की हत्या करना है।

हम यहाँ एक मुसलमान विद्वान् की राय पेश करते हैं जो

यद्यपि किसी दूसरे प्रसंग में लिखी गई है परन्तु हमारे कथन की पुष्टि करती है :—

"इसराईल के वंशजों में लोग सूक्ष्म विचारों और गूढ़ भावों में रस होने की योग्यता नहीं रखते थे अतः इसराईली नबियों (मूसा आदि) को तो मौजिज़े (चमत्कार) दिये गये वह अधिकतर वाह्य-इन्द्रिय-ग्राही थे। परन्तु वह जाति जिसमें मुहम्मद साहेब (सल अल्ला०) भेजे गये भाषा के साहित्य और विशदता की रसज्ञ और तीक्ष्ण बुद्धि वाली तथा विचक्षण थी, इसलिये मुहम्मद साहेब को जो मौजिज़ा (चमत्कार) दिया गया अर्थात् कुरान, वह बौद्धिक है। (तारीखुल क़ुरान पृ० ९३)

जाहिज़ जो साहित्य शास्त्र का शिरोमणि है लिखता है कि नबी (सल अल्ला०) उस जाति में भेजे गये जो बड़ी ज़बरदस्त काव्य-प्रिय, भाषा लालित्य की प्रेमालु तथा अपनी वाणी की योग्यता पर गर्व करती थी। (तारीखुल क़ुरान पृ० ९५)*

---

* इस उद्धरण का भावार्थ समझाने के लिये यह टिप्पणी अपेक्षित है :—

"हज़रत इब्राहीम के वंशजों को बनी इसराईल या इसराईल की सन्तान कहा करते हैं। उनमें मूसा, दाऊद आदि कई नबी हो चुके हैं जिनका तौरेत आदि में उल्लेख है। यह नबी अलौकिक चमत्कार दिखाकर लोगों को अपने नबी होने का परिचय देते थे। जैसे मूसा की लाठी सांप बन गई। ईसा ने अन्धों को अच्छा किया इत्यादि। मुहम्मद साहेब ने ऐसा कोई चमत्कार नहीं दिखाया। लेखक महोदय का कहना है कि क़ुरान की भाषा में एक दैवी लालित्य है जो मनुष्य की शक्ति से बाहर है, क़ुरान का यह लालित्य ही मुहम्मद साहेब के पैगम्बर होने का चमत्कार है। मूसा आदि नबियों के समय के लोग अधिक शिक्षित न थे। वे परोक्ष की बातों को नहीं समझते थे अतः

क्या कोई मुसलमान इससे इनकार करेगा ? और यदि यह ठीक है तो ऐसी जाति में पैदा होकर मुहम्मद जैसा होशियार नौजवान कैसे उम्मी रह सकता था।

हाँ एक बात है। लक्षण के रूप में 'उम्मी' शब्द निर्दोष, सरल स्वभाव और भोले भाले के लिये भी आ सकता है। अर्थात् मुहम्मद साहेब में मक्कारी या चालबाजी न थी। यह कहा जा सकता है कि 'उम्मी' शब्द के यह अर्थ हमने अपनी ओर से गढ़ लिये हैं, यह सम्भव है। हमारे पास इस आक्षेप का कोई उत्तर नहीं है। परन्तु जब तक इस्लाम के विद्वान् इससे अधिक व्याख्या 'उम्मी' शब्द की नहीं कर सकते यह गुत्थी सुलझती नहीं।

'उम्मी' उस लड़के को भी कह सकते हैं जिसके बाप मर गये हों और उसके पालन पोषण का भार उसकी माता पर पड़ा हो। हज़रत मुहम्मद इस अर्थ में अवश्य 'उम्मी' थे। उनके बाप ने तो उनका मुंह तक नहीं देखा था। और उनकी माता को ही माता और पिता दोनों का कर्तव्य पालना पड़ा। परन्तु हम आमिना देवी के साथ घोर अन्याय के भागी होंगे यदि हम इसका यह आशय लें कि बाप की अनुपस्थिति में मुहम्मद साहेब शिक्षा से वंचित रह गये। सच तो यह है कि माता

उनके चमत्कार भी स्थूल थे। अरब के लोग साहित्य-रसज्ञता में निपुण थे। अतः मुहम्मद साहेब को स्थूल चमत्कार के स्थान में एक बौद्धिक चमत्कार दिया गया। अर्थात् लालित्यपूर्ण क़ुरान। जो वातावरण के अनुकूल था। यहाँ लेखक ने यह सिद्ध किया है कि अरब के निवासी बड़े साहित्यज्ञ और साहित्यकार थे। अतः उनमें पैगम्बर भी ऐसा व्यक्ति भेजा गया जिस पर क़ुरान जैसा लालित्यपूर्ण ग्रन्थ इलहाम के रूप में उतरा।

आमिना और दादा अब्दुल-मतलब के सुप्रबन्ध तथा आन्तरिक प्रेम ने हज़रत अब्दुल्लाह के अभाव की पुष्कल पूर्ति कर दी।

जो कुछ भी हो और उम्मी शब्द के कुछ भी अर्थ क्यों न हों। यह एक बहुत साधारण सी ऐतिहासिक घटना है। मनुष्य के जीवन में बीसियों ऐतिहासिक घटनायें हुआ करती हैं। परन्तु विशेष उल्लेख केवल उन्हीं बातों का होता है जो उस मनुष्य की विशेषताओं से मुख्य सम्बन्ध रखती हैं। मुहम्मद साहेब का उम्मी होना कोई ऐसी बात नहीं है जिसको इतना विस्तार दिया जाय। और संसार में तारस्वरेण यह शोर मचाया जाय कि हज़रत मुहम्मद साहेब 'उम्मी नबी' थे।

इस्लाम के विद्वानों को यह 'उम्मी' शब्द इतना क्यों प्यारा है ? और इस पर विशेष रीति से क्यों बल दिया जाता है ? कुरान शरीफ़ में भी इस शब्द का बहुत बार प्रयोग नहीं हुआ। हमको इसका कारण यह प्रतीत होता है कि मुसल्मान विद्वानों ने हज़रत मुहम्मद साहेब को पैगम्बर और कुरान शरीफ़ को ईश्वर वाक्य मानने का जो सिद्धान्त है उसकी पुष्टि के लिये 'उम्मी' शब्द का सहारा लिया गया। जिससे यह सिद्ध हो सके कि मुहम्मद साहेब जो आयतें पढ़ते थे उनका उत्तरदायित्व उनके ऊपर न था। वे आयतें सीधी अल्लाह मियाँ की ओर से आया करती थीं जैसी कि आजकल रेडियों में जो चीज़ें हम इलाहाबाद में सुनते हैं वह सीधी दिल्ली, लन्दन या पेरिस से आती हैं। उनका उत्तरदायित्व रेडियो के कर्मचारियों के ऊपर नहीं होता। यह युक्ति शायद मुहम्मद साहेब के समय के अरब वालों को विश्वसनीय रही हो। परन्तु यह युक्ति केवल कल्पना या हेत्वाभास मात्र है। जो लोग किसी साम्प्रदायिक मत को बिना बुद्धि के प्रयोग के मानने के अभ्यस्त हैं वह एक अत्यन्त दुर्बल प्रतिपत्ति के लिये भी इधर उधर से बे सिर पैर की दलीलें

जुटाकर अपने और सर्व साधारण के सन्तोष का कारण बन जाते हैं। परन्तु वास्तविक हेतु वह है जो हर मनुष्य की बुद्धि को सच्चा जंच सके। क्या वह सब पैगम्बर उम्मी (अनपढ़) थे जिनको मुसल्मान लोग 'नबी' मानते चले आये हैं ? हम इस प्रश्न को आगे उठावेंगे क्योंकि इसका इलहाम (ईश्वरी ज्ञान) से विशेष सम्बन्ध है। यहाँ केवल संकेत कर दिया है।

हमको मुसल्मान विद्वानों के परस्पर-विरुद्ध लेखों पर आश्चर्य होता है कि जानबूझ कर एक मुख्य सिद्धान्त पर परदा डाला गया है। जब वह कुरान के भाषा लालित्य का उल्लेख करते हैं तो अरब के लोगों के भाषा-लालित्य की प्रशंसा में पुल बाँध देते हैं। जैसा हमने अभी 'अल् कुरान' नामक पुस्तक का एक छोटा सा उद्धरण प्रस्तुत किया है। परन्तु जब उनको कुरान का इल्हामी होना सिद्ध करना होता है तो झट इसके विरुद्ध लिखने लगते हैं एक ही ग्रन्थकार एक ही ग्रन्थ में अपने ही पहले लेख का खण्डन कर बैठता है क्योंकि मिथ्यावादी की स्मरण शक्ति कम होती है। वह समझता है कि इस्लाम के श्रद्धालु भक्त भक्ति के प्रभाव में परस्पर विरोध की उपेक्षा कर देंगे। वही ग्रन्थकार पृ० १११ पर (केवल १६ पृष्ठ के पश्चात्) लिखता है :—"इन सबके साथ इसको भी मिलाओ कि यह किताब उस शख़्स ने पेश की जो ना ख्वांदा (अनपढ़) था। न उसके मुल्क में कोई मदरसा था। न उसकी ज़बान में कोई किताब थी, न उसकी कौम में कोई तालीम-याफ्ता (शिक्षित) था। क्या अब भी तुमको शक है कि यह (अर्थात् कुरान) चमत्कार और कलाम-इलाही (ईश्वर-वचन) नहीं है"।

———

अध्याय ४

दूसरा दीपक—कुरान शरीफ़

इस्लाम के दीपकों में दूसरा नम्बर मुहम्मद साहेब के बाद कुरान शरीफ़ का है। सूरत बक़र आयत १७७ में धर्म के पाँच स्कंधों का इस प्रकार वर्णन है* :—"नेकी यह है कि इन्सान पाँच बातों पर ईमान लावे। (१) अल्लाह पर (२) अन्तिम दिवस अर्थात् क़यामत पर (३) फ़रिश्तों पर (४) इलहामी (ईश्वरीय) पुस्तकों पर (५) नबियों (पैगम्बरों) पर।

पहली तीन चीजें पारलौकिक अथवा हमारे दैनिक प्रत्यक्षों के परे की चीजें हैं। अन्तिम दो का सम्बन्ध हमारे दैनिक जीवन से है। इसलिये यदि हमने मुहम्मद साहेब को पहला दीपक कहा तो कुरान शरीफ़ को दूसरा दीपक कहना अनुचित न होगा। क्योंकि कुरान शरीफ़ के विषय में हम को जो कुछ ज्ञात है वह मुहम्मद साहेब के द्वारा। मुहम्मद साहेब के माध्यम के बिना हमको कुरान शरीफ़ का कुछ भी ज्ञान न था, न हुआ, न हो सकता है।

व्यावहारिक रूप से कुरान शरीफ़ इस्लाम के लिये एक सच्चा दीपक है। मुसल्मान लोग अपने धार्मिक मन्तव्यों, सांसरिक कर्तव्यों और पारलौकिक समस्याओं का कुरान शरीफ़ के द्वारा ही समाधान करते हैं। जब कोई उग्र प्रश्न उठता है तो कुरान

---

* व लाकिन्नल् बिर्र मन् आमन बिल्लाहे वल्योमिल् आखिरे, वल् मलायिकते, वल् किताबे, वन् नबीईन। (बकर १७७)

शरीफ़ से ही सुलझाया जाता है। धर्म क्या है ? अधर्म क्या है ? ईमान (श्रद्धा) क्या है। कुफ़्र (अश्रद्धा) क्या है ? सत्य क्या है ? अनृत क्या है ? निषेध क्या है ? विधेय क्या है ? इनका उत्तर वह कुरान शरीफ़ से ही लेते हैं। इसलिये कुरान शरीफ़ को हम 'द्वितीय दीपक' कह सकते हैं।

कुरान शरीफ़ एक बड़ा ग्रंथ है। इसका संविधान बड़ा रोचक है। अरबी साहित्य का तो यह एक नमूना है। इसकी भाषा का लालित्य विख्यात है। साधारण अरबी जानने वाला पुरुष भी इसके पाठ से प्रमुदित हो सकता है। जब प्रसिद्ध शिक्षित क़ारी लोग (कुरान को गाकर पढ़ने वाले) कुरान का गान करते हैं तो श्रद्धालु लोगों के सिर स्वभावतः झुक जाते हैं। इसकी भाषा विशदतम समझी जाती है। यद्यपि हर देश और युग की भाषा की विशदता की कसौटियाँ भी भिन्न भिन्न होती हैं। परन्तु हज़रत मुहम्मद साहेब के समय में जो भाषा लालित्य की कसौटी थी कुरान शरीफ़ उसी का नमूना है। संसार में दूसरी प्रसिद्ध भाषाओं के साहित्य में भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न आदर्श रहे हैं। संस्कृत भाषा का क्षेत्र बहुत विस्तृत रहा है इसलिये देश और काल की अपेक्षा से इसके लालित्य के आदर्श भी भिन्न रहे हैं। जैसे स्त्रियों के आभूषणों के आदर्श भिन्न-भिन्न हैं। कभी कभी आभूषणों की संख्या में आधिक्य होता है और स्त्रियाँ अपने शरीर के अंगों पर बड़े बड़े गहने पहनती हैं। परन्तु कभी कभी ऐसा युग आता है कि भूषणों का आधिक्य निषिद्ध हो जाता है और भुजाओं को आभूषणों से भर लेने के स्थान में दो साधारण हलकी चूड़ियाँ ही सुन्दर समझी जाती हैं। इसी प्रकार भाषा लालित्य का आदर्श भी भिन्न भिन्न युगों में भिन्न भिन्न रहता है।

कुरान शरीफ़ के लालित्य का अधिकतर आदर्श अनुप्रास-

बाहुल्य है। किसी सूरत को कहीं से उठा लीजिये। गद्य में पद्य का आनन्द मिल जायगा।

मुसल्मान लोग कुरान शरीफ़ को इलहाम या ईश्वर की वाणी समझते हैं। उनका विश्वास है कि कुरान शरीफ़ की आयतें, एक एक शब्द, ईश्वर की ओर से नाज़िल हुई हैं (उतरी हैं)। और हज़रत मुहम्मद साहेब ने जैसी जैसी वह उतरतीं गईं उसी रूप में बिना न्यूनाधिक्य किये हुये लोगों के समक्ष रख दिया। उसमें मुहम्मद साहेब की अपनी एक बात भी नहीं है। जो लोग मुसल्मान न थे वह इस बात को नहीं मानते थे और आज भी जो मुसल्मान नहीं हैं उनके लिये इसको ईश्वर का इलहाम मानने में आपत्ति है। मुसल्मान लोग इन आपत्तियों पर कुछ भी विचार करना नहीं चाहते। उनके लिये ईमान लाना काफ़ी है। उसके सम्बन्ध में प्रश्न उठाना या बुद्धि लगाना वह पाप समझते हैं। परन्तु दूसरों की यह अवस्था नहीं है। हम मुसल्मान नहीं इसलिये यद्यपि हम कुरान शरीफ़ की बहुत सी बातों के प्रशंसक हैं तो भी हम कुरान शरीफ़ को हज़रत मुहम्मद साहेब का ही कलाम (वचन) समझते हैं। और मुहम्मद साहेब को अरबी साहित्य का एक उत्कृष्ट साहित्यकार मानते हैं।

पूर्व इसके कि हम कुरान शरीफ़ के मौलिक या प्रासाङ्गिक गुणों की व्याख्या करें हम उन कतिपय कठिनाइयों को प्रस्तुत करना चाहते हैं जो कुरान शरीफ़ को इलहामी (ईश्वरीय वाणी) मानने में बाधक हैं। प्रथम तो यह कि 'इलहाम' का वास्तविक अर्थ क्या है ? इस पर शायद मुहम्मद साहेब के ज़माने में भी उनके अनुयायी मुसल्मानों और उनके विरोधी काफ़िरों की ओर से कोई ऊहापोह नहीं की गई। मुसलमान इस बात पर ज़ोर देते रहे कि कुरान शरीफ़ खुदा का कलाम है और उसके विरुद्ध ननु नच करना ईश्वर का विरोध है। इसके विपरीत विरोधियों का

यह दावा था कि यह मुहम्मद साहेब का कलाम है और मुहम्मद साहेब हम को धोखा दे रहे हैं। इस विषय की गंभीरता से किसी ओर से भी मीमांसा नहीं की गई।

इसका मुख्य कारण यह था कि सिद्धान्त के रूप में जिस बात को इलहाम समझा जाता था वह दोनों पक्षों को अभिमत था। अरब में यहूदी लोग थे जो तौरेत को इलहामी किताब और मूसा को मुलहिम मानते थे। (मुलहिम वह लोकोत्तर मनुष्य होता है जिस पर खुदा का कलाम उतरता है)। ईसाई भी थे जो बाइबिल को इलहाम और ईसा को मुलहिम मानते थे। इलहाम किस को कहते हैं इस बात में दोनों एक मत थे। केवल नई बात यह थी कि कुरान भी उसी तरह का इलहाम है और मुहम्मद साहेब मुलहिम हैं। यदि तौरेत इलहाम हो सकती है और मूसा मुलहिम हो सकते हैं, या बाइबिल इलहाम हो सकती है और ईसा मुलहिम हो सकते हैं तो यह मानने में क्या आपत्ति है कि कुरान इलहामी हो और मुहम्मद साहेब मुलहिम हों। प्रश्न सैद्धान्तिक न था अपि तु व्यक्तिगत था।

इसके अतिरिक्त मुहम्मद साहेब के अधिकतर विरोधी मूर्ति-पूजक थे जो भिन्न भिन्न मूर्तियों के उपासक थे। इस प्रकार की मूर्ति पूजा आजकल भारतवर्ष में भी प्रचलित है। परन्तु भारत-वर्ष की मूर्तियों के साथ उन लोगों के पराक्रमों का इतिहास भी है जिनके संस्मरण रूप में वह मूर्तियाँ बनाई गईं। अरब की मूर्तियों के विषय में भी ऐसे इतिहास रहे होंगे। परन्तु इनका पता क़ुरान शरीफ़ या इस्लाम के इतिहास से नहीं लगता। लात, मनात आदि मूर्तियों का नाम तो आता है। परन्तु यह पता नहीं चलता कि यह प्रतिमायें किनकी थीं और उन्होंने अरब या दूसरे देशों के इतिहास-निर्माण में क्या भाग लिया। भारतवर्ष में राम, कृष्ण आदि महापुरुषों के इतिहास विद्यमान हैं। यह मत

बना लिया गया है कि राम और कृष्ण ईश्वर के अवतार थे अर्थात् ईश्वर ने ही स्वयं शरीर धारण करके जगत् की भलाई में भाग लिया। और उनके चित्र तथा प्रतिमायें उनके स्मारक भी हैं और उनकी उपासना के साधक भी। यूनानी देवताओं के लिये भी ऐसा ही कहा जाता है। अरब के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक रही होगी।

एक मुसल्मान लेखक ने जो इसी वर्तमान युग का है अरब की मूर्तियों के विषय में यह लिखा है :—'अरब इन बुतों और पत्थरों की मान्यता और उपासना इस भाव से नहीं करते थे कि उनको सर्वशक्तिमान समझते हों। अपितु केवल इस विचार से कि यह उनको ईश्वर के निकट पहुँचा देंगे। कर्त्ता, धर्त्ता, जिलाने वाला, मारने वाला वह अल्लाह को छोड़कर किसी को नहीं समझते थे।' (देखो सीरतुर्रसूल—लेखक मुहम्मद असलम, पृष्ठ ५१)।

हमको इस बात को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं। संभावना ऐसी ही है। भारतवर्ष के मूर्ति पूजक भी ऐसा ही कहते हैं। कोई यह नहीं मानता कि किसी मन्दिर में रक्खी हुई रामचन्द्र की मूर्ति सर्व शक्तिमान, या सृष्टि-कर्ता है। अपितु उस को उपासना का एक साधन मानते हैं। कुछ लोगों का यह विचार है कि इन मूर्तियों को देखकर उन पूर्वजों की याद आ जाती है जिनके महान् कार्य उनके इतिहास में दिये हुये हैं और जिनको याद करके हम उन महान् पराक्रमों का अनुकरण कर सकते हैं। उदाहरण के लिये दिल्ली में महात्मा गांधी की समाधि यमुना के किनारे है। यहाँ संसार भर के नीतिज्ञ फूलों का हार चढ़ाते हैं। इसलिये नहीं कि ऐसा करने से वह ईश्वर के निकट आ सकेंगे। न इसलिये कि वह गाँधी जी की आत्मा को प्रसन्न कर कर सकेंगे अपितु केवल इसलिये कि नीति के जो मौलिक आदर्श

महात्मा गांधी को प्रिय थे उनको सर्व साधारण में मान्यता प्राप्त हो सके।

कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनका विचार है कि जब वह राम और कृष्ण की पत्थर की मूर्तियां पूजते हैं तो कतिपय प्रार्थनाओं और मंत्रों के प्रभाव से उन महात्माओं के आत्मा उन मूर्तियों में आ जाते हैं और वह उन प्रार्थनाओं को सुन सकते और उनको सफल बना सकते हैं।

कुछ लोगों का यह भी विचार है कि इन मूर्तियों का ध्यान करने में मन वश में हो जाता है।

यह विचार कहाँ तक सत्य है और कहाँ तक मिथ्या। हम यहाँ इस विषय की मीमांसा करना नहीं चाहते। प्रसंग भी यह नहीं है हम केवल यह बताना चाहते हैं कि कुरान शरीफ़ में जिन बुतों (मूर्तियों) का वर्णन है या अरब वाले जिन मूर्तियों को पूजते थे उनके विषय में इस प्रकार का इतिहास नहीं मिलता। रहा तो अवश्य होगा। परन्तु शायद मुसल्मान विद्वानों ने इसको सुरक्षित रखना इस्लाम धर्म के प्रचार के लिये हितकर नहीं समझा। और आज हम केवल इतना ही जानते हैं कि अरब के बुतपरस्तों ने मुहम्मद साहेब का विरोध किया। और मुहम्मद साहेब ने उन पर विजय पाई। इन बुतपरस्तों की भी कोई ईश्वरीय या धर्म पुस्तकें थीं या न थीं। यदि थीं तो उनकी पवित्रता का क्या आदर्श था। इनके आचार-व्यवहार के नियम क्या थे इनका भी परिज्ञान कुरान शरीफ़ से नहीं होता। ऐसी अवस्था में कुरान शरीफ़ के इलहामी होने का अर्थ क्या है और इसके क्या प्रमाण हैं यह कहना कठिन है।

कुरान शरीफ़ में इस प्रकार की शिकायतें मौजूद हैं कि लोग स्वयं आयतों को अपनी तरफ़ से गढ़ लेते हैं और प्रसिद्ध कर देते हैं कि यह ईश्वर की ओर से उतरी हैं। 'तो उन लोगों

पर धिक्कार है जो अपने हाथ से तो किताब लिखते हैं और कहते हैं कि यह खुदा की तरफ से आई है।' (सूरत बकर, आयत ७९) ।*

क्या यह दोष स्वयं मुहम्मद साहेब पर लागू नहीं होता। यदि दो भिन्न-भिन्न मनुष्य अपनी-अपनी आयतों को ईश्वर की ओर से आई हुई बतलाने का दावा करें तो उनमें कौन सच्चा है और कौन झूठा है। इसकी पहचान की कोई कसौटी होनी चाहिये। केवल कह देना और श्रद्धा मात्र से विश्वास कर लेना ही तो पर्याप्त नहीं है। यह ठीक है कि हर आदमी को स्वतन्त्रता है कि वे परखे भी किसी चीज को मान ले या परखने में मिथ्या सिद्ध होने पर भी मानता रहे। परन्तु बुद्धिमान और श्रुत-निष्ठ लोगों के लिये तो यह मार्ग उचित नहीं है। इससे मिथ्या मान्यतायें बढ़ती हैं।

अतः आवश्यक है कि 'इलहाम', 'मुलहिम' आदि शब्दों के ठीक-ठीक अर्थों (वाच्यों) पर विचार किया जाय। बिना अर्थों के निश्चित हुये किसी विषय की मीमांसा उचित नहीं है।

---

* "फ़वैलुंनिल्लज़ीन यक्तुबूनल् किताब बि ऐदेहिम्। सुम्म यकूलून हजा मिन् इन्दिल्लाहे"। (बकर ७९)

अध्याय ५

'इलहाम' का अर्थ

"इलहाम' का सिद्धान्त धार्मिक जगत् का एक मुख्यतम विषय है। वस्तुतः यह मतमतान्तर के बोच में झगड़े की बुनियाद भी है। इसके कारण इतने लड़ाई झगड़े और मार काट होती रही है कि बहुत से लोग तो इसके विषय में बात करने से घबराते हैं। कुछ लोग इलहाम को मानते ही नहीं। (अर्थात् वह यह नहीं मानते कि ईश्वर की ओर से मनुष्य को कोई ज्ञान मिलता है)। कुछ लोग इलहाम के भिन्न-भिन्न अभिप्राय लेते हैं। कुछ कहते हैं कि अमुक ग्रन्थ इलहामी है अमुक नहीं। सारांश यह हैं कि भूमण्डल के मनुष्यों के भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय 'इलहाम' के ही कारण हैं। परन्तु तमाशा यह है कि यदि उनसे पूछा जाय कि इलहाम का अभिप्राय क्या है तो भिन्न-भिन्न लोग भिन्न विचार प्रस्तुत करते हैं। हमारी अवस्था उन अन्धे आदमियों की सी है जो हाथी की खोज में निकले थे और हाथी के विषय में वह यह नहीं जानते थे कि जिसको हम को चाह है वह कैसा है और यदि हमें मिल जाय तो हमको कैसे सन्तोष होगा कि यह वही चीज है जिसकी हम खोज कर रहे हैं। अतएव जब हाथी मिल गया तो आपस में लड़ने लगे। यदि आज भिन्न-भिन्न धर्मों और भिन्न-भिन्न इलहामों के प्रतिनिधि एकत्रित किये जायं कि सामने मेज पर अपनी-अपनी इलहामी किताबों को रख दो तो कोई तौरत, कोई जबूर, कोई इंजील और कोई कुरान, कोई वेद रख देगा। अब उनसे पूछिये कि क्या आपके पास कोई

कसौटी या तराजू है जिससे पहचान सकें कि किस की बात सत्य है और किसको मिथ्या ? वा सब की बात सत्य है या सब की बात मिथ्या ?, तो हर एक उनमें से उत्तर देगा कि मेरी बात सत्य है और शेष सब की मिथ्या। परन्तु तराजू या कसौटी क्या है ? तो यह कसौटियाँ भी भिन्न-भिन्न होंगी। एक तराजू नहीं ! एक कसौटी नहीं। निर्णय कैसे किया जाय ?

सबसे पहले यह निश्चय करना है कि 'इलहाम' के लिये जो शब्द प्रयोग में आते हैं उनके अर्थ शाब्दिक (अभिधान्वित) हैं या लाक्षणिक वा आलंकारिक ? उदाहरणार्थ यदि कोई कहता है कि मेरी प्रियतमा 'चन्द्र मुखी' है तो प्रश्न यह होगा कि यहाँ अभिधा है या लक्षण ? अर्थात् यदि केवल चाँद से उपमा दी गई है वस्तुतः उसका मुंह चांद जैसा नहीं है तो इसका केवल इतना आशय होगा कि जैसे चाँद को देखकर लोगों को आह्लाद होता है उसी प्रकार मैं भी अपनी प्रियतमा को देखकर हर्षित हो जाता हूँ। यही ठीक भी है। चन्द्रमुखी कहना सौ प्रतिशतक सत्य नहीं केवल उपमा है। यह कवियों की आलङ्कारिक भाषा है। परन्तु यदि इस 'चन्द्रमुखी' शब्द के वास्तविक अर्थ लिये जायँ तो उस मनुष्य को बहुत बड़ा धोखा होगा। अंधेरी रात में वह अपनी प्रियतमा के मुख के प्रकाश से चारपाई के पास रक्खा हुआ पानी का गिलास भी न देख सकेगा।

इसी प्रकार इलहाम के विषय में ऊहापोह करने से पूर्व शब्द 'इलहाम' के भावों पर विचार करना चाहिये।

साधारण लोगों की भाषा में इलहाम वह तंत्र हैं जो ईश्वर की ओर से दुनियाँ के लोगों के पथ-प्रदर्शन के लिये भेजे जाते हैं। शायद 'इलहाम' के यह लक्षण सब इलहाम मानने वालों को एक मत से स्वीकृत हों ! और हम इसको इलहाम की कसौटी नियत कर सकें। परन्तु यह बात सरल नहीं है। यदि सोचना

आरम्भ कर दीजिये तो प्याज के छिलकों के समान प्रश्न उठने लगते हैं। ईश्वर कैसा है? कहाँ है? कहाँ नहीं है? जिन लोगों के पथ-प्रदर्शन के लिये 'इलहाम' की आवश्यकता है? वह क्या हैं? कहाँ हैं? ईश्वर से कितनी दूरी पर हैं? वह पथ-प्रदर्शन क्यों चाहते हैं? और ईश्वर क्यों भेजता है? किस प्रकार भेजता है? इत्यादि इत्यादि। 'इलहाम' के लक्षणों का आधार इन प्रश्नों के उत्तरों पर होगा। यदि आप इन प्रश्नों पर विचार करने की परवाह नहीं करते तो न करें। सैकड़ों मिथ्या बातों में बहक-जायँगे।

अच्छा! आइये 'इलहाम' मानने वाले भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों से पूछें कि आप क्या मानते हैं? अपनी ओर से नमक मिर्च मिलाने की आवश्यकता नहीं।

(१) प्रथम प्राचीनतम दावेदार वेद से पूछिये। इतना तो सभी मानते हैं कि वेद सबसे प्राचीन पुस्तक है जिसके इलहामी (ईश्वरीय) होने का दावा किया जाता है। इनका सिद्धान्त है कि सृष्टि के आरम्भ में जब भिन्न-भिन्न प्रकार के प्राणी तथा मनुष्य उत्पन्न होते हैं उस समय उन मनुष्यों के माता पिता या गुरु तो होते नहीं जिनके विषय में यह कहा जा सके कि उन्होंने उनको शिक्षा दी होगी। उस समय कोई भाषा भी नहीं होती। परस्पर विचार विनिमय का कोई साधन भी नहीं होता। हाँ! बोलने के लिये वाक्-इन्द्रिय और सुनने के लिये कान यह कुदरती (ईश्वर प्रदत्त) अंग होते हैं। मनुष्य इनको स्वयं नहीं बनाता। उसको यह अङ्ग बने बनाये प्रकृति की ओर से मिलते हैं। उस समय ईश्वर अर्थात् सृष्टि का रचयिता अपनी ईश्वरीय (दैवी) व्यवस्था से कुछ उत्कृष्ट कोटि के मनुष्यों के दिलों में ऐसी शक्ति प्रदान करता है कि वह शब्दों द्वारा एक दूसरे पर अपने भावों को प्रकाशित कर सकें। और

दूसरों मनुष्यों को ऐसा करने के लिये शिक्षा दे सकें। ऐसे लोगों को ऋषि या महर्षि कहा गया है। पातंजलि मुनि ने अपने योग दर्शन में कहा है 'स एषः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।' अर्थात् ईश्वर सब गुरुओं का गुरु है। गुरु शिष्य का क्रम पीछे से आरम्भ होता है। उनके सिद्धान्त के अनुसार 'इलहाम' नाज़िल नहीं होता (*उतरता नहीं*)। अपितु हृदय में सत्य के नियमों का '*प्रकाश*' होता है। जैसे सूर्य के प्रकाश में आँख देखती है। इसी प्रकार हृदय अपने भीतर चमकने वाले ज्ञान अर्थात् वेद के प्रकाश में चीजों को देख सकता है अतः 'वेद' शब्द का अर्थ है '*ज्ञान*'। ईश्वर किसी ऊँची जगह पर नहीं है। जहाँ से इलहाम का नजूल (अवतरण) हो सके। मनुष्य का हृदय ईश्वर का घर है। केवल हृदय की स्वच्छता चाहिये। जब आरम्भ में शिक्षा की प्रथा आरम्भ हो जाती है तो गुरु शिष्य के सम्बन्ध उत्पन्न हो जाते हैं, गुरु शिष्य के भीतर उपस्थित नहीं होता। कहने वाला 'वाणी' और सुनने वाला 'कान' का प्रयोग करता है, इसी प्रकार उस आरंभिक भाषा से सैकड़ों भाषायें उत्पन्न हो जाती हैं, जो भौगोलिक अथवा प्राकृतिक भेदों के कारण मूल में एक होते हुये भी शाखाओं में इसी प्रकार भिन्न हो जाती हैं जैसे एक गुलाब की जड़ से टहनियाँ, पत्ते और फूल उत्पन्न हो जाते हैं।

(२) इस्लाम और क़ुरान शरीफ़ के अनुसार सब से पहला इलहाम हज़रत 'आदम' को हुआ। जब खुदा ने आदम को बनाया तो उसको नाम सिखाये।* (देखो सूरत बक़र आयत ३)। यहाँ क़ुरान शरीफ़ के दो शब्द विचारणीय हैं। एक 'अस्मात्र' ('इस्म' का अर्थ है नाम। 'अस्मात्र' 'इस्म' का बहु-

* व अल्लम आदमल् अस्मात्र कुल्ल हा। (बक़र ३)

वचन है)। दूसरा 'कुल्लहा' (अर्थात् सब चीजों के)। भाषा क्या है ? नामों का समूह ! 'नाम' क्या है ? जिनके मुंह से बोलने और कान से सुनने से उनके अर्थों (सांसारिक वस्तुओं) का ग्रहण हो सके। यहाँ भाषा के अन्तर्गत तीन चीजें आती हैं। *शब्द या नाम* ! *पदार्थ* अर्थात् नामी। और नाम और नामी का *सम्बन्ध* ! जैसे 'अग्नि' एक शब्द है। जिसको हम मुंह से बोलते और कान से सुनते हैं। उसको संस्कृत में 'शब्द' कहा है। इस शब्द का अर्थ है वह चीज जो जलती है जिस पर हम लोग खाना पकाते हैं। इसको संस्कृत में 'अर्थ' कहते हैं। वस्तुतः शब्द अग्नि का अर्थ उसका पर्य्याय 'आतिश' या 'नार' नहीं है। अपितु वह पदार्थ है जिसको भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा पुकारा गया है। इन दो बातों को तो सब लोग सुगमता से समझ सकते हैं। परन्तु संस्कृत के दार्शनिकों ने एक और सूक्ष्म बात का पता लगाया है अर्थात् नाम और नामी (शब्द और अर्थ) का सम्बन्ध। जब तक यह सम्बन्ध न हो भाषा हो ही नहीं सकती। यों तो संसार में सैकड़ों प्रकार की ध्वनियाँ होती रहती हैं। उनको हम 'शब्द' नहीं 'कह सकते' 'इस्म' (नाम) उसी ध्वनि को कहेंगे जिस का कोई नामी अर्थात् पदार्थ (वाच्य) हो। जब कुरान कहता है कि अल्लाह ने आदम को '*सब के नाम*' सिखाये तो इसका अर्थ यह हुआ कि पूरी विद्या सिखादी। यही तो 'इलहाम' हुआ। इसलिये कुरान शरीफ के अनुसार खुदा ने सब से पहले आदम को इलहाम दिया वह 'पूरा इलहाम' था। पूरा न होता तो 'कुल्लहा' शब्द निरर्थक हो जाता।

यहाँ एक बात और याद रखनी चाहिये। यहाँ आदम है मुलहिम या शिष्य। 'और अल्लाह है गुरु'। यहाँ कुरान में "नज़ल" अर्थात् 'उतरा' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। "अल्लम" (सिखाये) शब्द का प्रयोग हुआ है। यह उचित ही

था। इस पर मुसलमान विद्वानों का कभी ध्यान ही नहीं गया। अल्लाह कहाँ था ? और आदम कहाँ ? जहाँ खुदा था वहीं आदम था। एक व्यापक था दूसरा व्याप्य। इसलिये उतारने या चढ़ाने का प्रश्न ही निरर्थक था। उतारने का साधन भी कोई नहीं। किसी फ़रिश्ते का नाम नहीं। न जिबराईल का न किसी दूसरे का। 'इलहाम' सीधा विना किसी मध्यस्थ के हुआ। 'इलहाम' नहीं अपितु शिक्षा। या इससे भी स्पष्ट शब्द *आविर्भाव* (प्रकाशन) कहना चाहिये।

कुरान शरीफ़ की यह बात कुछ कुछ ऋग्वेद से मिलती है। देखो ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ७१, मंत्र १:—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

विलसन ने अंगरेजी में यह अनुवाद दिया है :—

That, Brihaspati, is the best (part) of speech, which those giving a name (to objects) first utter; that which was the best of those (words) and free from defect, (Saraswati) reveals it though secretly implanted, by means of affection.

अनुवाद—हे विद्याओं के पति जगदीश्वर ! भाषा का सर्वोत्कृष्ट भाग वह है जो पदार्थों को नाम देने वाले सबसे पहले बोलते हैं। यह सर्वोत्तम शब्द थे। और 'अरिप्र' अर्थात् दोष रहित थे। सरस्वती अर्थात् विद्या कृपा करके उन बातों का आविर्भाव करती है। जो लोगों के हृदय के भीतर निहित हैं।

यहाँ विलसन ने अपनी ओर से विद्या की देवता 'सरस्वती' का नाम दे दिया है। वेद में इससे केवल बृहस्पति अर्थात् परमात्मा से अभिप्राय है जो ज्ञान का आविर्भाव (प्रकाशन)

ऋषियों के हृदयों में करता है। जिन ऋषियों के हृदयों में ज्ञान का प्रकाश हुआ वह निर्जीव पत्थर के टुकड़े नहीं थे अपितु चेतन थे। उनके हृदयों में विद्या का अंकुर अभिगुप्त था। इसी गुप्त ज्ञान को परमात्मा ने दया से आविष्कृत (प्रकाशित) कर दिया। जैसे गुलाब के बीज में से गुलाब का फूल प्रकट हो जाता है।

कुरान में अरबी शब्द 'अस्मात्र' है। वेद में संस्कृत शब्द 'नाम' है। कुरान में 'कुल्लहा' अर्थात् सब चीजों के नामों का उल्लेख है। वेद में 'नामों' के नामी अर्थात् नाम धारण करने वाले पदार्थों का उल्लेख है। इस आरम्भिक ज्ञान को आप 'इलहाम' कहें या इनकिशाफ़ (प्रकाशन)। वेद में 'आविः' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है प्रकाशन (आविष्कार) कुरान में 'आदम' के गुणों का वर्णन नहीं है वेद में 'गुहा निहितम्' अर्थात् हृदय की गुफा में निहित या छिपे हुये का कथन है।

इतनी बात तो मुसलमान विद्वानों को भी स्वीकृत होगी कि जब 'आदम' में अल्लाह ने रूह फूंकी तो वह चेतन या सजीव मनुष्य था। केवल माटी का लौंदा न था। आदम का शरीर मिट्टी से बना था। उसकी रूह (आत्मा) नहीं।

यह इलहाम (ज्ञान का प्रकाश) सृष्टि के आरम्भ में हुआ। यह बात वेद कुरान दोनों से प्रमाणित होती है। भेद केवल इतना है कि एक तो वेद किसी एक आदम का नाम नहीं लेते जो अकेला उत्पन्न हुआ था। और अन्य इतर मनुष्य केवल उसी एक की सन्तान हैं यहाँ तक कि उसकी पत्नी हव्वा भी उसी आदम के शरीर या पसली से उत्पन्न हुई हो। वेद का कथन है कि सृष्टि के आरम्भ में बहुत से स्त्री पुरुष पैदा होते हैं।

दूसरी बात यह है कि हजरत आदम की उत्पत्ति का काल कुरान या बाइबिल के कथनानुसार कुछ हजार वर्ष पहले का हो

बताया जाता है। वेद के अनुसार समय लगभग दो अरब वर्ष होता है। हम यहाँ इस प्रश्न पर अधिक ऊहापोह न करेंगे शायद इस प्रश्न को आगे लेने की आवश्यकता पड़ जावे। ऋग्वेद के उस सूक्त में जिसका पहला मंत्र हमने ऊपर दिया है 'इलहाम' के सम्बन्ध में कतिपय अन्य बातें भी ज्ञात हो सकेंगी।

अब यदि यह मान लिया जाय कि पहला इलहाम हजरत आदम को हुआ और पहले मुलहिम (ऋषि) हजरत आदम थे और पहली भाषा हजरत आदम की भाषा थी और वह कुल पदार्थों के ज्ञान से परिपूर्ण थी तो प्रश्न यह होता है कि हजरत आदम कौन सी भाषा बोलते थे? और अपनी पत्नी हव्वा या अपनी सन्तान को क्या शिक्षा देते थे? हमारे पास न तो वह पहला इलहाम है न उसका कोई उपव्याख्यान है। शायद हजरत आदम को अहले किताब भी नहीं माना गया। (मुसल्मानों की परिभाषा में 'अहले किताब' वह पैगम्बर होते हैं जिन पर खुदा की ओर से कोई किताब उतारी जाती है)। जैसा कि हजरत मूसा, हजरत दाऊद, हजरत ईसा या हजरत मुहम्मद को बताया जाता है। न तौरेत, जबूर, इंजील या कुरान के समकक्ष कोई किताब बताई जाती है जिसको हम आरम्भिक शास्त्र या मौलिक विधान कह सकें। हजरत आदम से लेकर हजरत मुहम्मद साहेब तक जो वंशावलि मुसल्मानों ईसाइयों या यहूदियों में प्रसिद्ध है वह तो अत्यन्त नवीन प्रतीत होती है। भारत के लोगों के पास तो पुष्कल प्रमाण इस बात का है कि केवल महाभारत को बीते पाँच हजार वर्ष गुजर चुके। इस थोड़े से समय में हजरत आदम का आदि ज्ञान कैसे लुप्त हो गया? इन आवश्यक प्रश्नों पर धर्म के प्रवर्तकों का ध्यान क्यों नहीं गया?

कुरान शरीफ़ में हज़रत आदम का यह कथानक कई स्थानों पर दुहराया गया है सूरत एराफ़, सूरत बनी इसराईल, सूरत कहफ़, और सूरत स्वाद में परन्तु कोई नवीन बात नहीं है वहाँ तो आदम और इब्लीस (शैतान) के झगड़ों का कथन है जिनका 'इलहाम' से कोई सम्बन्ध नहीं।

(३) कुरान शरीफ़ में हज़रत आदम के पश्चात् चार और मुलहिमों (ऋषि) का लेख है। हज़रत मूसा, हज़रत दाऊद, हज़रत ईसा और हज़रत मुहम्मद। इन में से हर एक का सम्बन्ध एक किताब (शास्त्र) से है। हज़रत मूसा पर तौरेत शास्त्र उतरा, हज़रत दाऊद पर ज़ुबूर, हज़रत ईसा पर इंजील और हज़रत मुहम्मद पर कुरान। हज़रत आदम का नाम न मुलहिमों में परिगणित है न उन पर कोई शास्त्र उतरा हुआ बताया जाता है। हज़रत आदम से लेकर हज़रत मूसा तक एक दीर्घकाल व्यतीत हो जाता है। इसमें मानवी इतिहास के बहुत से उतार चढ़ाव आ जाते हैं। बहुत से राज उत्पन्न हुये और मिट गये। कोई 'अहले किताब' उत्पन्न नहीं हुआ। कुरान शरीफ़ में कई जगहों पर ऐसा तो कहा है कि खुदा भिन्न-भिन्न जातियों के पथ प्रदर्शन के लिये भिन्न-भिन्न नबियों (पैगम्बरों) को भेजता है। परन्तु विशेष रीति से किसी का उल्लेख नहीं है। तमाशे की बात यह है कि जो पुरानी जातियाँ हैं और जिनका इतिहास सहस्रों वर्ष पुराना है जैसे भारतवर्ष, चीन आदि, उनका संकेत मात्र भी नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जब कुरान शरीफ़ का आगमन हुआ तो अरब में कोई मनुष्य ऐसा न था जिस को दूरस्थ देशों और उनकी सभ्यता के विषय में कुछ सुना सुनाया ज्ञान भी रहा हो। बहुत स्थलों पर कुरान में उन पुरुषों या जातियों का उल्लेख आता है जिन्होंने नबियों के साथ कुव्यवहार किया और खुदा ने उसके दण्ड रूप में उन पर विपत्ति भेजी। परन्तु यह सब घटनायें अरब की या

अरब के निकटस्थ देशों की हैं। रावण, कंस आदि का कोई उल्लेख नहीं है। यों कहिये कि उस इलहाम से जिसको कुरान या कलम मजीद कहते हैं मनुष्य जाति भर का कोई सम्बन्ध नहीं।

नबियों और मुलहिमों की श्रेणियों में, गुणों या कर्तव्यों में क्या अन्तर है। यह भी एक आवश्यक प्रश्न है। यदि नबी का अर्थ है केवल पथ-प्रदर्शक जो अपने सहयोगी मनुष्यों को उनको उनकी भूलें बतावें और सन्मार्ग का उपदेश करें तो ऐसे नेताओं की किसी देश या जाति में कमी नहीं रही। उन सब के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वे खुदा की ओर से भेजे हुये हैं। नेता अपने समय का विद्वान् भी होता है और बुद्धिमान् भी और उस को सुधार की इच्छा भी होती है। यह बात मुलहिमों के जीवन से भी ज्ञात होती है। परन्तु यदि यह सब खुदा के विशेष दूत या पैगम्बर बन कर आये होते तो सब देशों के नबियों और नेताओं की शिक्षायें समान होतीं। परन्तु ऐसा नहीं है। महात्मा बुद्ध हजरत ईसा से भी पुराने नेता हुये हैं। और अत्यन्त प्रभावशाली नेता थे। बड़े-बड़े लोगों ने उनको एशिया का 'ज्योतिःस्तम्भ' (Light of Asia) कहा है परन्तु उनके मन्तव्य और शिक्षायें दूसरे नेताओं के मन्तव्यों और उपदेशों से समानता नहीं रखतीं। इसलिये हर नबी को खुदा से सम्बद्ध करना अन्ध-विश्वास तो हो सकता है परन्तु सत्य नहीं है। यों तो फारसी की कहावत है कि गुरु नहीं उड़ते, चेले उनको उड़ाते हैं।* हर गुरु का चेला अपने गुरु को ईश्वर का भेजा हुआ बताता है परन्तु है यह प्रमाण-शून्य प्रतिज्ञा।*

———

* पीरां न मे परन्द। मुरीदां मे परानन्द।

अध्याय ६

इलहाम के रूप

इलहाम के रूपों के सम्बन्ध में इस्लाम धर्म के विद्वानों का जो मत है उसे हम एक मुसल्मान विद्वान् की किताब से शब्दशः नकल करते हैं। यह लेखक कोई बड़ा प्रामाणिक लेखक न भी हो परन्तु जो मत उसने प्रकाशित किया है उस पर सभी का एक मत हैं :—

"अल्लाह ताला जिन लोगों को अपने बन्दों में से कौमों के सुधार के लिये निर्वाचित करता है उनको 'वही' के द्वारा शिक्षा देता है यही लोग नबी या रसूल कहे जाते हैं।"

वही—'वही' का धात्वर्थ है चुपके से जल्दी किसी बात को बता देना। जल्दी का भाव यह है कि जो बात दिल में आवे वह सोचने या मनन करने का परिणाम न हो। अपितु एक दम रहस्य के रूप में उसका ज्ञान हो गया हो।

नबियों को खुदा जिस रीति से परोक्ष का ज्ञान देता है उसका वास्तविक वर्णन सभी विद्वानों के व्याख्यानों से बाहर की वस्तु है। (अर्थात् कोई इसको बता नहीं सकता)। अधिक से अधिक यह हो सकता है कि स्वयं प्रशंसित नबियों के मुख से जिन शब्दों या वाक्यों में यह बात कही गई है उसी के आधार पर मन में एक चित्र खींचा जाय।

इस शिक्षा के चार तरीकें बताये गये हैं :—

(१) *सच्चे स्वप्न*—अर्थात् नींद की अवस्था में सच्चे स्वप्न

दिखाई देते हैं। ऐसे स्वप्नों का उल्लेख प्राचीन ईश्वरीय ग्रन्थों और कुरान शरीफ़ में भी है। हज़रत इब्राहीम ने स्वप्न में देखा था कि इस्माइल को बलि दे रहे हैं।

नबी महोदय (मुहम्मद साहेब) ने कहा है कि नबियों के स्वप्न सच्चे होते हैं। इन लोगों की केवल आँखें सोती हैं। हृदय जागता रहता है।

(२) अल्लाह ताला बिना किसी माध्यम के दिल में कोई बात डाल देता है।

(३) नबी को अल्लाह ताला का कथन सुनाई देता है जिस तरह हज़रत कलीमुल्लाह (मूसा) ने तूर (पर्वत) पर ईश्वर की आवाज सुनी थी।

(४) अल्लाह ताला फ़रिश्ते को भेजता है। वह नबियों को उसकी इच्छाओं और आज्ञाओं की सूचना देता है। कुरान में इस फ़रिश्ते को रूहुल अमीन* (जिब्राइल) कहते हैं।

अंतिम तीन प्रकारों का वर्णन इस आयत में है :—

"अल्लाह किसी मनुष्य से बात नहीं करता मगर बज़रिये 'वही' के या परदे के पीछे से या अपना दूत फ़रिश्ता भेजता है। वह अल्लाह की आज्ञा और इच्छा के अनुसार वही करता है।"†

यहाँ इलहाम के चार तरीक़े दिये हैं। एक पाँचवाँ तरीक़ा और है जो भारतवर्ष के हिन्दुओं में प्रायः अधिकतर अभिमत

---

* 'रूहुल अमीन' का शाब्दिक अर्थ है विश्वास के योग्य आत्मा। यह जिब्राइल फरिश्ते का नाम है।

† मा कान लि बशरिन् अय्यं कल्लिमुँ हुल्लाहु इल्ला वहियन्। औ मिन् वरायि हिजाबिन्। औ यर्सिलु रसूलन् फ़ यूहा बि इज़्नही मा यशाउ।

है। और जिस को गीता में श्रीकृष्ण के मुख से कहलवाया गया है :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे अर्जुन जब धर्म की ग्लानि होती है। और अधर्म का उत्थान होता है तो मैं अवतार लेता हूँ। साधुओं की रक्षा के लिये और दुष्टों के नाश के लिये मैं हर युग में उत्पन्न होता हूँ।

हिन्दुओं का विश्वास है कि जब अधर्म बढ़ जाता है और लोग धार्मिक कर्तव्यों से विमुख होने लगते हैं तो ईश्वर स्वयं शरीरधारी बनकर संसार में प्रकट होता है और अपने उपदेश और कर्मों से उस समय के लोगों को शिक्षा देता है और भावी सन्तानों के लिये आदर्श स्थापित करता है। इसको हिन्दू लोग ईश्वर का अवतार कहते हैं। अवतार शब्द संस्कृत का है जिसका अर्थ है नीचे 'उतरना' (नजूल)। ईश्वर के अवतार का अरबी पर्य्याय होगा 'नजूलुल्लाह।' अर्थात् अल्लाह का उतरना। अर्थात् ईश्वर किसी फ़रिश्ते, रिश्तेदार या रसूल को नहीं भेजता अपितु स्वयं जगत् में आता है। राजाराम चन्द्र और श्रीकृष्ण इसी प्रकार के अवतार माने जाते हैं। इसी प्रकार इनसे पूर्ववर्ती भी कई अवतार गिनाये गये हैं। इनका विस्तृत वर्णन पुराणों में आता है। भारतवर्ष के प्रामाणिक इतिहासों के अनुसार श्रीकृष्ण को हुये कुछ कम पाँच हजार वर्ष होते हैं। रामचन्द्र का अवतार बहुत प्राचीन काल में हुआ था। यह अवतार हजरत मूसा के समय से बहुत पहले के हैं। यद्यपि इन अवतारों का जन्म साधारण

मनुष्यों की भांति माता पिता के नैसर्गिक सम्बन्ध से होता है। परन्तु इनके जीवन से सम्बद्ध चमत्कार और अलौकिक घटनायें भी वर्णित हैं जिससे यह प्रमाणित हो सके कि यह व्यक्ति साधारण मनुष्य न थे अपितु स्वयं ईश्वर थे।

एक सत्य निष्ठ अनुसन्धान के लिये आवश्यक हो जाता है कि भिन्न-भिन्न रीति के इलहामों की सत्यता और असत्यता की जाँच करें। और अनुसन्धान के लिये सबसे आवश्यक यह है कि इलहाम के आदिमूल अर्थात् ईश्वर के गुणों पर विचार किया जावे। क्योंकि जब तक हम यह न समझ लें कि अल्लाह कैसा है तब तक कलाम-इलाही अर्थात् ईश्वर की वाणी के विषय में कुछ नहीं जान सकते।

अध्याय ७

ईश्वर के कतिपय गुणों पर साधारण दृष्टि

यों तो ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न है और एक अल्प-बुद्धि मनुष्य के लिये संभव नहीं कि सब गुणों का ज्ञान प्राप्त कर सके। अथवा उनके विषय में कुछ सोच सकें। परन्तु ईश्वर के कुछ गुण ऐसे हैं जिन पर विचार किये बिना *इलहाम* (ईश्वरीय ज्ञान) के प्रकार और परिणाम पर विचार करना असम्भव है।

इन गुणों में से पहला गुण है ईश्वर की *सर्वव्यापकता*। अर्थात् कोई स्थान या पदार्थ ऐसा नहीं जहाँ ईश्वर न हो यदि कोई ऐसा स्थान ध्यान में आसके जहाँ ईश्वर की विद्यमानता स्वीकार न की जाय तो ईश्वर एक परिमित वस्तु होगा। परिमित वस्तु अपूर्ण होगी। अपूर्ण वस्तु ईश्वर नहीं हो सकती।

दूसरा गुण है निर्विकार होना अर्थात् *अपरिवर्तनशीलता*। अर्थात् ईश्वर सदा एक रस रहता है उसके गुणों अथवा व्यक्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं होता। परिवर्तन आन्तरिक हो अथवा बाह्य, स्वयं उत्पादित हो अथवा किसी अन्य के द्वारा आरोपित। परिवर्तन है निर्बलता का सूचक। परिवर्तन का अर्थ है न्यूनाधिक्य होना अथवा हो सकना। जो पूर्ण हैं उसमें उपचय या अपचय की संभावना ही नहीं। जो चीजें स्वयं बदलती हैं उनमें कोई न कोई कमी होती है जिसको दूर करने के लिये परिवर्तन आवश्यक होता है। जो चीजें दूसरी चीजों के कारण बदलती है वे वही होती हैं जो दूसरों से कमज़ोर होती हैं और तब्दीली करने वाली चीजें तब्दील होने वाली चीजों को दबा सकती हैं। इसलिये कहा

जाता है कि ईश्वर एक पूर्ण पदार्थ है। जिसमें कमी नहीं और किसी कारण परिवर्तन (विकार) हो ही नहीं सकता। ईश्वर अपरिवर्तनशील है।

ईश्वर का तीसरा गुण है *'सर्व शक्तिमत्ता'*। सर्वशक्तिमान का अर्थ क्या है ? इसके विषय में अनेक भ्रांतियाँ हैं। इसलिये इस की व्याख्या आवश्यक है।

हर क्रिया के लिये ज्ञान और गति की आवश्यकता होती है। ईश्वर सर्वज्ञ है अर्थात् हर पदार्थ के गुणों को जानता है। उस पदार्थ पर क्रिया करने के लिये उस के सामर्थ्य भी है। कोई चीज़ या कोई शक्ति उसकी क्रिया में रुकावट नहीं डाल सकती। इसलिये ईश्वर को सर्व-शक्तिमान् कहते हैं। ईश्वर अपनी क्रिया स्वयं करता है। विना किसी अन्य की सहायता के करता है। उसे अपनी क्रिया करने के लिये किसी उपकरण या किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता नहीं। परन्तु याद रखना चाहिये कि यहाँ *'उपकरण'* या *'सहायक'* की निषेध किया गया है। अन्य वस्तुओं का नहीं। 'सर्वशक्तिमान' शब्द का प्रयोग करने में लोग यहीं पर भूल करते हैं। क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले जो अन्य कारक (उपकारक) हैं उनकी आवश्यकता तो सर्वशक्तिमान कर्त्ता को भी होगी ही। क्योंकि कोई कर्त्ता उन कारकों के बिना कोई क्रिया करहीं नहीं सकता। उसको एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं। *"अल्लाह ने आदम को नाम सिखाये"*। यहाँ क्रिया है *'सिखाये'* कर्त्ता है *'अल्लाह'*। कर्म है *नाम*। और आदम है *सम्प्रदान*। यदि इस वाक्य को पूरा कर दें तो कहेंगे कि 'सृष्टि के आरम्भ में अल्लाह ने बहिश्त में आदम को नाम सिखाये'। इस वाक्य में क्रिया का काल है 'सृष्टि का आरम्भ' और 'देश' है बहिश्त। यह दो शब्द इस वाक्य में बढ़ा दिये। क्या इन दो

(देश और काल) के बढ़ा देने से ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता में कोई दोष आ गया ? थोड़ा विचार करके देखिये। 'सिखाने' क्रिया के इतने उपकारक हैं। देश *जिसमें* 'सिखाना' क्रिया का व्यापार हो सके। काल *जब* यह क्रिया की गई। 'आदम' *जिसके लिये* यह क्रिया की गई। 'नाम' जो क्रिया के व्यापार का कर्म है। यहाँ क्या यह आक्षेप हो सकता है कि सिखाने का व्यापार करने के लिये ईश्वर 'आदम' आदि पदार्थों का मुहताज (आधीन) हो गया ? कदापि नहीं। क्योंकि यहाँ कोई ऐसी चीज नहीं बताई गई जो ईश्वर के काम में रुकावट डाल सके। परन्तु यदि इस वाक्य में किसी साधक या सहायक का नाम बढ़ा दिया जाय अर्थात् ऐसा कहा जाय कि 'सृष्टि के आरम्भ में खुदा ने बहिश्त में आदम को अपनी मातृ भाषा में अमुक फ़रिश्ते की मदद से नाम सिखाये'। तो ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता में दोष आ जाता है। क्योंकि मातृभाषा साधन है। और फरिश्ता भी सहायक है। खुदा दो चीजों का मुहताज मान लिया गया। भाषा का और फ़रिश्ते का।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये। 'त्रेता युग में राम ने लंका में रावण को तीर से मारा'। यहाँ 'मारना' क्रिया है। 'राम' कर्ता। 'रावण' कर्म। 'त्रेता' काल, 'लंका' देश। 'तीर' एक हथियार। अत. हम कहेंगे कि राम तीर के मुहताज थे। अतः सर्वशक्तिमान् न थे। मुहताजी केवल 'तीर' के कारण है न कि रावण या लंका के कारण। रावण, लंका, त्रेता युग तो क्रिया के उपकारक हैं। "मैं वृक्ष को आँख से देखता हूँ"। यहाँ मैं 'आँख' का मुहताज हूँ 'वृक्ष' का नहीं। वृक्ष तो क्रिया का उपकारक है। ईश्वर हम सबको देखता है। यहाँ ईश्वर 'हम सब' का मुहताज नहीं है। क्योंकि वह देखता तो है परन्तु बिना प्राकृतिक चक्षुओं के। अतः हम सर्वशक्तिमान् नहीं। ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। हमारे

कहने का आशय यह है कि मुहताजी (या दूसरे की अधीनता) केवल साधन और सहायक की अपेक्षा से है। कर्म या अधिकरण की अपेक्षा से नहीं।

'हलवाई ने कढ़ाई में शकर से हलुआ बनाया'। यहाँ हलवाई कढ़ाई का मुहताज है। शकर का मुहताज नहीं। क्योंकि शकर तो हलवे का अंग है। कर्म के अंग को तो क्रिया का उपकारक ही कहेंगे। दूसरे शब्दों में उसको ऐसा कहेंगे' 'हलवाई ने कढ़ाई में शकर को हलवे में बदल दिया।'

मतमतान्तर वालों ने कुछ मिथ्यावादों की पुष्टि करने के लिये ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता नामक गुण का सहारा लिया है। और बहुत सी असम्भव बातों को संभव सिद्ध करने की कोशिश की है। उदाहरण के लिये जब कहा जाता है राम मनुष्य थे ईश्वर न थे क्योंकि ईश्वर को शरीर की अपेक्षा नहीं है तो वह लोग कह देते हैं कि क्या ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं है? यह बात केवल ईश्वर तक की सीमित नहीं है। गुरु, सन्त, पीर, पैगम्बर, देवते, फरिश्ते आदि का भी ऐसे कामों से सम्बन्ध जोड़ लिया जाता है। हनुमान ने सूरज को मुँह में रख लिया। क्योंकि वह थे देवता। उनको सभी कुछ सामर्थ्य था। मुहम्मद साहेब के इशारे से चाँद के दो टुकड़े हो गये। उनको ईश्वर की ओर से ऐसी शक्ति मिली थी। एक मतवाले दूसरे मत के मंतव्यों का इसी आधार पर खण्डन करते हैं। परन्तु जिस कसौटी पर वह दूसरों को कसते हैं उस कसौटी का अपने लिये प्रयोग नहीं करते। ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानने वाले लोग किसी सुनी सुनाई घटना की जाँच की भी कोशिश नहीं करते। यदि वह घटना उन्हीं के धर्म पर लागू होती है तो बिना प्रमाण के मान लेते हैं कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वह तो सभी कुछ

कर सकता है। अथवा अमुक गुरु योगी था उसको सभी शक्तियाँ प्राप्त थीं। अथवा अमुक पुरुष पैगम्बर था उसको सभी कुछ सामर्थ्य था। इस प्रकार की भ्रांतियुक्त दन्त कथाओं से धार्मिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। यदि हम 'सर्वशक्तिमान्' शब्द का वास्तविक अर्थ समझ लें तो धार्मिक जगत् से बहुत सा कूड़ा करकट साफ हो जाय। और पारस्परिक कलह में भी कमी हो जाय।

यहाँ हमने ईश्वर के चार गुणों का उल्लेख किया है। ईश्वर सर्वव्यापक है। ईश्वर निर्विकार है। ईश्वर सर्वज्ञ है और ईश्वर सर्वशक्तिमान् हैं, यह गुण एक दूसरे के अनुकूल हैं इनमें परस्पर विरोध नहीं है इसलिये यदि कोई ऐसा कर्म हो जिससे इन गुणों के विरोध की संभावना हो तो समझना चाहिये कि इसके समझने में कहीं न कहीं भूल है।

जब हम तथा-कथित इलहाम के दावों को इन गुणों की कसौटी पर कसते हैं तो अनेक आपत्तियाँ आखड़ी होती हैं। जैसे हज़रत मूसा का तूर पर्वत पर ईश्वर से वार्तालाप करना। हज़रत ईसा का ईश्वर के इकलौते बेटे के रूप में संसार में प्रकट होना। या शरीर सहित स्वर्ग में चढ़ जाना। या हज़रत मुहम्मद साहेब का खुदा की तरफ़ से रसूल बनकर आना और हज़रत जिब्राईल के माध्यम से क़ुरान का समय-समय पर नाज़िल होना (उतरना)। यदि ईश्वर सर्वव्यापक है और कण कण में उसकी सत्ता है तो रसूल के उतरने, फरिश्ते के उतरने या वचन के उतरने का प्रश्न ही नहीं उठता। न रामचन्द्र या श्री कृष्ण के अवतार का। हाँ एक बात तो हो सकती है। अर्थात् इन सिद्धांतों को यथार्थ घटनायें न समझकर उपमा अलंकार स्वीकार कर लिया जाय। परन्तु उस अवस्था में उपमाओं की ऐसी स्पष्ट

व्याख्या, मीमांसा या टीका करनी पड़ेगी जिसको बुद्धि की कसौटी पर कसा जा सके। और सर्व-साधारण में जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न कर दी गई हैं उनका बलपूर्वक निराकरण हो सके। कुछ मत-मतान्तर वाले विद्वानों का ऐसा रवैया है कि यदि किसी से शास्त्रार्थ करेंगे तो उपमा अलङ्कार का सहारा लेंगे परन्तु जब अपने मत के अनुगामियों से बात करेंगे तो उन अलंकारिक कल्पनाओं या लक्षणाओं को यथार्थ रूप में (अभिधा रूप में) मानेंगे। इसका खुला नतीजा यह है कि धर्माध्यक्ष लोगों को ठीक मार्ग दिखाने के स्थान में असत् मार्ग पर चलाते हैं।

इस्लाम धर्म के विद्वानों ने इन बातों पर क्यों विचार नहीं किया ? एक आश्चर्य की बात है। कुरान के भाष्यकारों में बहुत से अपनी बुद्धि की तीव्रता और विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध हैं जैसा कि उनके बहुत के लेखों से विदित होता है। लेकिन शायद इस्लाम के शुरू में इस्लाम का जो एक परिमित ढांचा बना लिया गया उसी को पर्याप्त समझा गया। और ध्यान रक्खा गया कि कोई ऐसा प्रश्न न उठने पावे जो उस सीमा के बाहर जा सके। अरब के उस समय के लोग या तो यहूदी या ईसाई थे या साधारण मूर्ति पूजक। इलहाम के विषय में युहूदियों के भी लगभग वही मन्तव्य थे जो ईसाइयों के। मुहम्मद साहब ने भी अधिकतर उन्हीं का अनुसरण किया। जहाँ हजरत मूसा और हजरत ईसा के साथ इलहाम के अवतरण में फरिश्तों का माध्यम नहीं है। वहाँ मुहम्मद साहेब के साथ रूहुल-अमीन या हजरत जिब्राईल का गहरा सम्बन्ध है और जहाँ हजरत मूसा और ईसा को विद्वान माना गया है वहाँ मुहम्मद साहेब को 'उम्मी' कहा गया है। एक आयत में आया है :—'वही अल्लाह

है जिसने, अनपढ़ों में उन्हीं में से एक रसूल भेजा ।* (सूरत अल्जुमा २)

यहाँ 'उम्मी' का अर्थ है अनपढ़ । और मिन्हुम् (उन्हीं में से) का तात्पर्य यह है कि जो अनपढ़ थे उनके लिये रसूल भी अनपढ़ भेजा गया । हम पहले दिखा चुके हैं कि मुहम्मद साहेब उम्मीं या अनपढ़ न थे । उनको अनपढ़ बताना मुहम्मद साहेब के व्यक्तित्व के साथ अन्याय है । यदि वस्तुतः कुरान में उम्मी शब्द केवल 'अनपढ़' के अर्थ में ही आया है और अरबी भाषा के कोष में 'उम्मी' शब्द के कुछ और अर्थ नहीं हैं तो इस आयत में कोई प्रशंसा के योग्य बात नहीं कही गई । अनपढ़ों की शिक्षा के लिये विद्वान तो भेजे जाते हैं कि अनपढ़ों की मूर्खता को दूर कर सकें । अन्धों के लिये अन्धे मार्ग प्रदर्शक और मूर्खों के लिये मूर्ख मार्ग प्रदर्शक भेजना बुद्धिमानी नहीं है । लेकिन शायद कुरान शरीफ़ पर लोगों का पूरा ईमान सुदृढ़ करने के लिये यह सोचा गया कि यदि मुहम्मद साहेब को विद्वान् कहा जायगा तो लोग कहेंगे कि यह कलाम (वाणी) मुहम्मद साहेब का ही है न कि ईश्वर का । 'उम्मी' कह देने से पूरा उत्तरदायित्व मुहम्मद साहेब के सिर से टल कर खुदा के सिर आ जाता है । परन्तु यह एक सोचने की बात है कि किसी विद्वान् के केवल उम्मी बनने से उसका कथन किसी अन्य का कथन नहीं कहा जा सकता । यदि जन्मते ही मुहम्मद साहेब पर कुरान नाज़िल होने लगता तो शायद यह समझा जाता कि इस बच्चे के मुँह से कोई और बोल रहा है । हज़रत आदम पर यह बात सुसंगत हो सकती थी । या वेद के उन ऋषियों पर भी जिनके लिये यह

---

* हुवल्लज़ी बअ़स फ़िल् उम्मीयीन रसूलन् मिन्हुम् ।

(अल्जुमा २)

दावा किया जाता है कि सृष्टि के नितान्त आरम्भ में जब कोई पढ़ाने वाला न था वेदों का प्रकाश ईश्वर की ओर से बिना किसी अन्य माध्यम के ऋषियों के हृदय में किया गया। परन्तु मुहम्मद साहेब का जन्म तो सृष्टि के आरम्भ में हुआ नहीं। हजारों वर्षों से सुशिक्षित जातियाँ चली आती हैं। अरब में भी लोग दूसरे देशों से आकर बसे। और अपने साथ वहाँ से विचार लाये। इसके अतिरिक्त एक बात और है। कुरान शरीफ़ का नुज़ूल (अवतरण) एक दिन में नहीं हुआ। संभव है कि पहली सूरत के उतरने के समय उनकी विद्वत्ता कुछ कम रही हो। परन्तु लगातार कई वर्षों तक इलहाम का अवतरण और प्रचार करते-करते वह आयु भर उम्मी कैसे रह सकते थे। एक समय आया कि वह अरब के बादशाह हो गये। मुल्कों का इन्तज़ाम किया। कई लड़ाइयाँ लड़ीं। और इन्हीं दिनों में इलहाम भी उतरता रहा।

मुहम्मद साहेब के जीवन चरित्र से ज्ञात होता है कि वह बड़े योग्य, और अरब के वातावरण की अपेक्षा से अत्यन्त धैर्य-वान और नीतिज्ञतापूर्ण नेता थे। और इस शिक्षा का पूरा उत्तर-दायित्व उनके सिर है। इसलाम के विद्वानों ने समझा है कि अरब को जितना मूर्ख और जितना अन्धकारमय वर्णन किया जाय उतना ही इस्लाम के दीपक के प्रकाश का प्रसार होगा। अन्धेरे में तो जुगनू का प्रकाश भी बहुत होता है। यदि इतना ही है तो इस्लाम की दावत उन क़ौमों और मुल्कों को क्यों दी जाती है जो अपने दर्शन, अपनी विद्या और अपनी संस्कृति के लिये पहले से ही प्रसिद्ध हैं ?

इतना तो हमको स्वीकार है कि अरब की जो अवस्था थी उसका मुहम्मद साहेब ने भली भांति निरीक्षण किया। और इस्लाम के प्रचार में उनको प्रचुर सफलता प्राप्त हुई। किसी न

किसी कारण से उनके शत्रु नतमस्तक तथा पराजित होते रहे। इतना भी माना जा सकता है कि इस्लाम अन्य जगत् को कुछ न कुछ शिक्षा दे सकता है। परन्तु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि इस्लाम भी दूसरे धर्मों या देशों से कुछ न कुछ शिक्षा ले सकता है और यदि इस्लाम अपने को संकुचित क्षेत्र में कैद न करता तो इस्लामी जगत् की दशा आज बहुत अच्छी होती। हम जब मुहम्मद साहेब के वैयक्तिक गुणों का अवलोकन करते हैं तो हमको उनका व्यक्तित्व बड़ा गौरवान्वित प्रतीत होता है. उनके बहुत से उद्देश्यों की पूर्ति केवल इसीलिये नहीं हो सकी कि उनके अनुयायियों का दृष्टि-क्षेत्र बहुत संकुचित रहा।

———

अध्याय ८

स्वप्न और पैगम्बरी

छठे अध्याय में हमने 'इलहाम' के एक रूप अर्थात् 'सच्चे स्वप्नों' का उल्लेख किया है जिसमें हज़रत इब्राहीम के एक स्वप्न का उदाहरण दिया गया है। भारतवर्ष में भी बहुत से साधु अपने "सच्चे स्वप्नों' के आधार पर बहुत सी मिथ्या बातों को फैला देते हैं। कोई कहता है कि रात देवी ने सपना दिया है कि मेरी मूर्ति अमुक स्थान पर गढ़ी है उसको निकाल कर मन्दिर बनवा दो और तुम उसके पुजारी बन जाओ। बहुत से सन्त महात्मा स्वप्नों के आधार पर ही अपने अनुयायियों को गलत बातें सिखा देते हैं। कहीं-कहीं तो स्वप्नों के आधार पर युद्ध लड़े जाते हैं। सर्वसाधारण की धारणा है कि स्वप्न में भविष्यवाणी होती है। इलहामी पुस्तकों में भी ऐसे स्वप्नों और उनकी व्याख्याओं का उल्लेख मिलता है। अतः आवश्यक है कि स्वप्न के विषय का अनुसन्धान किया जाय।

'सत्य स्वप्न' क्या है ? एक अर्थ में तो सभी स्वप्न सत्य होते हैं। अर्थात् उनका आधार सच्ची घटनाओं पर है। परन्तु उनसे किसी भविष्य में होने वाली घटना की भविष्यवाणी समझना निराधार है। कोई ऐसा मनुष्य नहीं है जिसको स्वप्न न होता हो। बच्चे, बूढ़े, जवान, विद्वान्, मूर्ख, पढ़े अनपढ़ सभी को स्वप्न होते हैं। यहाँ तक कि कुत्ते आदि को भी स्वप्न होते हैं। परन्तु इनसे यह परिणाम निकालना सर्वथा धोखा है कि यह स्वप्न किसी भविष्य में होने वाली घटना की भविष्यवाणी है।

स्वप्न है क्या ? जीव की इस शरीर में तीन अवस्थायें होती हैं एक को संस्कृत में जागृति कहते हैं। दूसरी स्वप्न जिसमें प्राणी सपने देखता है, तीसरी 'सुषुप्ति' गहरी नींद जिसमें प्राणी को होश न रहे और कोई स्वप्न भी दिखाई न दे।

अब आप समझिये कि जागृति में हम क्या करते हैं ? हमारी पंच-इन्द्रियाँ वह द्वार हैं जिनके द्वारा वाह्य प्रत्यय हमारे हृदय पटल पर अंकित होते हैं। अर्थात् प्रत्ययों की संख्या बहुत बड़ी है। हर बच्चा प्रतिदिन हजारों दृश्य देखता है। सैकड़ों दृश्य उसके नेत्रों में घुस कर उसके हृदय की आँख में उतर आते हैं। इसी प्रकार हजारों आवाजें कानों के द्वारा और हजारों सुगन्धें या दुर्गन्धें नाक के द्वारा। हमारे अन्तःकरण में एक आदर्श (दर्पण) जैसी कोई चीज है जो हर दृश्य के चित्र को न केवल ग्रहण करती है अपितु सावधानी से सुरक्षित रखती है। यदि हम अलंकार की भाषा का प्रयोग करें तो कहेंगे कि अन्तः करण एक लौहे-महफ़ूज़ (अमर-पट्टिका) है जिस पर दृश्यों की प्रतिच्छा-यायें पड़ती रहती हैं। अन्तःकरण का दर्पण या यह लौहे-महफ़ूज़ उनको बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखता है और किसी को नष्ट होने नहीं देता। जागृति की अवस्था में हमारी पाँचों इन्द्रियाँ बाहर से निरन्तर प्रत्ययों को लाती रहती हैं और अन्तःकरण का दर्पण उनको इकट्ठा करने में संलग्न रहता है। हमारी पाँच-इन्द्रियाँ जो कमाई करके लाती हैं लगातार बिना सोचे समझे या नियमानुसार लेखा रक्खे इस अन्तःकरण की कोठरी में फेंकती रहती हैं। न तो इन इन्द्रियों को क्रमानुसार कमाई करने का अवकाश मिलता है न अन्तःकरण को क्रमानुसार रखने का। एक गुलाब की आकृति को आँख ने देखकर भीतर फेंक दिया। तुरन्त ही नाक ने सुगन्ध को लाकर भीतर ढकेल दिया। इसी के ठीक पश्चात् किसी पक्षी ने एक गीत कान के द्वारा भीतर प्रविष्ट

कर दिया। इस प्रकार बहुत से प्रत्यय तथा प्रतिच्छायायें भीतर जा घुसीं। जब यह इन्द्रियाँ काम करते-करते थक गईं तो जागृति की अवस्था कुछ मन्द पड़ गई। बाहर के पट बन्द हो गये। दृश्यों का अन्त हो गया। हम सो गये। परन्तु बन्द हुये हैं केवल बाहर के पट। अन्तःकरण नहीं सोता। वह जागता है। अब अन्तःकरण क्या करता है? उन्हीं प्रत्ययों को जो *बिना किसी क्रम* के भीतर आये थे *बिना किसी क्रम* के देखने लगता है। अर्थात् पाँच-इन्द्रियाँ तो बन्द हैं परन्तु अन्तःकरण की वृत्तियाँ काम कर रही हैं। इसी का नाम है स्वप्न। जागृति के प्रत्यक्षों को बिना किसी क्रम या व्यवस्था के देखना ही स्वप्न है। जागृति में कुछ व्यवस्था थी, कुछ अनुपात भी था। हमने दिल्ली से रेल में यात्रा की। पहले कानपुर का स्टेशन मिला। फिर इलाहाबाद का। फिर मुगल सराय का। दिल्ली, कानपुर, इलाहाबाद, मुगलसराय के स्टेशनों पर जो दृश्य प्रत्यक्ष हुये वे कई-कई घण्टों के पश्चात् हुये। उनमें एक क्रम तो था। परन्तु जब सो गये तो यह क्रम लुप्त हो गया। वे समग्र दृश्य इस प्रकार उलझ गये कि स्वप्न में एक दृश्य दिल्ली का आया तो झट दूसरा इलाहाबाद का। फिर तीसरा दिल्ली का। उलझे हुये पुराने दृश्यों का नाम ही स्वप्न है। स्वप्न में इतनी तो सत्यता है कि कोई नई चीज़ पैदा नहीं हुई। स्वप्न में नवीन दृश्य नहीं होते। जन्म के अन्धे को कोई चाक्षुष स्वप्न नहीं होता। परन्तु यह स्वप्न इस आशय से असत्य है कि क्रम उलझा हुआ है। जागते समय हमने देखा कि एक ऊँट की पीठ पर एक कौआ बैठा हुआ है। स्वप्न में संभव है कि कौए की पीठ पर ऊँट दीखने लगे। क्योंकि वास्तविक पदार्थों में तो बोझ था। ऊँट कौए के बोझ को सहार सकता है। कौए में यह शक्ति नहीं कि ऊँट के बोझ को सहार सके। परन्तु ऊँट की प्रतिच्छाया और कौए की प्रतिच्छाया में कोई बोझ नहीं। वह तो वास्तविक

पदार्थ नहीं। केवल रूप रेखा, प्रतिच्छाया या चित्र मात्र हैं। अतएव यदि आप चाहें तो कागज पर एक कौए की तस्वीर बना उसके पंख पर एक ऊँट खड़ा कर दें। क्योंकि कौए की तस्वीर ऊँट की तस्वीर को सहार सकती है। यहाँ वस्तुतः बोझ का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार स्वप्न में भी हम कभी-कभी आश्चर्यजनक वस्तुएँ देखते हैं। जो लोग स्वप्न के रहस्य को नहीं समझते वह उन उलझे अनुभवों को देखकर घबरा जाते हैं। और स्वार्थी लोग इसी मूर्खता का लाभ उठाकर निरर्थक कल्पनायें प्रस्तुत करने लगते हैं। वैज्ञानिक लोगों ने 'स्वप्न' के विषय पर अनेक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य अपने ऊपर भी जाँच कर सकता है।

इन उलझे हुये प्रत्यक्षों के चित्रों को अल्लाह का कलाम या इलहाम बताना या इनसे कोई भविष्य-वाणी करना बड़ी भारी भूल है। हम उन दृश्यों को स्वप्न में देखते हैं जिनका हमारे अन्तःकरण पर गहरा अथवा तीव्र प्रभाव होता है। जैसे माता का अपने बच्चे को बार-बार सपने में देखना या किसी अपराधी का पुलिस के सिपाही को स्वप्न में देखना। और कभी-कभी यह स्वप्न सच्चे भी निकल आते हैं। जैसे कोई माता अपने बच्चे को बार बार स्वप्न में देखती है और किसी दिन प्रातःकाल वह बच्चा अचानक बाहर से आ जाता है और वह कह उठती है कि मेरा स्वप्न ठीक निकला। इस प्रकार के सच्चे स्वप्न केवल नबियों (पैगम्बरों) तक ही सीमित नहीं हैं। साधारण स्त्रियाँ भी ऐसे स्वप्न देखती हैं, यह न तो *वही* (इलहाम) हैं न भविष्य-वाणी। ईश्वर ऐसी भविष्यवाणी नहीं किया करता। केवल शिष्य लोग पीरों (गुरुओं) के सिर ऐसी भविष्य-वाणियाँ मढ़ देते हैं।

अब हम यहाँ हज़रत इब्राहीम के स्वप्न की व्याख्या करते हैं। कहा जाता है कि हज़रत इब्राहीम को स्वप्न हुआ कि वह

अपने बेटे हज़रत इस्माईल को ज़बह (कुर्बान) कर रहे हैं। यह घटना कहाँ तक ऐतिहासिक है यह कहना कठिन है। केवल धार्मिक ग्रन्थों में यह कथानक पाया जाता है और धर्म-ग्रन्थों के रचयिता खोजक नहीं होते। अधिकांश कहानियाँ श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये गढ़ी जाती हैं। परन्तु यदि हम स्वीकार कर लें कि यह कथानक वस्तुतः ऐतिहासिक है और इसमें कुछ भी प्रक्षेप या मिलावट नहीं हुई तो प्रश्न उठता है कि हज़रत इब्राहीम को यह स्वप्न कैसे हुआ ?

हज़रत इब्राहीम एक मूर्ति-निर्माता (आज़र) के बेटे थे। बाप मूर्तियाँ गढ़ा करता था और इब्राहीम बेचा करते थे। यह मूर्तियाँ उस देश और युग की प्रचलित देवी देवताओं की हुआ करती थीं जैसी कि वाराणसी आदि में बनती और बिकती हैं। हज़रत इब्राहीम सहजतया ईश्वर के उपासक थे और ईश्वर के स्थान में मूर्तियों को पूजना पाप समझते थे। धार्मिक ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा मिलता है। साथ ही यह भी मशहूर है कि उस ज़माने में ईश्वर के नाम पर कुर्बानी देना अर्थात् पशु-बलि देना धर्म का एक अंग समझा जाता था। मूर्ति-पूजक भी कुर्बानी देते थे और वह ईश्वर-पूजक भी ज़ो मूर्तियों को न पूज कर केवल ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये पशु की हत्या करते थे। हम यहाँ इस बात पर बहस नहीं करेंगे कि पश्चिमी एशिया के उन देशों में जहाँ यहूदी, ईसाई या मुसलमानी धर्मों का उत्थान हुआ पशुओं को बलि देने की प्रथा कैसे पड़ी ? भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास से तो ऐसा ज्ञात होता है कि पहले वैदिक यज्ञों में पशुबलि की प्रथा न थी। पीछे से लोग पशुओं को मूर्तियों के आगे बलि देने लगे। यहाँ तक कि महात्मा बुद्ध ने इन पशु-बलियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। परन्तु यहूदी लोगों या उनके पीछे आने वाले धर्मों में पशुबलि की प्रथा कैसे चली ? इसके विषय में हम आगे

विस्तार से लिखेंगे। परन्तु यहाँ हम केवल इतना देखते हैं कि हज़रत इब्राहीम खुदा परस्त (ईश्वर भक्त) थे। और खुदा की राह में (ईश्वर के लिये) कुर्बानी किया करते थे। स्वाभाविक बात है कि भक्ति-भाव से हज़रत इब्राहीम ने यह सोचा हो कि साधारण लोग तो साधारण पशुओं को मोल लेकर बलि देते हैं मैं अपने सबसे प्यारे अर्थात् पुत्र की बलि दे दूँ। जितना मूल्यवान पशु होगा उतना ही मुझ को पुण्य होगा। जब इस भक्तिभाव ने ज़ोर मारा तो उनके अन्तःकरण पर जम गया होगा और उन्होंने उसी को स्वप्न में देखा होगा। इसी बात को इब्राहीमी शरीअत (विधान) के व्याख्याताओं ने अतिशय-पूर्ण भाषा में अपनी ओर से नमक मिर्च मिलाकर *'वही'* (इलहाम) का रूप दे दिया। यह घटना हज़रत मुहम्मद साहेब से बहुत पूर्व की है। मुहम्मद साहेब ने केवल दन्त कथायें सुनी होंगी। और धर्माध्यक्षों ने उनको *'वही'* (इलहाम) का नाम दे दिया। हर देश के धार्मिक कथानकों में इस प्रकार की वाहियों (ईश्वर-संदेशों) का उल्लेख मिलता है। इन पर केवल वही लोग विश्वास ला सकते हैं जो स्वप्न की यथार्थता को नहीं जानते। या जानने का यत्न नहीं करते कि उनके किसी प्रिय विश्वास को ठेस न लग जाय।

———

अध्याय ९

लौहे महफ़ूज़ या अमर पट्टिका

एक मुसल्मान ग्रंथकार अपनी पुस्तक "*तारीखुल् कुरान*" (कुरान का इतिहास) के तर्तीब-कुरान (कुरान के क्रम) के शीर्षक में लिखते हैं "कुरान जिस क्रम से उतरा वह उसका असली क्रम न था क्योंकि इसकी आयतें अवसर और आवश्यकता के अनुसार उतरती थीं। इसलिये नबी सल्लि-अल्लाह अले हिस्सल्लम् (अर्थात् मुहम्मद साहेब) ईश्वर के आदेशानुसार इसको इस क्रम से सम्पादित कर लेते थे जो इस की वास्तविक तरतीब (क्रम) '*लौहि महफ़ूज़*' में थी"। (पृष्ठ ४८)।

आगे ५०वें पृष्ठ पर है :—

"*अल्लामा किरमानी* और *नीज़ तैबी* का कथन है कि यद्यपि कुरान जैसी-जैसी आवश्यकता पड़ती रही उसी के अनुसार थोड़ा-थोड़ा उतरता रहा। परन्तु जो इसका क्रम लौहे महफ़ूज़ (अमर पट्टिका) में था उसी के अनुसार उसकी आयतें और सूरतें पैगम्बर साहेब (हज़रत मुहम्मद) ने क्रम-बद्ध सम्पादित करा दीं"।

कुरान शरीफ़ में 'लौहे महफ़ूज़' का उल्लेख निम्नलिखित आयतों में आया है :—

(१) वल्कि यह कुरान बड़े महत्व का है। लौहे महफ़ूज़ में लिखा हुआ'।* (सूरत वुरुज आयत २१-२२)

---

* बल् हुव कुरानुन् मजीदुन् फ़ी लौहे महफ़ूज़िन्। (बुरुज २१-२२)

इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि जिसको 'कुरान मजीद' कहा जाता है वह वास्तविक अर्थों में तो 'लौहे महफ़ूज़' है। अर्थात् 'कुरान मजीद' का नाम ठीक अर्थों में तो 'लौहे महफूज़' पर ही लागू होता है। जिसको मुसल्मान लोग आजकल कुरान कहते हैं वह तो गौण है। और 'लौहे महफ़ूज़' का वह भाग है जो अवसर के अनुसार अरबी भाषा में मुहम्मद साहेब पर उतरता रहा। इस 'लौहे महफूज' का नाम 'उम्मुल किताब' (किताबों की माता या शास्त्र योनि) है। नीचे की आयत देखिये :—

"अल् किताब (अर्थात् असली कुरान मजीद) रोशन करने वाली है। हमने इस कुरान को अरबी में इसलिये बना दिया कि तुम्हारी समझ में आ जावे। वस्तुतः यह सब 'उम्मुल किताब' (लौहे महफ़ूज़) में लिखा है। जो हमारे पास है और जिसमें बड़ी हिकमत की चीजें हैं।"* (सूरत ज़खरफ़ आयत २, ३, ४)

(३) सूरत 'रहमान' की आयत १, २, ३, ४ देखिये :—

ख़ुदा बड़ा दयालु है उसने कुरान सिखाया। उसने इन्सान को पैदा किया और उसको बयान सिखाया।†

इन आयतों को आप सूरत बक़र की ३१वीं आयत के साथ मिलाकर पढ़ें जिसमें दिया है "खुदा ने आदम को सब पदार्थों के नाम सिखाये।" तो आप इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि यहाँ कुरान से तात्पर्य उस उम्मुल्-किताब (शास्त्रों की जननी) से है जो इन्सान को पैदा करके सृष्टि के आरम्भ में उसको सिखाई

---

* वल् किताबिल् मुबीन्। इन्ना जअलनाहु कुरानन् अरबीयन् लअल्लकुं यािक़लून, व इन्नहू फ़ी उम्मिल् किताबे लदैना ल अलीमुन् हकीम"। (ज़खरफ़ २, ३, ४)

† अर्रहमानु 'अल्लमल् कुरान' खलक़ल् इन्सान। अल्लमहुल् बयान। (रहमान १, २, ३, ४)

गई थी। न कि यह अरबी का कुरान जो अरब वालों की उस समय की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये केवल इस मौलिक कोष से निकाल लिया गया है।

इस प्रकार के शब्द कुरान शरीफ़ में बहुत से मिलेंगे। सम्भव है कि मुसल्मान विद्वान इस बात में हममें सहमत न हों। इसलिये हम यह नया प्रश्न उठाना नहीं चाहते। परन्तु कोई भाष्यकार जिसको साधारण मुसल्मानों में प्रमाणिक माना जाता है ऐसा नहीं है जो इस वर्तमान प्रचलित कुरान को उम्मुल् किताब या लौहे महफ़ूज़ समझता हो।

इसलिये आवश्यक है कि जिस चीज़ के विषय में सभी मुसल्मान विद्वान् सहमत हों उसकी मीमांसा होनी चाहिये।

पहला प्रश्न तो यह है कि 'लौहे महफ़ूज़' या 'उम्मुल् किताब' यह नाम मौलिक धात्वर्थ के द्योतक हैं अथवा उपमा या लक्षणा को प्रकाशित करते हैं। इस बात का निर्णय करने का अधिकार मुसल्मान विद्वानों को है और दूसरों को कम से कम अनुसन्धान के हित में उनकी बात स्वीकार कर लेनी चाहिये।

यदि 'लौहे महफ़ूज़' के धात्वर्थ लिये जावें तो प्रश्न होगा कि यह लौह अर्थात् पट्टी किसी पार्थिव वस्तु मिट्टी, लोहा, लकड़ी, संगमरमर आदि की बनी हुई है क्या? और वह कहाँ है? स्वर्गलोक में या जगत् में? अथवा दोनों लोकों से श्रेष्ठतर किसी ऐसे स्थान में जहाँ खुदा ने उसको महफ़ूज़ (सुरक्षित) कर रक्खा है? यदि यह है तो किस भाषा में? अरबी में तो है नहीं। यदि अरबी में होती तो अरबी कुरान बनाने की आवश्यकता न होती। क्या तौरेत ज़ुबूर और इंजील भी इसी अमर-पट्टिका के अंश थे? इनमें से तो कोई भी अरबी भाषा में न था। फिर जिन देशों में तौरेत, ज़ुबूर इंजील का अवतरण हुआ उनके

अतिरिक्त भी तो भूमण्डल पर बीसियों देश थे। इनको और इनके निवासियों को बनाने वाला भी तो खुदा ही था। उसने इन्सान बनाया तो उसको ज्ञान भी दिया होगा। यदि कुरान शरीफ़ या मुसल्मान विद्वानों के कथन पर विश्वास किया जाय तो वह यह मानते हैं कि हर जाति में हर युग में उनकी योग्यता और आवश्यकता के अनुसार' पैगम्बर और शिक्षक आते रहे। कुरान शरीफ़ में उनका कुछ हाल नहीं मिलता। संकेत मात्र भी नहीं है। क्या इन शिक्षकों के पास भी कोई किताब उतरी थी? संस्कृत, चीनी आदि बड़ी प्राचीन भाषायें हैं। 'लौहे महफ़ूज़' से उनको कब-कब क्या-क्या मिला और वह वर्तमान प्रचलित कुरान शरीफ़ से कितना समान या विरुद्ध है? यह प्रश्न एक अनुसन्धान कर्त्ता के मन में उठ सकते हैं। जो लोग केवल श्रद्धालु हैं वह अपने लिये जो चाहें मान सकते हैं। दूसरों को इस्लाम की दावत नहीं दे सकते।

यदि लौहे महफ़ूज़ से आशय किसी अप्राकृतिक और आध्यात्मिक पदार्थ से है तो उसकी व्याख्या भाष्यकारों ने नहीं की अपितु सर्वसाधारण के मिथ्या विश्वास को और दृढ़ करने के लिये भिन्न-भिन्न कथनों या कथानकों द्वारा इस बात को छिपा दिया गया है। सर सय्यद अहमद साहेब ने कहीं-कहीं सावधानी के साथ हाथ पैर बचाकर उपमाओं की व्याख्या की है परन्तु मौलिक सिद्धान्तों के अनुसन्धान से उनको भी डर लगता था। धर्माध्यक्षों को विचार स्वातन्त्र्य से घोर शत्रुता है।

———

अध्याय १०

हज़रत जिब्राईल

इल्हाम के साथ और विशेष कर कुरान शरीफ़ के इलहाम के साथ हज़रत जिब्राईल का अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्ध है। हज़रत मुहम्मद साहेब से भी अधिक। साधारण मुसल्मानों का विश्वास है कि इलहाम खुदा से चलकर पहले हज़रत जिब्राईल पर आता था। और हज़रत जिब्राईल मुहम्मद साहेब तक पहुँचाते थे। अर्थात् इलहाम के लाने में हज़रत जिब्राईल खुदा और मुहम्मद साहेब के बीच में एक माध्यम थे। अतः हज़रत जिब्राईल के व्यक्तित्व के विषय में भी प्रश्न हैं जिन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

'कुरान शरीफ़ का अवतरण रूहुल् अमीन (हज़रत जिब्राईल) के द्वारा हुआ।* (सूरत शुअरा आयत १९३)

'कह दे कि तेरे खुदा की तरफ से रूहुल् कुद्स (जिब्राईल) ने कुरान शरीफ़ को उतारा है'।† सूरत नहल आयत १०२)

'जो मनुष्य खुदा का, उसके फरिश्तों का और उसके पैगम्बरों का और जिब्राईल और मैकाईल का शत्रु है तो ऐसे नास्तिकों का खुदा शत्रु है'। (सूरत बक़र आयत ९८)‡

---

* नज़ल बिही रूहुल् अमीनो। (शुअरा १९३)

† कुल् नज़्ज़लहू रूहुल् क़ुदसि मिन् रब्बिक। (नहल-१०२)

‡ व मन् कान उदूवुनिल्लाहे, वल् मलाइकते, व रुसुलिही व जिब्रईल, व मैकाईल फ़इन्नल्लाह उदूवुन् लिल् काफ़िरीन्। (बकर ९८)

हज़रत जिब्राईल का शुमार इन्सानों में नहीं होता। वह इन्सानों से श्रेष्ठतर व्यक्ति थे अर्थात् फ़रिश्ता। फरिश्ते क्या हैं? यह एक प्रश्न है? कुरान शरीफ़ में फ़रिश्तों को विशेष पद प्राप्त है। सूरत बक़र की १७७वीं आयत है:—'अपितु नेकी (पुण्य) यह है कि अल्लाह पर, अन्तिम दिन (क़यामत) पर, फ़रिश्तों पर, कुरान शरीफ़ पर और नबियों पर ईमान लावे'।*

अर्थात् फ़रिश्तों पर ईमान लाना उतना ही आवश्यक है जितना खुदा, कुरान या रसूलों पर। अभी ऊपर कह चुके हैं कि जो जिब्राईल का शत्रु है वह खुदा का शत्रु है।

कुरान शरीफ़ में फ़रिश्तों का उल्लेख अनेक स्थलों पर आता है, परन्तु उनकी यथार्थता के विषय में कहीं वर्णन नहीं है। हम संसार में देखते हैं कि ईश्वर है, जीव हैं और प्राकृति है। इनमें से फ़रिश्ते किस जाति के अन्तर्गत हैं? खुदा (ईश्वर) तो हैं नहीं। उत्पत्ति के प्रसङ्ग में लिखा है कि ईश्वर ने इन्सान को, फरिश्तों को और जिन्नों को पैदा किया। (सूरत हिज्र आयत २७)।† यहाँ फरिश्तों के साथ जिन्न और निकल आये। शायद यह एक और जाति है। फ़रिश्तों से अलग? अथवा फ़रिश्तों में से ही कुछ जिन्न भी हैं? जैसे मनुष्य दिखाई देते हैं। जन्म लेते हैं। बड़े होते हैं। और मर जाते हैं क्या इसी प्रकार फरिश्ते भी पैदा होते, बढ़ते और फिर मर जाते हैं।

यह प्रश्न केवल हमारे मन की अटकलें नहीं हैं। मुसल्मान विद्वानों और भाष्यकारों ने भी इन प्रश्नों को उठाया है और लम्बे चौड़े ऊहापोह किये हैं। परन्तु उनकी श्रद्धालुता उनको

---

* व लाकिन्नल् बिर्र मन आमन बिल्लाहे, वल् योमिल् आख़िरे, वल् मलाइकते, वल् किताबे, वन्नबीईन। (बक़र १७७)

† व ल्जान्न ख़लक़ना हु। (हिज्र २७)

विवश करती थी कि अधिक मीमांसा न की जाय जिससे इस्लामी मन्तव्यों को ठेस न पहुँचे। सर सय्यद अहमद भी उन्हीं विद्वानों में से एक हैं। यद्यपि ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न होने के कारण जिसमें साइंस आदि विद्याओं ने बड़ी उन्नति की है और इस कारण से भी कि पश्चिमी संस्कृति का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा है उन्होंने अन्य भाष्यकारों की अपेक्षा अधिक मीमांसा की है। सर सय्यद अहमद लिखते हैं कि जिब्राईल, मीकाईल आदि नाम यहूदियों ने नियत किये थे। यहूदी विद्वान जिब्राईल को बड़ा भाषा-विज्ञ मानते हैं। हज़रत यूसुफ को सब भाषायें इन्होंने सिखाईं, बाबुल के बुर्ज के पश्चात् खुदा ने जो सत्तर भाषायें कर दी थीं वह सब जिब्राईल को आती थीं। सर सय्यद अहमद की धारणा है कि शायद जिब्राईल की भाषा-विज्ञता की प्रसिद्धि के कारण मुसल्मानों ने यह कल्पना करली है कि वह खुदा की वही (इलहाम) अर्थात् कुरान की आयतें खुदा से सुनकर याद कर लेते थे और मुहम्मद साहब को सुनाते थे। सर सय्यद अहमद का विचार है कि ज़िब्राईल का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं। यह केवल हज़रत मुहम्मद साहेब को 'मलकए नबूअत' (अर्थात् इलहाम को ग्रहण करने की शक्ति) का नाम है। नीचे का उद्धरण देखिये :—

'इन दोनों (जिब्राईल और मीकाईल) का नाम कुरान में आने से यह बात साबित नहीं होती कि दर हकीक़त इस नाम के दो फ़रिश्ते अपने अपने लक्षणों (तशखीस) के साथ अलग अलग ऐसे ही व्यक्ति हैं जैसे जैद और उमर! अपितु इन्हीं आयतों से पाया जाता है कि जिस चीज को यहूदी जिब्राईल बताते थे वह किसी अलग व्यक्ति के व्यक्तित्व से विविक्त न थी क्योंकि खुदा ने फरमाया है कि बेशुबह, इसने (जिब्राईल ने) डाला है तेरे दिल पर अल्लाह के हुक्म से वह कलाम जो सच

बताता है उस चीज को जो उससे पेश्तर (पूर्व की) है। दिल में डालने वाला कोई ऐसा व्यक्ति जो उस पुरुष से जिसके दिल में डाला गया है अलग हो ऐसा नहीं होता। पस दरहक़ीक़त यहूदी जिसको जिब्राईल कहते थे और जिसका नाम हिकायतन खुदा ने बयान किया है वह मलकए-नबूअत .खुद आं हज़रत (मुहम्मद साहेब) में था जो 'वही' का साधन था। इससे अगली आयत में खुदा ताला ने बिना जिब्राईल के उल्लेख के फ़रमाया है कि बेशक! हम ने भेजी हैं तेरे पास खुली हुई निशानियाँ। इन कारणों से यह बात कि जिब्राईल दरहक़ीक़त किसी फ़रिश्ते का नाम है साबित नहीं होती। हाँ इतना माना जा सकता है कि इसी मलकए-नबूअत का जिब्राईल नाम रख दिया गया।'

क़ुरान शरीफ़ के वर्तमान समय के प्रसिद्ध भाष्यकार अब्बुल-आला मौदूदी 'तफ़हीमुल् क़ुरान' के पृ० ६२ पर लिखते हैं :—

'मलक के असली मानी अरबी में पयम्बर (दूत) के हैं। इस का शाब्दिक अर्थ फरिस्तादा (भेजा हुआ) या फरिश्ता है। यह केवल मुजर्रद कुव्वतें (गौण शक्तियाँ) नहीं हैं जो अलग व्यक्तित्व न रखती हों। अपितु यह व्यक्तित्व रखने वाले पदार्थ हैं जिनसे अल्लाह अपनी इस विशाल सलतनत के प्रबन्ध और शासन में सहायता लेता है। यों समझना चाहिये कि यह ईश्वरीय शासन के अहलकार हैं जो ईश्वर की आज्ञाओं को कार्यान्वित करते हैं। जाहिल लोग इनको गलती से ईश्वरत्व में भागीदार समझ बैठे और कुछ लोगों ने इनको खुदा का रिश्तेदार समझा और उनको देवता बनाकर उनकी पूजा आरम्भ कर दी।'

सर्व शक्तिमान ईश्वर के लिये अहलकारों की जरूरत खुदा के दरजे को मानवी राजा के दर्जे तक गिरा देती है। हिन्दुओं के देवते भी तो इसी कोटि के अहलकार समझे जाते हैं। अस्तु।

यह भी भाष्य करने का एक नमूना है जो उलझन को सुलझाने के बजाय उलझा देता है। एक भाष्यकार बड़ी लम्बी ऊहापोह के पश्चात् किंवत्तव्य-विमूढ़ होकर कहते हैं 'फ़रिश्तों की हक़ीक़त क्या है ? और वह किस तरह पर अल्ला ताला के मनशा या कलाम को समझते और फिर इसकी तामील करते हैं। इन सवालात का हल करना इन्सान के इदराक (समझ) से बाहर है।'

यही दावा लगभग सब मतमतान्तरों का है जिनका मुसल्मान विद्वान बलपूर्वक खण्डन करते हैं और जो हेतु अपने पक्ष में प्रस्तुत करते हैं वह दूसरों के लिये ठीक नहीं समझते। अस्तु। सर सय्यद की व्याख्याओं से एक बात हमारी समझ में आती है वह यह कि उन्होंने खुदा और मुहम्मद साहब के बीच से एक असत्य दीवार को हटा दिया। और जिब्राईल के हट जाने से न केवल बहुत से आक्षेप ही निरस्त हो गये अपितु मुहम्मद साहब की मलकये नबूअत (ग्रहण शक्ति) में चार चाँद लग गये। सर सय्यद की व्याख्या के पश्चात् मुहम्मद साहब उम्मी या अनपढ़ नहीं हैं अपि तु ईश्वर के उद्देश को समझने और उसको दूसरों के समझाने में विशेष दक्षता रखते हैं। मलका (दक्षता) रखने के कारण वह मलक (फ़रिश्ता) हो गये।

इस व्याख्या का प्रभाव दूसरे मन्तव्यों पर क्या पड़ेगा ? और लोक में जो मिथ्या विचार इस्लाम धर्म के समानार्थक समझ लिये गये हैं और मुसल्मान विद्वान् जिनका खण्डन करने से घबराते हैं इनका क्या बनेगा ?

आजकल के मुसल्मान विद्वान् जिन्होंने विज्ञान के नये से नये आविष्कार और अनुभव प्राप्त किये हैं और जिन से वह किसी प्रकार इनकार नहीं कर सकते वह इस असमंजस में हैं कि विज्ञान और क़ुरान में समानता कैसे स्थापित की जाय ? न

तो वह प्राकृतिक अनुभवों का निषेध कर सकते हैं क्योंकि यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी महान् प्रभु की है और न कुरान को सन्देह की दृष्टि से देखना चाहते हैं क्योंकि इलहाम की नींव कुरान के इल ामी या ईश्वर-वचन होने पर है। डाक्टर गुलाम जैलानी बर्क ने एक किताब लिखी है 'दो कुरान।' इस पुस्तक के पृ० २४३ पर वह 'फरिश्ते क्या हैं ?' यह प्रश्न उठाते हैं :—"जब अल्लाह ने फरिश्तों को कहा।" इत्यादि (बक़र ३)। यहाँ प्रश्न उठा कि फरिश्ते क्या हैं ?

उत्तर—इन्सान में जल-वायु-मिट्टी और अग्नि के संमिलन से बुद्धि उत्पन्न हुई तो फिर सृष्टि को जो इन्हीं तत्वों से बनी है बुद्धि से क्यों वंचित रक्खा जाय ? यूनानी दार्शनिकों ने सृष्टि में दस बुद्धि सत्व स्वीकार किये थे। इन्हीं बुद्धि-सत्वों का नाम मलायक या फ़रिश्ता है। हम जगत् में प्राणधारियों की अनेक कोटियाँ देखते हैं जैसे कछवा, मछली, पशु, पशुओं की भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं जैसे चूहा, बिल्ली, खरगोश, हिरण, भेड़िया, रीछ, चीता और शेर। इन सबके पश्चात् मनुष्य का नम्बर आता है। क्या जीवन की अन्तिम मंज़िल इन्सान है। और बस ? क्या हम इन्सान के बाद एक अदृष्ट सृष्टि अर्थात् फरिश्तों के अस्तित्व की कल्पना नहीं कर सकते ? पत्थर में काम, क्रोध, बुद्धि आदि कुछ भी नहीं। पशुओं में काम और क्रोध तो है बुद्धि नहीं। मनुष्य में तीनों पाई जाती हैं। तो क्या हम ऐसी सृष्टि की कल्पना नहीं कर सकते जिसमें बुद्धि तो हो परन्तु काम और क्रोध न हो ?

मानवी जगत् के भिन्न-भिन्न विभागों पर भिन्न-भिन्न मनुष्य प्रबन्धक के रूप में नियुक्त हैं। कोई जज है कोई सेनाध्यक्ष, कोई गवर्नर। क्या सृष्टि के भिन्न-भिन्न विभागों जैसे मेघ, वायु आदि

पर छोटे छोटे प्रबन्धक नियुक्त नहीं जिनको वेद की परिभाषा में देवता और कुरान की परिभाषा में फ़रिश्ता कहा जाता है।'

यह नमूना है उस खींचातानी का जो कुरानी कल्पनाओं और प्राकृतिक अनुभूतियों के बीच में हो रही है। प्रशंसित लेखक ने कई कल्पनायें प्रस्तुत की हैं। कहीं यूनानी दर्शन के अनुसार दश-बुद्धि सिद्धान्त से काम लिया है कहीं वेदों के देवतों से। परन्तु जिब्राईल किस कोटि में आते हैं और फ़रिश्तों के पंखों की क्या व्याख्या है? यह उलझन तो ज्यों की त्यों बनी है। मुहम्मद साहेब ने सूरत अनआम् की आयत ४९ में कहा है 'मैं नहीं कहता कि मैं फ़रिश्ता हूँ'।* और यह भी आया है कि फ़रिश्तों के पंख हैं।† इनकी क्या व्याख्या की जाय? 'दो कुरान' नामक किताब को पढ़ कर हम को तो यह खुशी हुई कि मजहब में अक्ल को दख़ल दिया जा रहा है।

---

* ला अकूलो लकुं इन्नी मलकुन्। (अन्आम् ४९)

† जाइलिल् मलायकत रुसुलन् ऊलिय अजनहतिन् मस्ना व सुलास, व रुबाअ। (फ़ातिर १) ईश्वर ने फ़रिश्तों को जिनके दो, तीन, चार पंख हैं दूत बनाया।

अध्याय ११

पैगम्बरी का दावा

अरबी में 'रसूल' शब्द का अर्थ है दूत। जो मनुष्य हमारे पत्र हमारे मित्रों के पास ले जाता है वह हमारा रसूल है। जब एक राजा दूसरे राजा के दरबार में कोई दूत भेजता है तो उसके लिये भी 'रसूल' शब्द का बराबर प्रयोग होता है। जब भारतवर्ष के महामंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू अरब गये तो अरब वालों ने उनको शान्ति का 'रसूल' कहकर अपनी प्रसन्नता का प्रकाशन किया।/

परन्तु इलहामी ग्रन्थों के प्रसंग में 'रसूल' उस विशेष व्यक्ति को कहते हैं जिसको खुदा केवल इसलिये संसार में पैदा करता है कि वह खुदा के हुक्मों का दुनियाँ वालों तक पहुँचा देवे। हज़रत मुहम्मद साहेब को इसी अर्थ में 'रसूलुल्लाह' कहा गया है।

'नबी' शब्द को मुसल्मानो, ईसाई तथा युहूदी शास्त्रों में कुछ विस्तृत अर्थों में लिया गया है। जिन लोगों पर कोई किताब नहीं उतरी अपितु साधारण रीति से जिन्होंने खुदा की ओर से इन्सान को हिदायत की वह सब नबी कहलाते हैं। हज़रत मुहम्मद साहेब इस अर्थ में भी 'नबी' हैं। और नबियों में श्रेष्ठतम हैं। ऐसा दावा सब मुसल्मान विद्वानों का है। और यह दावा क़ुरान शरीफ़ की आयतों के आधार पर है। मुहम्मद साहेब इस दावे को स्वीकार करते हैं।

"कह दो कि मैं तुम से यह नहीं कहता कि मेरे पास अल्लाह के खज़ाने हैं और न यह कि मैं परोक्ष-विज्ञ हूँ। और न मैं तुमसे कहता हूँ कि मैं फ़रिश्ता हूँ। मैं तो केवल उस आज्ञा पर चलता हूँ जो ईश्वर की ओर से मुझको प्राप्त होती है।"*

इस प्रकार कुरान शरीफ़ के विषय में तीन प्रकार के विचार हो सकते हैं :—

(१) साधारण मुसल्मानों की मान्यता :—अर्थात् खुदा ने विशेष रूप से हज़रत मुहम्मद साहेब को अपना रसूल बना कर भेजा कि वह संसार के मनुष्यों को शिक्षा दें। खुदा का संदेश हज़रत जिब्राईल फ़रिश्ता खुदा की ओर से लाकर हज़रत मुहम्मद को देते थे। यह संदेश लौहे महफ़ूज़ (अमर-पट्टिका) का एक टुकड़ा होता था जो कि खुदा के पास है। यह संदेश अरबी में होता था। संदेशों की इस संहिता का नाम कुरान शरीफ़ है। मुहम्मद साहेब अन्तिम रसूल थे। अर्थात् क़यामत (प्रलय) तक कोई दूसरा रसूल नहीं आयेगा, अतः मुहम्मद साहेब को अन्तिम नबी भी कहते हैं। क्योंकि रसूलपन का प्रवाह इन पर समाप्त होता है।

(२) विशेष इस्लामी विद्वानों की मान्यताः—जैसे सर सय्यद अहमद या अन्य प्राचीन मुसल्मान विद्वान् जिनके उद्धरण सर सय्यद ने दिये हैं। उनके मत में जिब्राईल कोई विशेष व्यक्ति न थे।' मुहम्मद साहेब को खुदा का हुक्म समझने का मलका या सामर्थ्य था। इसी सामर्थ्य को लोगों ने जिब्राईल का नाम दे दिया। इस मत के अनुसार कुरान शरीफ़ की हैसियत बदल

---

* कुल्। ला अकूलो लकुम्। इन्दी खज़ायिनिल्लाहे। व ला आलमोल् गैब। व ला अकूलो लकुम्। इन्नी मलकुन्। इनत्तबिउ इल्ला मा यूहा इलय्य। (अन्आम् आयत ४९)

जाती है और बहुत सी आपत्तियाँ भी दूर हो जाती हैं क्योंकि खुदा और उसके रसूल के बीच में 'लौहे महफूज' या हज़रत जिब्राईल के हट जाने से ईश्वरीय ज्ञान और रसूल के ज्ञान-ग्रही सामर्थ्य के बीच सीधा सम्बन्ध हो जाता है जैसे आँख और सूर्य के प्रकाश का। परन्तु कुछ प्रश्न तो फिर भी शेष रह जाते हैं। जैसे क्या केवल अरब के लोग ही पथ-भ्रष्ट थे कि हज़रत मुहम्मद साहेब को विशेषतया ? चुना गया। अथवा भूमण्डल के दूसरे देशों के लोग भी शिक्षा की आवश्यकता रखते थे। और क्या यह अरबी का कानून सृष्टि के अन्त तक सब प्रकार की जातियों और अवस्थाओं के लिये उपयुक्त होगा ? इन प्रश्नों को लोगों ने असाध्य समझकर छोड़ दिया है परन्तु यह काम केवल मुसल्मान ही कर सकते हैं। दूसरे लोगों को अपनी बुद्धि लड़ाने और आपत्ति उठाने से कैसे रोका जा सकता है ?

(३) तीसरी एक रीति और है। यह मान लिया जाय कि जब हज़रत मुहम्मद साहेब अरब में पैदा हुये तो उनको अपने निकट के लोगों में बहुत सी बुराइयाँ दिखाई दीं। और उन्होंने संकल्प किया कि यथाशक्ति इन बुराइयों को दूर किया जावे। इस प्रकार वह अरब के लोगों के समक्ष सुधारक रूप में आये। और अरब के निवासियों की भलाई के लिये उन्होंने देशवालों के आचार, विचार, जीवनचर्या, परम्परा, तथा प्रवृत्ति आदि पर विचार करके यह ढंग निकाला कि अपने को खुदा का रसूल और अपनी शिक्षा को इलहाम का रूप दिया जाय।

इस विचार धारा के द्वारा इस्लाम धर्म की अवस्था सर्वथा बदल जाती है। परन्तु बहुत कम आक्षेप शेष रह जाते हैं। भूमण्डल के हरदेश और हर युग में सुधारक लोग उत्पन्न होते रहते हैं। और लोगों को सीधे मार्ग पर लाने के लिये वह कोई ऐसा

ढंग निकालते हैं जिसको सर्व साधारण सुगमता से स्वीकार कर सकें।

यहाँ एक कठिन प्रश्न उत्पन्न होता है। क्या हजरत मुहम्मद साहेब जानते थे कि न तो खुदा ने उनको विशिष्ट रीति से रसूल के रूप में पैदा किया है, न हजरत जिब्राईल कुरान को लाते हैं परन्तु इस युग के अरब वालों को अपना श्रद्धालु बनाने के लिये उन्होंने पैगम्बर (नबी) होने का दावा किया? अथवा वह वस्तुतः अपने को रसूल समझते थे और उन्हें स्वप्न में या जागृति में वस्तुतः यह अनुभव होता था कि कोई फरिश्ता सन्देश ला रहा है?

ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार करने से दोनों प्रकार की धारणाओं के लिये गुंजायश है। संसार भर के इतिहास का अवलोकन कीजिये। सैकड़ों सुधारक मिलेंगे जिन्होंने अपने जमाने में लोगों को गुमराही से बचाने के लिये घोर प्रयत्न किये। परन्तु उनके दावे समान नहीं रहे। और न वह सब के सब सच्चे ही थे। स्वयं कुरान में इस प्रकार के नबियों का वर्णन आया है जिनकी पैगम्बरी का खंडन किया गया है।

लेकिन एक और सूरत भी है जिसको बुद्धि की कसौटी पर कसने से स्वीकार किया जा सकता है। वह यह कि मनुष्य का मस्तिष्क कभी-कभी ऐसी बातों पर विश्वास कर लेता है जो वास्तविकता के विरुद्ध होती हैं। लेकिन उसको सत्य प्रतीत होती हैं। जब उग्र-बुद्धि और दृढ़-संकल्प लोगों की ऐसी धारणा बन जाती है तो वह उसके प्रकाशन के लिये सुगमता से कोई रीति निकाल लेते हैं। हमने कुछ शिक्षित और प्रत्यक्ष में बुद्धिमान् लोगों को देखा है कि उनको भूत चुड़ैल या विचित्र दृश्यों पर विश्वास हो जाता है। और वह उस विश्वास को अनेक रूप से व्याख्या करने लगते हैं। उनके अनुयायी उनकी अंधी पैरवी करते

हैं। इन अनुयायियों का अन्तिम संतोष केवल एक बात से होता है अर्थात् 'खुदा की बातें खुदा ही जाने (वल्लाह आलमो) हम अल्पज्ञों को ननुनच के झमेले में नहीं पड़ना चाहिये।' इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतों के अनुयायी भिन्न-भिन्न विचार रखते हैं। अपने मन्तव्यों को परखने के लिये वह किसी कसौटी को काम में नहीं लाते परन्तु दूसरों के मन्तव्यों को अपनी बुद्धि की कसौटी पर इस जोर से कसते हैं कि असली सोना भी नक़ली नज़र आता है। यह प्रवृत्ति अत्यन्त हानिप्रद होते हुये भी सर्व-प्रिय हो रही है।

क्या यह संभव है कि हजरत मुहम्मद साहेब जैसा महान् पुरुष वास्तविकता के विरुद्ध अपने आप को 'नबी' समझता रहा हो? हमको तो ऐसी धारणा के स्वीकार करने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। दुनियाँ के इतिहास में बीसियों उदाहरण मिलते हैं जिनमें बहुत से सर्व-सम्मानित नेताओं ने अपने निज विचारों को ईश्वर की ओर से भेजी हुई 'वही' समझा। यद्यपि वह वही न थी। आजकल भी ऐसे गुरु मिलते हैं। अभी थोड़े दिनों की बात है कि मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहेब कादियानी ऐसा ही समझते और मशहूर करते रहे कि उन पर खुदा की तरफ़ से वही आती है। आज उनके लाखों शिष्य मौजूद हैं। कई तो बहुत बड़े विद्वान् हैं। जैसे पाकिस्तान के प्रसिद्ध राजदूत ज़फ़रउल्ला खाँ। दूसरे सभी मुसल्मान विद्वानों की धारणा है कि कादियानी मिर्ज़ा साहेब की पैगम्बरी प्रमाद थी। वास्तविक न थी। क्या वही कसौटी हम मुहम्मद साहेब के लिये प्रयोग में ला सकते हैं?

———

अध्याय १२

पैगम्बरी का आरम्भ

मुहम्मद साहेब के देवदूतत्व (पैगम्बरी) से पूर्व की कुछ बातें एक मुसल्मान लेखक की पुस्तक से शब्दशः नक़ल करते हैं। हमारी धारणा है कि कोई ऐसा उदाहरण नहीं है कि किसी मुसल्मान विद्वान ने इससे मत भेद प्रकट किया हो' :—

'एक दिन हरा के मठ में पूर्ववत् उपासना में संलग्न थे कि एक फ़रिश्ता 'वही' लेकर आया और कहा, 'पढ़'। आपने उत्तर दिया कि मैं पढ़ना नहीं जानता। उसने पकड़ कर अपनी छाती से लगा कर ऐसा जोर से दबाया कि आप बेहाल हो गये। फिर छोड़ दिया और कहा, कि. 'पढ़'। फिर आपने वही उत्तर दिया। तीन बार इसी भाँति हुआ। अन्त में उसने कहा—'पढ़ अपने रब का नाम लेकर। जिसने रचा। रचा इन्सान को एक (रक्त की) फुटकी से। पढ़ और तेरे रब ने तुमको बड़ाई दी जिसने कलम की विद्या सिखाई। मनुष्य को वह बात सिखाई जिसका उसको ज्ञान न था।'* हज़रत ने इन आयतों को दुहराया फिर वह फ़रिश्ता चला गया। इस अपूर्व और विचित्र घटना से आप भयभीत हो गये। वहाँ से काँपते हुये घर आये। लेट गये और ख़ुदेजा से कहा कि मुझको चादर उढ़ा दो। जब

---

* इक़रअ बि इस्मि रब्बिक। अल्लज़ी ख़ल़क़। ख़ल़क़ल इन्सान मिन् अलक़ि। इक़रअ। व रब्बुक अकरम ल्लज़ी अल्लमल क़लम। अल्लमल् इन्सान मा लं यालम्।

भय जाता रहा और चित्त को शान्ति हुई तो खुदैजा से इस घटना का वर्णन किया। उन्होंने आपको तसल्ली दी और कहा कि आप नेकी करते हैं। दान देते हैं। दीनों को खिलाते हैं और लोगों का बोझ उठाते हैं। अल्लाह ताला आपको नष्ट न करेगा। फिर वह अपने चचेरे भाई *वरक़ा बिन् नौफ़ल* के पास गईं। जो ईसाई हो गये थे और आस्मानी (धार्मिक) शास्त्र पढ़ा करते थे। उनसे यह सब हाल बयान किया। वरक़ा ने कहा कि यह फ़रिश्ता जिसको मुहम्मद (सल अल्ला अलैहि व सल्लम्) ने देखा है बड़ा फ़रिश्ता है। यही मूसा अलेहस्सलाम के पास आया करता था। यह अवश्य ही इस उम्मत (सम्प्रदाय) के गुरु होंगे। इनसे कह दो कि दृढ़ रहें। इनकी कौम इनको झुट-लायेगी। कष्ट देगी और यहाँ से निकालेगी। मैं यदि उस दिन तक जीवित रहा तो अवश्य इनकी सहायता करूँगा।

'वही' के अवतरण की तिथि—कुरान का अवतरण 'शबे कद्र' (दिव्य रात्रि) को हुआ। मुसल्मान लोगों में शवे कद्र (दिव्य रात्रि) रमज़ान मास के पिछले दस दिनों में कोई अजामि रात्रि होती है।

कुछ ऐतिहासिक कुरान अवतरण की तिथि को रमज़ान की २५ वीं तारीख बताते हैं। चाँद्र विधान से इस दिन मुहम्मद साहेब की आयु ४० वर्ष ६ माह १६ दिन की होगी। और सौर्य विधान से ३९ वर्ष ३ मास १६ दिन। तदनुसार ६ अगस्त ६१० ईसवी।

प्रचार का आरम्भ—मक्का जहाँ से इस्लाम का आरम्भ हुआ अरब का धार्मिक-केन्द्र था। और मक्का वाले अर्थात् कुरैश वंशी लोग 'कावा' के अध्यक्ष, मन्दिर के पुजारी और अरब वालों की दृष्टि में पूजनीय थे। इनमें अपने पैतृक धर्म की श्रद्धा

और सम्मान का बहुत जोश था। अतः ईश्वरीय विधान को यह इष्ट हुआ कि आरम्भ में इस्लाम धर्म का आह्वान चुपके-चुपके हो। अतएव मुहम्मद साहेब अपने विशेष परिचित लोगों में से जिन लोगों में सत्य-निष्ठा और भद्रता देखते थे उन्हें इसकी तरफ बुलाते थे।

इस जमाने में जो लोग इस्लाम लाये वह *साबिक़ीन अव्वलीन* (प्रथम धर्म-निष्ठ) कहे जाते हैं। इनमें से निम्नलिखित चार व्यक्ति विशेषतः वर्णन करने के अधिकारी हैं क्योंकि यह सब से पहले मुसल्मान हुये :—

(१) प्रथम हज़रत खुदेजा (रज़ि०)—रसूल-अल्लाह की पत्नी।

(२) हज़रत अली (कर०)—इनकी आयु इस समय आठ साल की थी। और चूँकि अबूतालिब की औलाद बहुत थी इस लिये इनके खर्च को कम करने के लिये हज़रत (मुह०) ने इनके पालन का भार अपने ऊपर लिया था। और अपने पास रखते थे।

(३) हज़रत अबूबकर सिद्दीक़ (रज़ि०)—यह अपनी क़ौम अर्थात् कुरैश वंश में अत्यन्त प्रिय, इनकी वंशावली और पराक्रमों से सबसे अधिक जानकार और धनी मानी थे।

(४) हज़रत *जैद बिन् हारिस*—इनको जैद-बिन्-मुहम्मद कहते थे। पहले यह हज़रत खुदैजा के गुलाम थे। उन्होंने इन को ह० मुहम्मद साहेब के अर्पण कर दिया था। आपने इनको गोद रख लिया।

'हज़रत अबूब्कर ईमान लाने के बाद अपने दोस्तों को भी इसकी प्रेरणा करने लगे। फलतः उनके परिश्रम से हज़रत उस्मान बिन् अफ़ान, जुबैर बिन अवाम, अब्दुर्रहमान बिन् ग़ौफ़, सअद बिन् अबी वक़ास, तलहा बिन् उबैदुल्लाह, अबू उबेदा बिन् जराह अबू सल्मा, अरक़म मख़ज़ूमी, उबैदा बिन् हारिस, सईद बिन्

जैद अपनी पत्नी फ़ातिमा बिन्त ख़िताब के साथ इस्लाम लाये। (ईश्वर इन का भला करे)। हज़रत मुहम्मद इन लोगों के साथ अरक़म मख़ज़ूमी के घर में जमा होते थे। और वहाँ कुरान की तालीम देते थे।'

'यह घर मक्के में अब तक बाक़ी है। लेकिन अफ़सोस है कि ऐतिहासिक गौरव के अनुसार इसकी ओर ध्यान नहीं दिया गया'।

'तीन वर्ष तक व्यक्तिगत इस्लाम का प्रचार होता रहा। इस काल में एक समूह ने इस दीन को स्वीकार कर लिया जिनमें से बहुतों के पीछे से बड़े-बड़े पराक्रम हैं।'

'*खुला निमन्त्रण* :—जिस समय यह आयत उतरी :—

'तुम को जो हुक्म दिया जाता है उसको खोल कर सुनाओ। और विरोधियों की परवाह मत करो।* उस समय आपने खुल्लम खुल्ला एक-ईश्वर वाद का उपदेश शुरू किया।'

कुरैश सुनकर चुप रहे। कोई विरोध या खण्डन नहीं किया। परन्तु जब आपने शिर्क (अनेक ईश्वर-वाद) की निन्दा की अल्लाह के अतिरिक्त सभी देवी देवताओं को झूठा कहा और उन के मानने वालों और पूजने वालों को पथ-भ्रष्ट कहा तो वह लोग शत्रुता के लिये उद्यत हो गये। इस कारण से कि इससे उनके बाप दादा भी मिथ्या पूजा करने वाले हो गये जिनको वह अपने विचार में सच्चा समझते थे। इन्हीं के अनुसरण और अनुपालन का दम भरते थे। और इन्हीं के पदचिह्नों पर चलने का दावा करते थे।'

'हर एक सुधारक को सब से कठिन मरहला जो पेश आता है वह यही है। जब वह किसी सुधार की शिक्षा देता है

---

* फ़ असदअ बिमा तूमरू। अअरिज़् अनिल् मुश्रिकीन्।
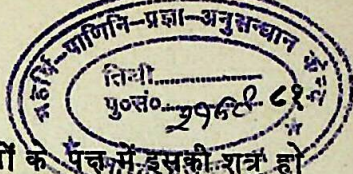
तो अन्ध विश्वासी जाति अपने पूर्वजों के पक्ष में इसकी शत्रु हो जाती है। कि यह इनकी बुराई करता है। और इनको पथ-भ्रष्ट बताता है। इस पक्षपात के कारण हर तरह की रुकावट डालती है और सुधार के लाभ से स्वयं भी वञ्चित रहती है और दूसरों को भी वंचित रखती है। इसी कारण से अल्लाहताला ने पैतृक-अनुकरण को कुरान की कई आयतों में दूषित बताया है'।

(देखो सीरतुर्रसूल, लेखक मुहम्मद असलम साहेब पृ० ६६ से ६९ तक)।

हमने यह लम्बा उद्धरण इस लिये दिया है कि मुसल्मानों का इस्लाम के आरम्भ के विषय में जो दावा है उसका उन्हीं के विद्वानों के शब्दों में वर्णन किया जाय। जिससे इसकी समालोचना करने में कोई आपत्तिजनक बात न आ जाय।

मेरा विश्वास है कि इस उद्धरण की तथ्यता के प्रति किसी मुसल्मान विद्वान को आक्षेप न होगा। यह उद्धरण एक प्रकार से भिन्न भिन्न प्रामाणिक ग्रन्थों और गाथाओं का निचोड़ है और इसकी पुष्टि में प्राचीन इतिहास या भाष्यों को प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। यह उद्धरण हज़रत मुहम्मद साहेब के मुलहिम और कुरान शरीफ़ के इलहाम पर बहस करने के लिये काफ़ी मज़बूत बुनियाद है। आगे के अध्यायों में हम इसकी संक्षेपतः आलोचना करेंगे। सुधारकों के मार्ग में जो कठिनाईयाँ प्रस्तुत होती हैं उनका योग्य लेखक ने स्पष्टता के साथ वर्णन किया है। हर देश, जाति या युग के सुधारकों के समक्ष यही कठिनाइयाँ आती रही हैं। हज़रत मुहम्मद साहेब को हम एक जाति-सुधारक मानते हैं। इसलिये हमको कोई आश्चर्य नहीं कि मुहम्मद साहेब को यह आपत्तियाँ झेलनी पड़ीं। और यही कठिनाइयाँ एक समालोचन करने वाले के समक्ष भी आती हैं। इस्लाम धर्म के वर्तमान सम्प्रदायों, प्रथाओं अथवा आचार

६

व्यवहार की जो समालोचना करता है उसको भी साधारण मुसल्मान उसी दृष्टि से देखते हैं जिससे हज़रत मुहम्मद साहेब को देखा गया था। परन्तु सत्यता के पोषकों की भी संसार में कमी नहीं है। बिना समालोचना के सुधार होता नहीं। अतः समालोचना और सुधार बड़ी कड़वी औषधियाँ हैं। परन्तु मिथ्या-वाद तो घातक विष है। यद्यपि उसमें इतना कड़वापन नहीं। इसलिये संसार के सत्य-निष्ट विद्वान् समालोचना को आदर के भाव से देखते हैं चाहे कितना ही मत-भेद क्यों न हो। जिनको मिथ्या-वाद में ही रस आता है उनके लिये तो इतना ही कहा जा सकता है :—

हश्र क्या उस मरीज़ का होगा।
ज़हर को जो दवा समझता है॥

जो लोग अपने पूर्वजों के सम्मान अपने सम्प्रदाय के पक्ष-पात या लौकिक लाभ के लिये समालोचना अथवा अनुसंधान के शत्रु हैं उन पर क़ुरान शरीफ़ की यह आयत फबती है :—

'उन्होंने अपने आपको ऐसी चीज के बदले बेच डाला जो बहुत बुरी है।'* (सूरत बकर आयत ९०)

---

* बियसम-श्तरौ बिही अनफ़ुसहुम्। (बकर ९०)

अध्याय १३

नबूअत (पैगम्बरी) से पहले

हज़रत मुहम्मद साहेब ने पैगम्बरी का दावा किया जब कि आपकी आयु लगभग ४० साल की थी। इससे पहले न तो वह पैगम्बरी के दावादार हुये और न उनको अपने 'नबी' होने का कोई ज्ञान था। इसलिये एक पक्षपात रहित अनुसन्धान कर्त्ता के लिये यह मानना कठिन हो जाता है कि ईश्वर ने मुहम्मद साहेब को विशेष रूप से रसूल (दूत) बनाकर संसार में उत्पन्न किया। उनके पितृ-युगल अब्दुल्ला और आमिना या उनके पितामह अब्दुल मतलब, उनके चाचा अबूतालिब या उनकी प्रिय पत्नी खुदैजा के दिल में यह गुमान भी न था कि मुहम्मद साहेब नबी हैं। या नबी होने वाले हैं। यद्यपि मुहम्मद साहेब की कुशाग्र बुद्धि, समझदारी, ईमानदारी और शिष्टता की सब ने प्रशंसा की। और प्रसन्नता का प्रकाशन भी करते रहे। जैसा कि हर एक अच्छे पुरुष के प्रियजन किया करते हैं। परन्तु यह तो सामान्य बात है। किसी पुरुष का बुरा होना तो उसके पैगम्बर होने के विरुद्ध एक हेतु हो सकता है। परन्तु जो सद्गुण मुहम्मद साहेब में बताये जाते हैं वह पैगम्बरी के आधार या पैगम्बरी का प्रमाण नहीं हो सकते जब तक कि हम यह न मान लें कि हर एक नेक इन्सान खुदा का रसूल है। परन्तु ऐसा मानना इस्लामी मंतव्यों के विरुद्ध होगा। हज़रत मुहम्मद साहेब से पूर्व अरब के निकटवर्ती देशों तथा दूरस्थ भारत, चीन, जापान आदि देशों के इतिहास में धार्मिक सुधारकों के वर्णन मिलते हैं। हज़रत मरियम और

उनके पति यूसुफ को स्वप्न में फरिश्ते ने ईसा के ईश्वर-पुत्र होने का शुभ सन्देश सुनाया था। यह्यिया (यूहना) के माता पिता को भी स्वप्न के द्वारा सूचित किया गया था।

भारतवर्ष के पुराने इतिहास में जब कोई जाति-सुधारक या धर्म-सुधारक बन कर विशाल कार्य करता है तो उसको परमात्मा का अवतार कहते हैं और उसके सम्बन्ध में बहुत सी भविष्य-वाणियाँ हो जाया करती हैं या पोछे से कहानियाँ गढ़ ली जाती हैं। श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीकृष्णचंद्रजी मुख्य अवतार समझे जाते हैं। यह बात बुद्धि और वेद के तो विरुद्ध प्रतीत होती है कि ईश्वर स्वयं देहधारी बनकर आये। क्योंकि निराकार सूक्ष्मतम ईश्वर का देह की स्थूलता को स्वीकार करना असंभव है। परन्तु कहानियाँ तो बन ही जाती हैं। गीता में लिखा है कि जब अधर्म फैल जाता है और धर्म की ग्लानि हो जाती है तो ईश्वर स्वयं आकर लोगों को धर्म का उपदेश करते हैं। पश्चिमी एशिया के देशों में इस प्रकार के सुधारकों को पैगम्बर, रसूलुल्ला (नबी) का नाम दिया गया है। हजरत ईसा के साथ ईश्वर का विशेष सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया। कुरान शरीफ में इस सम्बन्ध को बहुत निषिद्ध बताया गया है।

(१) ईश्वर को योग्य नहीं कि किसी को बेटा बनावे।* (मरियम ९२)

(२) सब पुरुष जो आस्मान और जमीन में हैं ईश्वर के समक्ष बन्दे होकर आयेंगे।† (मरियम ९३)

(३) युहूदी कहते हैं कि उजैर खुदा का बेटा है। ईसाई कहते

---

* मा यंबग़िर्रहमाने अय्यँतखिज़ वलदन्। (मरियम ९२)

† इन्न कुल्लांमन् फिस्समावातेवल् अर्ज़े इल्ला आतर्रहमाने अबदन। (मरियम ९३)

हैं कि मसीह खुदा का वेटा है। यह उनके मुंह की बातें (कपोल-कल्पनायें) हैं पहले काफ़िर भी इसी तरह की बातें कहा करते थे। यह भी इन्हीं की रीस करने लगे हैं। ईश्वर इनका नाश करे। यहाँ कहाँ भटकते फिरते हैं।* (सूरत तोबा, आयत ३०)

उजैर या ईसा के खुदा के बेटा होने के विरुद्ध यह एक प्रबल युक्ति है और यही युक्ति ईश्वर के देहधारी होने या अवतार लेने के विरुद्ध भी ठीक बैठती है। ईश्वर के लिये यह योग्य नहीं है कि वह सर्व व्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होते हुये स्वयं एक शरीर का आश्रय लेवे। या अपना कोई बेटा बनावे जो दुनियाँ की बुराइयों और मनुष्य के अनाचार को दूर कर सकें। यदि यह सच है कि ईश्वर सब को उत्पन्न करता है। पुण्यात्माओं को भी और पापियों को भी और यदि यह ठीक है कि इनको मारता भी वही ईश्वर है और यदि यह सत्य है कि वह जिसको चाहता है पथ-विचलित करता है और जिसको चाहता है सन्मार्ग पर लगाता है।† (सूरत अन्आम्, आयत ३९) तो उसे न स्वयं अवतार लेने की आवश्यकता है। न बेटा भेजने की। परन्तु यही युक्ति इस बात का भी खण्डन करती है कि वह किसी एक पुरुष को अपना विशेष रसूल (दूत) बना कर भेजे। और उस रसूल को समस्त अन्य रसूलों, सुधारकों और नबियों से उच्च पदवी दे और साथ ही यह भी निश्चित करदे कि

---

* क़ालतिल् यहू दो उज़ैरो इब्नल्लाहे। व क़ालतिन्नसारल् मसीहु इब्नोल्लाहे। जालिक क़ौलुहुँ बि अफ़्वाहिहुँ युज़ाहिऊन। कौलल्लज़ीन कफ़रू मिन् क़ब्लो। कातलहुमल्लाहो आता यूफ़कून। (तोबा ३०)

† मय्यँशाअल्लाहो युज् लिल्हु व मय्यँ यशाअ यज्अल्हु अला सिरातिन् मुस्तकीम्। (अन्आम् ३९)

अब दूसरे रसूलों के भेजने की प्रथा अन्तकाल तक के लिये तोड़ दी गई।

इसलिये कोई ऐसी बात नहीं बतलाई जाती जिससे यह सिद्ध हो सके कि हज़रत मुहम्मद को खुदा की तरफ़ से एक विशेष उद्देश की पूर्ति के लिये विशिष्ट करके भेजा गया था। फिर जिस युग में हज़रत मुहम्मद साहेब अरब में पैदा हुये उस युग में भूमण्डल के दूसरे देशों में भी तो मूर्ति पूजा, और दूसरे अत्याचार या दोष थे। वहाँ के लिये खुदा ने कोई विशेष देव दूत क्यों नहीं भेजा?

इसका एक उत्तर यह है कि ईश्वर किसी को विशिष्ट रूप से नहीं भेजता। हर मनुष्य अपने कर्तव्य में स्वतंत्र है। कुछ लोग स्वार्थी होते हैं और अपनी निज भलाई के समक्ष किसी दूसरे की भलाई का विचार नहीं करते। परन्तु भद्र पुरुष स्वयं अपने अतिरिक्त दूसरों के कष्टों पर ध्यान देता है। उन पर आँसू बहाता है। उनके निराकरण के लिये अपने प्राण भी अर्पण कर देता है। ऐसे ही लोग जाति-सुधारक या धर्म-सुधारक कहलाते हैं। आलंकारिक भाषा में आप उन को रसूल कहें, पैगम्बर कहें। खुदा के भेजे हुये कहें, खुदा के बेटे कहें। खुदा के प्यारे कहें। यह सब शब्द लाक्षणिक हैं यथार्थ नहीं। सत्य केवल इतना है कि यह सुधारक हैं। संसार के हित चिन्तक हैं, नेक हैं। हज़रत मुहम्मद इस वास्तविक अर्थ में देश-सुधारक, जाति-सुधारक और धर्म-सुधारक थे। चालीस वर्ष तक वह वैयक्तिक जीवन शुद्ध भावना से व्यतीत करते रहे। तभी तो खुदैजा ने कहा था कि आप नेक हैं। दीनों की सहायता करते हैं। ईश्वर आप को नष्ट न करेगा। जब चालीस वर्ष की आयु में आप को अनुभव होने लगा कि मुझे सुधार का झंडा उठा कर जोश से काम करना चाहिये तो

वह नबी या पैगम्बर के रूप में अरब वालों के समक्ष आ गये। दुनियाँ भर के सुधारकों का एक सा इतिहास है। जाति का सुधारक ईश्वर का ग्रामोफोन बनकर नहीं आता। वह केवल ईश्वर की आवाज़ नहीं है। अपितु उस आवाज़ का स्वयं उत्तर-दाता है। वह आवाज़ (कल्मा) नहीं अपितु आवाज़ का बोलने वाला (कलीम) है। वह ईश्वर की सहायता तो चाहता है कि उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो। परन्तु वह ईश्वर के हाथ की कठपुतली नहीं होता। मनुष्य अपने काम का स्वयं उत्तरदाता है। हज़रत मुहम्मद भी ऐसे ही थे। उन्होंने चालीस साल तैयारी में लगाये। और शेष पन्द्रह साल वीरता के साथ युद्ध किया। यदि ईश्वर मनुष्य के कामों में हस्ताक्षेप करने लगता तो वह पैगम्बरों को पहली ही साल में इतनी शक्ति दे देता कि वह क्षण भर में अधर्म को नष्ट कर देते। जो चींटी के बनाने की शक्ति रखता है वह सिंह को भी बना सकता है। परन्तु ईश्वर का विधान ऐसा है कि मनुष्य को अपने कामों में स्वतंत्र छोड़ दें। मानव इतिहास हमको यही बताता है।

———

अध्याय १४

'हरा' मठ और उसके पश्चात्

क्या हरा के मठ में जिब्राईल फ़रिश्ता यथार्थतः आया था ? या हज़रत मुहम्मद ने अपने मस्तिष्क से यह बात गढ़ ली ? हम यह दोनों बातें अयुक्त और बुद्धि के विरुद्ध समझते हैं। जिब्राईल फ़रिश्ते के विषय में हम पिछले अध्यायों में पर्याप्त लिख चुके हैं। और सर सय्यद अहमद साहेब ने भी इस बात की पुष्टि की है कि हज़रत जिब्राईल कोई वास्तविक व्यक्ति न थे। उन्होंने मुहम्मद साहेब की ग्रहण शक्ति (मलका नबूअत) को ही फरिश्ते का नाम दिया है अर्थात् हज़रत साहेब की नैसर्गिक योग्यता ही फरिश्ते के रूप में प्रकट हुई। रही यह बात कि मुहम्मद साहेब को फरिश्ते का ख्याल कैसे आया ? और वह स्वयं घबरा क्यों गये ? क्या उस में कुछ वंचना या छल था ? जो बात चौदह सौ वर्ष पूर्व एक दूरस्थ देश में घटी उसकी वास्तविकता तो मनुष्य की बुद्धि से परे की चीज़ है। परन्तु अनुमान यह है कि हज़रत मुहम्मद साहेब का घबरा कर घर भाग आना और खुदैजा की सहायता चाहना यह सब कुछ ठीक हो सकता है। किसी प्रतिष्ठित पुरुष के कथन को उस समय तक झुठलाया नहीं जा सकता जब तक कि विशेषतया प्रबल हेतु न हों।

तो फिर इन दो परस्पर विरुद्ध बातों की व्याख्या कैसे की जाय ? या तो यह माना जाय कि जिब्राईल फरिश्ता एक वास्तविक व्यक्ति है। वह आया और उसने मुहम्मद साहेब को घबरा

दिया। या यह मानों कि उसका कोई अस्तित्व न था। मुहम्मद साहेब ने बात गढ़ ली।

हमारा उत्तर यह है कि इन दोनों विकल्पों को न मानकर भी इस घटना की मीमांसा तथा व्याख्या हो सकती है।

भारतवर्ष तो कोई नया देश नहीं। चौदह सौ वर्ष से हजारों वर्ष प्राचीन इतिहास भारतवर्ष में पाये जाते हैं। भारतवर्ष की योग विद्या बहुत पुरानी है। योग पर सैकड़ों पुस्तकें हैं योगियों के बीसियों सम्प्रदाय हैं। योगियों की बीसियों प्रकार की पद्धतियाँ हैं। कुछ अच्छी हैं। कुछ कठिन हैं। कुछ सरल हैं। कुछ हानिकारक हैं। कुछ निर्दोष हैं। कुछ विधियों में शारीरिक व्यायाम का वर्णन है। जैसे भिन्न-भिन्न प्रकार के आसन, मेरुदण्ड को सीधा करना, आँखों को बन्द करके कानों को उँगलियों से बन्द करना। या उँगली से पकड़ कर नथनों को बन्द करना इत्यादि ! इत्यादि ! कुछ लोग केवल मन को एकाग्र करके प्राणों का नियंत्रण करने (प्राणायाम) का अभ्यास करते हैं। योगियों की भावना है कि यदि प्राणों को नियंत्रित कर लिया जाय तो मन की वृत्तियाँ रुक जाती हैं। जब हमारी पंच-इन्द्रियाँ वाह्य प्रभावों को ग्रहण करना बन्द कर देती हैं तो हृदय के नेत्र खुल जाते हैं और ईश्वर का अपने हृदय में साक्षात्कार हो जाता है।

कि ब चश्मानि दिल मबीं जुज़ दोस्त।
हर्चि बीनीं बदां कि मजहर ओस्त ॥ (मा मुकीमां)

'हृदय की आँख से प्रियतम को छोड़कर और कुछ मत देख। जो कुछ तुझे दिखाई पड़े उसे उसी का प्रकाश समझ।'

वस्तुतः योग एक साधन है हृदय के नेत्रों को खोलने का। ईश्वर देहधारी नहीं है। अतः शारीरिक चक्षुओं से जो दृश्य हम देखते हैं या शारीरिक कानों से जो शब्द सुनते हैं वह न तो

ईश्वर हैं न ईश्वर के गुण। स्थूल शरीर रहित ईश्वर के अभौतिक प्रकाश को तो हृदय की आँख ही देख सकती है। परन्तु हृदय की आँख का खोलना सुगम नहीं है। किसी हिन्दी कवि का कथन है :—

'भीतर के पट जब खुलें बाहर के पट दें।'

अर्थात् जब बाहर के द्वार (भौतिक आँख, कान, नाक आदि) बन्द कर देंगे तो भीतर के द्वार खुल जायेंगे।

कुछ अधकचरे योगी अपने चेलों को केवल बाहरी चमक-दमक तक ही सीमित रखते हैं। योग के आरम्भ-शिक्षण में बहुत सी ऐसी भ्रांतियाँ हो जाती हैं। जैसे जब आप आँख के पलक बन्द करेंगे तो आँख की भौतिक नसों में गति होगी और कुछ प्रकाश सा दिखाई पड़ेगा। शिष्य यह कल्पना करेगा कि यह प्रकाश ही ईश्वर है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। यह प्रकाश भी भौतिक है। इसी प्रकार यदि कानों को उँगलियों से बन्द कर लिया जाय तो भीतर से एक नाद सुनाई देता है। इसको भी बहुत से ईश्वर समझ बैठते हैं। यह नाद भी भौतिक है। ईश्वर नहीं है। न ईश्वर का प्रकाश है न ईश्वर का शब्द है।

योग की बहुत सी क्रियायें हैं जिनका अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु भूल से इनको आध्यात्मिक समझ लिया जाता है। कुछ क्रियायें रोग-प्रद भी हैं। इनसे मूर्छा आ जाती है और ऐसे दृश्य दिखाई देने लगते हैं जिनकी वास्तविकता नहीं होती। पूर्ण योगी अपने शिष्यों को इस प्रकार की क्रियाओं से बचने का उपदेश करते रहते हैं। परन्तु अर्द्ध-शिक्षित योगी ऐसे भूलों का शिकार हो जाते हैं और प्रमाद-वश बहुत सी भ्रान्तियों अथवा असत्य कल्पनाओं में फँस जाते हैं। कुछ ऐसे भी चालाक लोग हैं जो आरम्भिक चमत्कारों को दिखाकर दुनियादारी की

दुकान चलाने लगते हैं। ऐसे योगी प्राचीन काल में भी थे और आज भी हैं। वह दूसरे देशों में जाकर योग के तमाशे दिखाते रहते हैं। पहले भी ऐसा करते रहे होंगे। अरबी भाषा के एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार *अल्-इद्रीसी* ने बैत-लहम (ईसा के जन्म स्थान) का उल्लेख करते हुये लिखा है :—

'इस नगर (बैतलहम) के निकट बहुत से घर हैं। जो चट्टानों को खोदकर बनाये गये हैं और उनमें ऐसे मनुष्य रहते हैं। जो उपासना करने में हब्सनफ़्स (प्राणायाम) करते हैं।' (देखो मजानिल् अदब पृ० १९५)। जिसको अरबी विद्वान् ने 'हब्सनफ़्स' कहा है वह प्राणायाम का शाब्दिक अनुवाद है। हमारा अनुमान यह है कि 'गारहरा' भी कोई शेर की मांद या भेड़िये का गड्ढा न था। अपितु जैसे भारतवर्ष में पहाड़ी स्थान हैं जहाँ साधु या योगी रहते और ईश्वर भजन करते हैं। या जैसा 'बैतलहम' में बताया गया है ऐसे ही 'गारहरा' भी कोई पहाड़ी स्थान रहा होगा। हजरत मुहम्मद साहेब के दादा अब्दुल मतलब भी वहाँ जाया करते थे और मुहम्मद साहेब को भी वहाँ जाकर यौगिक क्रियाओं के करने का शौक हो गया होगा। हमारे पास विस्तृत वर्णन तो है नहीं। उसकी अविद्यमानता मे केवल अनुमान किया जा सकता है। भारतवर्ष के योगी मूर्ति-पूजक नहीं होते। उनका कथन है कि जो योग जानता है वह ईश्वर को अन्तःकरण की आँख से देखता है। उसको मूर्ति आदि वाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं होती। हजरत मुहम्मद साहेब भी ईश्वर-भजन के लिये गारहरा में जाया करते थे, ईश्वर-भजन की विधि नहीं दी गई। संभवतः वह मूर्ति-पूजन के विरुद्ध रहे होंगे। यह भी ज्ञात नहीं कि इस ईश्वर-भजन और आध्यात्मिक योग की शिक्षा उनको कौन देता था और वह किस सम्प्रदाय का योगी था? परन्तु इसमें सन्देह

नहीं कि वह आरम्भिक कोटि के योगी रहे होंगे। इसीलिये उनको मूर्छा आ गई और वह घबरा गये।

उनके समय में अरब में ईसाई और यहूदी आदि भी थे। यह लोग फ़रिश्तों पर विश्वास रखते थे। हज़रत मुहम्मद साहेब ने फ़रिश्तों की कहानियाँ सुनी थीं। ईसाइयों से रूहुलकुद्स (पवित्र आत्मा) के विषय में सुना होगा। इसलिये मूर्छा के आरम्भ में उनके हृदय में फ़रिश्तों का चित्र आ गया होगा। जिब्राईल और मीकाईल तो ईसाइयों और युहूदियों में विशेषतया प्रसिद्ध हैं। इसलिये मूर्छा के साथ जिब्राईल का सम्बन्ध होना असंभव नहीं है। इस युग में मनोविज्ञान (साईकालोजी) ने बहुत उन्नति की है। बड़े-बड़े विद्वानों ने अनुसन्धान करके ग्रन्थ लिखे हैं। उनमें आप पढ़ोगे कि मनुष्य की कल्पना शक्ति कहाँ तक जा सकती है। और पुराने सुने सुनाये किस्सों के आधार पर कैसे-कैसे दृश्य या शब्द दिखाई और सुनाई पड़ते हैं जिनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं होता।

मुहम्मद साहेब की वह अनुभूति जिसको लोग पैगम्बरी का आरम्भ समझते हैं इसी प्रकार की एक कल्पना या दृश्याभास था।

जब वह घबरा गये तो खुदैजा को स्वभावतः घबराहट हो गई। वह एक पति-भक्त महिला थीं और अपने पति के प्रति श्रद्धा भी थी। उन्होंने जैसा कि महिलाओं का स्वभाव है यथा शक्ति मुहम्मद साहेब को सान्त्वना दी। परन्तु इनकी घबराहट कम नहीं हुई। इसीलिये वह 'वरकानैरांफ़ल' के पास गईं। बरक़ा महोदय तो स्वयं ईसाई थे। हज़रत ईसा को खुदा का बेटा मानते थे और रुहुल् क़ुद्स (पवित्रात्मा) पर भी विश्वास रखते थे। उन्होंने तौरैत और इंजील से फ़रिश्तों और नबियों

की कहानियाँ पढ़ी या सुनी होंगी। अतः उन्होंने अपनी श्रद्धानुसार अपनी बहन ख़ुदैजा की सान्त्वना के लिये एक इशारा कर दिया। कि हों न हों हज़रत मुहम्मद 'नबी' हों या 'नबी' होने वाले हों।

इस इशारे ने हज़रत ख़ुदैजा को कितना प्रमुदित न किया होगा ? साधारण ज्योतिषी यदि किसी स्त्री को यह कह जाता है कि तेरा पति धनवान् हो जायगा तो वह फूली नहीं समाती, ख़ुदैजा के लिये तो एक बहुत बड़े सौभाग्य की बात थी कि उसके प्रिय पति नबी हो सकते हैं और उनको 'नबी' की पत्नी होने का गर्व हो सकता है।

ख़ुदैजा के इशारे का मुहम्मद साहेब के ऊपर भी प्रभाव पड़ा। वरक़ा महोदय ने तो केवल संकेत किया था। ख़ुदैजा ने बढ़ चढ़ कर यह शुभ सन्देश सुनाया होगा। मुहम्मद साहेब की संकल्प-शक्ति ने चित्र के चित्रण में आवश्य कुछ रंग मिलाया होगा। बड़े-बड़े नीतिज्ञों के जीवन में इस प्रकार की बहुत घटनायें मिलती हैं। कुछ में सफलता मिल जाती है कुछ असफल रह जाते हैं। सफलता की दशा में लोग इसको भविष्यवाणी कहते हैं और असफलता की दशा में इसी को प्रमाद या अन्ध-विश्वास कहा जाता है। संसार घटना के अंगों पर ध्यान नहीं देता। परिणाम को देखता है।

हज़रत मुहम्मद साहेब सूक्ष्म-बुद्धि थे। चतुर थे। साहसी थे। दृढ़ संकल्प थे। वह थे सुधार-प्रिय। अतः जब उन्होंने वरक़ा के इशारे पर पैगम्बरी की रूप रेखा खींची और उनकी कल्पना शक्ति ने उनकी सहायता की तो उनको यह चित्र बड़ा चित्ताकर्षक दिखाई दिया। अरब वालों के अन्ध-विश्वास पर दृष्टि डालते ही उनको यह विश्वास हो गया कि पैगम्बरी के द्वारा यह सुधार

होगा। वह ईश्वर के नाम पर और फ़रिश्तों के नाम पर लोगों को अनिष्ट मार्ग से दूर कर सकेंगे। अतएव उन्होंने इस मन मोहक चित्र का अधिक विश्लेषण नहीं किया। और न किसी से परामर्श किया। अपितु सुधार की एक पूरी योजना रच डाली और उसी के अनुसार कार्य करने के लिये कटिबद्ध हो गये।

अध्याय १५

सबसे पहले मुसल्मान (साबिक़ीन अव्वलीन)

सबसे पहले मुसल्मान चार हैं। हज़रत खुदैजा, हज़रत अली, हज़रत अबूबकर सिद्दीक़, हज़रत जैद बिन हारिस। यह चारों न दार्शनिक थे न तार्किक, न किसी विद्या के विद्वान्। हज़रत खुदैजा तो पचपन वर्ष की आयु की हज़रत मुहम्मद साहेब की सहगामिनी और पति-भक्त पत्नी थीं। उनका मुसल्मान हो जाना कोई आश्चर्य जनक बात न थी। वह तो मुहम्मद साहेब के बाह्य सौन्दर्य और आन्तरिक सद्गुणों पर इतनी आसक्त थीं कि यदि मुहम्मद साहेब खुदा होने का दावा करते तो मान लेतीं। हज़रत अली मुहम्मद साहेब के प्यारे चचेरे भाई थे। उनकी आयु केवल आठ साल की थी। मुहम्मद साहेब उनका पालन करते थे। खुदैजा और मुहम्मद साहेब दोनों का स्नेह उनको प्राप्त था। उनको मुसल्मान होने में संकोच ही क्या हो सकता था। हज़रत जैद बिन हारिस गुलाम थे, गोद रख लिये गये थे। मुहम्मद साहेब की कृपा का उनके सिर पर बोझ था। उनका शेष जीवन सूचित करता है कि कठिन से कठिन विपत्ति के समय भी जब उनकी अपनी और अपने परिवार की भलाई का प्रश्न था उन्होंने मुहम्मद साहेब की आज्ञा का उसी प्रकार पालन किया मानो वह अब भी दासता के समय को भूले न थे। उनका मुसल्मान होने से हिचकिचाना कृतघ्नता होती।। अब रहे चौथे हज़रत अबूबकर सिद्दीक। आप एक धनाड्य और प्रतिष्ठित सज्जन थे। परन्तु शायद उनकी मिसाल धनाड्य और प्रतिष्ठा प्राप्त सेठ

से ही जा सकती है जो अपनी श्रद्धालुता के लिये प्रसिद्ध हैं। और किसी नये साधु के पीछे सुगमता से लग सकते हैं।

इन चारों मुसल्मानों में से कोई एक भी ऐसा न था जो नबूअत, इलहाम, एक ईश्वरवाद, लोक, परलोक या फरिश्तों के अस्तित्व आदि सूक्ष्म धार्मिक विषयों पर ऊहापोह कर सकता। हज़रत मुहम्मद साहेब बुद्धिमान भो से और साहसी भी। अनुभवी और दुनिया देखे हुये। कठिनाइयों में पले हुये और कठिनाइयों से युद्ध करने में एक सफल सिपाही। उनके हृदय में धर्म और जाति को सुधारने की एक तीव्र ज्वाला थी। सुधार की दो रीतियाँ हैं। एक तो युक्तियों से पथ-भ्रष्टों को समझाया जावे। दूसरा सांसारिक तथा ऐश्वरीय दण्ड का भय दिलाया जावे।

पहली रीति कठिन है। शासन सुगम है, शिक्षा देना सुगम नहीं। एक विद्वान् आचार्य अपने शिष्यों को बरसों पढ़ाता है तब कहीं उस विद्या की सूक्ष्म बातों को सिखा पाता है। फिर भी शिष्य लोग अपने आचार्य के इतने आज्ञा पालक नहीं होते जितने एक साधु के चेले होते हैं। जो केवल एक मंत्र कान में फूंक देता है। जो बात साधुओं के अनुपालन में है वही नबियों की पीरी में भी है, पैगम्बरी का एक परोक्ष भय होता है जो इस लोक और आने वाले परलोक तक विद्यमान् रहता है। सैकड़ों सुधारकों ने इस सूक्ष्म शस्त्र का प्रयोग किया है। इसलिये यह समझ लेना कठिन नहीं है कि अपने आपको पैगम्बर मान लेने में उन्होंने अपने सुधार-सम्बन्धी उद्देश्य की पूर्ति में सफलता समझी। और जब एक दृढ़ संकल्प कर लिया तो उसके अनुसार कार्य करने लगे। कुरान शरीफ़ '*सूरत अहक़ाफ़*' में स्पष्ट दिया है :—

'यह किताब अरबी भाषा में है। उसी को तसदीक़ करने

वाली। कि आततायियों को डराये और पुण्यात्माओं को शुभ सन्देश सुनाये।'* (अहकाफ़ आयत १२)।

यह पैगम्बरी की ही बरकत थी कि लोगों को नरक की आग से डराया जा सकता या स्वर्ग का लालच देकर उसकी ओर रुचि दिलाई जा सकती। कुरान शरीफ़ में मुहम्मद साहेब ने इस नियम का पर्याप्त प्रयोग किया है। जहन्नुम की आग और जन्नत के बाग़ का विस्तृत वर्णन बड़े विस्तार से और ब्योरेवार किया है। मुसल्मानों के अनन्त काल तक बहिश्त में रहने का वायदा और गैर-मुस्लिमों के दौज़ख की आग में सदा जलते रहने का भय दिखाया गया है। जो कोई भक्ति का प्रकाशन करता है सो उससे वायदा किया जाता है कि स्वर्ग के आनन्द तुमको प्राप्त होंगे। जो थोड़ा सा भी विरोध करता है उसको भय दिलाया जाता है कि तुम सदा (अनन्त काल तक) नरक की आग में जलोगे, तुमको खौलता पानी पिलाया जायगा इत्यादि।

हज़रत मुहम्मद साहेब की पहली कोशिश यह थी कि जिन थोड़े से लोगों ने उनकी पैगम्बरी स्वीकार कर ली थी उनकी संख्या बढ़ाई जाय। और ऐसा कोई काम न किया जाय कि जिससे विरोध उत्पन्न हो। यह बड़ी बुद्धिमत्ता की बात थी। अबूबक्र सिद्दीक़ के व्यक्तित्व से उस कार्य में सहायता मिल सकती थी। इसलिये थोड़े ही दिनों में हज़रत उसमान और कुछ लोग सम्मिलित हो गये। इनमें विशेष सज्जन थे '*अरक़म मख़जूमी*'। इन्हीं के घर पर लोग इकट्ठे हुआ करते थे। उस समय तक कुरान का बहुत थोड़ा भाग बन पाया था। और उसी के द्वारा उपदेश हुआ करता था यह क्रम तीन वर्ष तक चालू रहा।

---

* हाजा, किताबुन् मुसद्दिकुन् लिसानन् अरबीयतन् लि युन्ज़िर-ल्लजीन ज़लमू व बुशरल् मुहसनीन। (अहकाफ़ १२)

धीरे धीरे जब इनकी संख्या में वृद्धि हुई वो मुहम्मद साहेब के पैगम्बर होने की बात खुल्लम खुल्ला घोषित करदी गई। जब हज़रत मुहम्मद साहेब दूसरों से कहते थे कि मैं 'नबी' (पैगम्बर) हूँ और मुझ पर 'वही' (ईश्वर का संदेश) उतरता है तो उसका प्रभाव स्वयं उनके ऊपर भी पड़ता था। और उनको अपने नबी होने का पूरा विश्वास हो जाता था। जब उनको कोई नई बात सूझती तो उसको 'वही' मान लेते थे फिर वह कभी कभी ऐसी बातें कह देते थे :—

'हे पैगम्बर, लोगों से कह दो कि मेरे पास 'वही' आती है कि जिन्नों के एक समूह ने इस किताब को सुना तो कहने लगे कि हमने एक अद्भुत क़ुरान सुना।'* (सूरत अल् जिन्, आयत १)

जिस प्रकार के लोग मुहम्मद साहेब के पास जमा होते थे उन्होंने जिन्नों की कहानियाँ सुन रक्खीं थीं। जैसे हिन्दुस्तान के देहात के लोगों में भूतों की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। लोग बिना जाँच किये इन को मान लेते हैं। सब ने चकित होकर कहा होगा कि जब जिन्न कहते हैं कि यह क़ुरान अद्भुत है तो अवश्य अद्भुत होगी। इसको जाँच करने की क्या आवश्यकता ?

यह मनोवैज्ञानिक (साइकोलोजीकल) प्रभाव केवल मुहम्मद साहेब तक ही सीमित नहीं हैं। दुनियाँ के बहुत से प्रसिद्ध सुधारकों के साथ भी ऐसा ही होता रहा है। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् केशवचन्द्रसेन को जब कभी कोई नई बात सूझती तो वह कह दिया करते थे कि यह ईश्वर की आवाज है। उनके मित्रों ने कई बार उनको चेतावनी दी। परन्तु उनका विचार नहीं बदला। मुहम्मद साहेब का कोई साथी इस पल्ले

---

* क़ुल्। ऊहिअ इलय्य अन्नहूस्तमअ न्फ़रुन् मिनल्जिन्ने। फ़क़ालू इन्ना समिअना क़ुरानन् अजबा। (जिन १)

का विद्वान् न था कि वह उनसे जिन्नों के विषय में कुछ विचार विनिमय कर सकता। मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादियानी के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ। विद्यार्थी जीवन में 'गुलाम अहमद' एक चुलबुड़े और जीटिया लड़के थे। उनके साथी जब उन को हँसी में बनाते तो कहते कि तुम को तो वही आया करती है। 'वही' 'वही' सुनते सुनते उनको 'वही' आने लगी। और वह पैगम्बरी का दावा करने लगे। उनके चेले लाखों की संख्या में विद्यमान हैं। इसी प्रकार दयानन्द कालेज कानपुर में एक लड़का पढ़ता था। उसके हाथ की हथेली में एक छोटा सा दाग था। एक दिन किसी ने उससे कह दिया कि यह तो 'ओ३म्' का अक्षर लिखा है। उसको विश्वास हो गया और उसका दावा है कि मैं स्वामी दयानन्द का ही अवतार हूँ। इसकी पुष्टि में वह अपनी हथेली दिखाता है। कुछ उसके चेले भी हैं। परन्तु उसमें नेता होने की योग्यता (अर्थात् मलकै नबूअत) नहीं है इसलिये उसकी प्रसिद्धि नहीं हो सकी। मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहेब में नेता होने की कुछ कुछ योग्यता थी। इसलिये उन को कुछ सफलता हुई परन्तु हज़रत मुहम्मद साहेब को अन्तिम पैगम्बर मानने वाले मुसल्मान मिर्ज़ा गुलाम अहमद को 'नबी' कैसे मान सकते थे? अतएव उनका विरोध हुआ। वह इस्लाम के वृक्ष में एक पैवन्द था और पैवन्द ही रह गया।

इसलिये जो लोग धार्मिक अनुसन्धान को बुद्धि की कसौटी पर कसना चाहते हैं वह मुहम्मद साहेब को एक बुद्धिमान नीतिज्ञ और कुरान शरीफ़ को एक सुधार का ग्रन्थ तो मान सकते हैं परन्तु हज़रत मुहम्मद साहेब का मुलहिम और कुरान शरीफ़ का इलहाम (ईश्वर वाणी) होना तो समझ में नहीं आता।

———

अध्याय १६

सबसे पहली 'वही'

इस्लाम धर्म के प्रचारक विद्वानों ने पहली 'वही' (इलहाम का वह भाग जो सबसे प्रथम अल्लाह की ओर से मुहम्मद साहेब के ऊपर उतरा) के विषय में लिखा है 'कि हज़रत मुहम्मद (सल्लह) को एकान्त से प्रेम था। और नबूअत से पहले 'गार-हरा में जो मक्के से कुछ मील पर है ईश्वर-भजन के लिये जाया करते थे। जब से सत्य-स्वप्न आने लगे उस समय से और भी इस अभ्यास में आधिक्य हो गया। कई-कई रातें वहीं गुजार देते थे और अपने साथ खाना ले जाते थे। जब वह समाप्त हो जाता तो हज़रत खुदैजा के पास आते थे और फिर खाना ले जाते थे। यहाँ तक कि एक बार इसी तरह गारहरा में ईश्वर-भजन में संलग्न थे कि फ़रिश्ता 'वही' लेकर आया और कहा कि 'पढ़'। आपने उत्तर दिया कि मैं पढ़ना नहीं जानता। उसने पकड़ कर अपनी छाती से लगाकर इतने जोर से दबाया कि आप बेहाल हो गये। फिर छोड़ दिया। और कहा कि 'पढ़'। आपने फ़िर वही उत्तर दिया। तीन बार ऐसा ही हुआ। फिर उसने कहा—'अपने रब का नाम लेकर पढ़ जिसने रचना की। जिसने इन्सान को फुटकी से रचा। पढ़ तेरा रब बड़ा दयालु है। जिसने कलम के द्वारा पढ़ाया। मनुष्य को वह विद्या पढ़ाई जिसे वह नहीं जानता था।'*

* इक़्रअ बिस्म रब्बेक-ल्लज़ी खलक़। खलक़ल् इन्सान मिन् अल्क़े। इक़रअ। व रब्बुकल् अकरमो। अल्लज़ी अल्लम बिल् क़लमे अल्लमल् इन्साने। मालंयालम्। (सूरत अल्क़—आयत १-२-३-४-५)

इस अपूर्व और अनायास घटने वाली घटना के कारण वह भयभीत हो गये वहाँ से काँपते हुये घर आये और हज़रत खुदैजा से कहा कि मुझे चादर उढ़ा दो (देखो अल् कुरान पृ० २७-२८)।

हमारे पास इस घटना के प्रमाण में मुसल्मान विद्वानों के लेखों के अतिरिक्त कोई बाह्य या आन्तरिक प्रमाण नहीं है। अरबी के जिस उद्धरण का हमने ऊपर अनुवाद दिया है (अरबी की मूल टिप्पणी में देखो) वह सूरत 'अल् इल्क़' की पहली पाँच आयतें हैं। कहा जाता है कि यह कुरान शरीफ की सबसे पहली आयतें थी जिनका मुहम्मद साहेब पर अवतरण हुआ। यद्यपि सूरत 'अल् अल्क़' आजकल की कुरान शरीफ़ में ९६वीं सूरत है और सीपारे* 'अम्म' अर्थात् तीसवें सीपारे में दी हुई है। मुजल्मानों ने कुरान शरीफ़ को उसी क्रम से क्यों संग्रहीत नहीं किया जिसमे उसका अवतरण हुआ। इसके विषय में हम अलग से विचार करेंगे परन्तु किसी मुसल्मान को इनकार नहीं कि सूरत अल्क़ पहली सूरत न थी या कुरान शरीफ़ का अवतरण इसी क्रम से नहीं हुआ था जिसमें वह आज पाया जाता है। हमारे पास एक कुरान ऐसा भी है जिसमें सूरतों का क्रम अवतरण के क्रमानुसार है परन्तु वह अपूर्ण है। यदि उसी क्रम को रहने दिया गया होता तो सुगमता से ज्ञात हो सकता था कि हज़रत मुहम्मद साहेब के विचारों में स्वाभाविक रीति से किस प्रकार विकास हुआ और कुरानी शिक्षा के उतार चढ़ाव पर हम सुगमता से विचार कर सकते। फिर भी मुसल्मान विद्वानों और भाष्यकारों ने अवतरण-काल के महत्व पर पर्याप्त

---

* कुरान के स्वाध्याय की सुविधा के लिये तीस भाग कर दिये हैं कि भक्त लोग एक-एक दिन में एक-एक भाग पढ़कर महीने भर में पूरा कुरान पढ़ डाला करें। इस हर एक भाग का नाम सीपारा है।

बल दिया है। और अवतरण काल के क्रमानुसार मिलाकर घटनाओं की मीमांसा करने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

हम योग के सम्बन्ध में कुछ लिखकर दिखला चुके हैं कि स्वप्न या कल्पनायें या घबराहट या भय आदि अनुभूतियाँ योग सीखने वालों के लिये असाधारण नहीं हैं। अच्छे योग सिखाने वाले अपने चेलों को पहले से ही सावधान कर देते हैं कि ऐसी आपत्तियों में धैर्य रक्खें। हज़रत मुहम्मद साहेब को शायद ऐसे योगी का सामीप्य प्राप्त न था। परन्तु उनको घबराहट के समय यह अनुमान कदापि न था कि यह फरिश्ता है और खुदा की ओर से आया है। अन्यथा उनको यह घबराहट कदापि न होती।

जो आयतें हैं वह मामूली सी हैं। कोई नई बात नहीं कही गई। जंगली से जंगली अशिक्षित जातियाँ जो ईश्वर के नाम से परिचित हैं यह जानती हैं कि ईश्वर सबका रचयिता है और मनुष्य को खून की फुटकी से उत्पन्न किया है। अरब में 'इकरअ बिस्मि रब्बेक' अर्थात् 'अपने मालिक का नाम लेकर पढ़' यह वाक्य पहले से ही प्रयोग में आता था। 'बिस्मिल्लाहर्रहमानिर्रहीम' कहने की प्रथा न थी। 'रहमान' और 'रहीम' शब्द पीछे से बढ़ाये गये हैं। और 'इकरअ' शब्द का लोप हो गया है। बहुत से विद्वान् मुसल्मान इसको कुरान का भाग नहीं मानते। 'रहमान' और 'रहीम' का यह आधिक्य अच्छा है। चाहे किसी ने किया हो।

'ख़लक़' और 'अलिक़' का क़ाफ़िया (तुक) मिलता है। तुकान्त वार्ता ललित समझी जाती है। हिन्दी में इसको तुकबन्दी कहते हैं। (अरबी में इसको मुक़फ़्फ़ा तुकान्त कहते हैं)। परन्तु ऐसी तुक बन्दियाँ हर देश और युग के ग्रामीण लोग भी किया करते हैं। इस साधारण बात को अपौरुषेय (ईश्वरीय) कहना नितान्त मिथ्या है। हज़रत मुहम्मद साहेब स्वयं इतने योग्य थे

कि वह इस वाक्य को कह सकते थे। इसमें शब्द या भाव की कोई असाधारण बात नहीं है। अब रही 'क़लम' की बात (अल्लज़ी अल्लम बिल् कलमे—अर्थात् क़लम से ज्ञान दिया)। यह तो सरासर गलत है। ईश्वर बोलने के लिये मुंह और सुनने के लिये कान देता है। ईश्वर ने यदि आदम को सब चीजों के नाम सिखाये तो वह मुंह से ही सिखाये होंगे। लिखना तो जगत् में बोलने की भाषा के बहुत दिनों पीछे आरम्भ हुआ है। यद्यपि मुहम्मद साहेब के समय में लिखने पढ़ने का रिवाज था। कवि लोग कवितायें लिखकर 'क़ाबे' के द्वार पर लटका देते थे। मुहम्मद साहेब भी व्यापार के समय का कुछ हिसाब किताब रखते होंगे। 'कलम' शब्द अरबी है परन्तु कोई विद्वान् यह नहीं बता सकता कि यह शब्द सबसे पहले लिखने के औज़ार (उपकरण) के अर्थ में कब क्यों प्रयुक्त हुआ ? मुहम्मद साहेब के समय में किस प्रकार का क़लम अरब में चालू था यह तो अलग अनुसन्धान का विषय है। परन्तु यदि कल्पना शक्ति से काम लिया जाय, तो संस्कृत भाषा में 'कलम' ज्वार या बाजरे के पौधे के डंठल को कहते हैं। संभव है कि भारत के लोग कभी लेखनी ज्वार के सेंटे की बनाते हों। अब तक गाँवों में सेंटे अर्थात् साधारण 'नेज़ो' से कलम बनाई जाती है। शायद लेखनी का नाम 'कलम' या 'क़लम' पड़ गया हो। यह असम्भव तो है नहीं। अस्तु। किंबहुना ! ऊपर की आयत में 'कलम से' 'इल्म' सिखाना खुदा का काम नहीं है। न यह आयत उस 'लौहे महफ़ूज़' (अमर-पट्टिका) की ज्यों की त्यों नकल हो सकती है जिसको पूर्ण इलहाम या अमर इलहाम कहा जा सके। हज़रत मुहम्मद साहेब लिखने की विद्या से अनभिज्ञ न थे। उन्होंने 'अहद' के युद्ध के पश्चात् सन्धि पत्र पर स्वयं हस्ताक्षर किये थे। और जब विरोधियों ने 'मुहम्मद रसूलुल्लाह' पर आक्षेप किया तो

उन्होंने इसके स्थान में काटकर 'मुहम्मद बिन् अब्दुल्ला' बना दिया।* इससे मुहम्मद साहेब का अनपढ़ या अशिक्षित होना तो सिद्ध नहीं होता। एक चालीस-वर्षीय कुशाग्र बुद्धि, अनुभवी तथा नीति-निपुण मनुष्य के मस्तिष्क से किसी मनोवैज्ञानिक अवस्था के प्रभाव में इस प्रकार के वाक्य बोलना कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं है। यदि वरका बिन् नौफिल महोदय ईसाई शिक्षा के प्रभाव में पैगम्बरी का शोशा न छोड़ देते और यदि कोई दक्ष योग सिखाने वाला या बीसवीं शताब्दी का मनोविज्ञान-वेत्ता उनको समझा देता कि उनके घबराहट का मुख्य कारण क्या है तो वे संभवतः अपनी सुधार करने वाली योग्यता का प्रकाशन किसी दूसरे ढंग से करते। परन्तु हमको इसके स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि अरब के लोगों की तत्कालीन अवस्था ने हज़रत मुहम्मद साहेब को उस प्रणाली के अपनाने के लिये प्रोत्साहित कर दिया जो उनके सम्बन्ध में बताई जाती है।

* अहद का युद्ध वह सबसे बड़ा युद्ध था जिसमें मुहम्मद साहेब की हार हुई और उनके बहुत से वीर मारे गये। मुहम्मद साहेब ने शत्रु से सन्धि कर ली। सन्धि पत्र पर अपना नाम लिखा मुहम्मद 'रसूलुल्ला'। शत्रु पक्ष ने रसूलुल्ला शब्द पर आपत्ति की। क्योंकि यदि शत्रु मान लेता तो इसका अर्थ यह होता कि शत्रु को मुहम्मद साहेब का रसूल या पैगम्बर होना भी स्वीकार है। मुहम्मद साहेब का पल्ला हल्का था। अतः उनको हस्ताक्षर का 'रसूलुल्ला' भाग काटना पड़ गया। उन्हों उसके स्थान में 'मुहम्मद बिन् अब्दुल्ला' लिख दिया। क्योंकि अपने नाम के साथ बाप का नाम भी लिखा जाता है। शत्रु इतने से सन्तुष्ट हो गये। क्योंकि उन्होने इसका यह अर्थ लगाया कि सन्धि 'ईश्वर के दूत' के साथ नहीं हो रही अपितु एक साधारण मनुष्य के साथ हो रही है।

———

अध्याय १७

भाषा-लालित्य का चमत्कार

कुरान शरीफ़ की भाषा बड़ी मधुर और ललित है। साधारण अरबी जानने वाले को भी इसके पढ़ने में मजा आ जाता है। मुसल्मान विद्वानों की दृष्टि में यह लालित्य और विशदता के लिये प्रसिद्ध है। और भाष्यकारों की लेखनी ने तो इस भाषा लालित्य को आकाश में चढ़ाने में कोई अतिशयोक्ति शेष नहीं रहने दी। इतना तो हर मनुष्य को स्वीकार करना पड़ेगा कि रचना अनुप्रास-मय और अलङ्कार-आभूषित है। परन्तु हमको कोई ऐसी बात ज्ञात न हो सकी जिसके आधार पर हम कह सकें कि यह रचना की विशदता मनुष्य की शक्ति से बाहर की चीज़ है। और ईश्वर-वाणी होने का एक विशेष प्रमाण है। प्रथम तो 'ईश्वर की वाणी' का विशिष्ट अर्थ ही क्या? केवल श्रद्धालुता और अन्ध-विश्वास है। सर्वव्यापक ईश्वर को जो प्रत्येक हृदय में उपस्थित है और हर हृदय में भावों का आविर्भाव कर सकता है भाषण कला की कोई अपेक्षा नहीं। केवल मुहम्मद साहेब के समय के अरब के लोग ही यह मान सकते थे कि ईश्वर उन्हीं के समान अरबी भाषा में बातचीत करता है और ऐसी सुरचित अरबी में जिसको कोई अरब का निवासी बोल ही नहीं सकता।

कुरान शरीफ़ की एक आयत में इस प्रकार का दावा तो किया गया है कि कुरान शरीफ़ खुदा की ओर से है क्योंकि

कोई मनुष्य ऐसी सूरत बना नहीं सकता। वह सुविख्यात आयत यह है :—

'और यदि तुमको इस (किताब) में जो हमने अपने भक्त (अरब के मुहम्मद) पर उतारी है कोई सन्देह हो तो इस भांति की एक सूरत तुम भी बना लाओ। और अल्लाह को छोड़कर जो तुम्हारे सहायक हों उनको भी बुला लो यदि तुम सच्चे हो।* (सूरत बकर आयत २३)

यह आयत इतनी प्रसिद्ध है कि शायद हर पढ़ा लिखा मुसल्मान इसको जानता है और कुरान के इलहामी होने में इस प्रमाण को प्रस्तुत करता है। परन्तु हमारी दृष्टि में यह बड़ी लचर दलील है। या यों कहना चाहिये कि दलील ही नहीं। यों तो हर मत का मानने वाला अपने मत की सिद्धि के लिये कभी-कभी एक छोटी सी बात को भी अकाट्य प्रमाण समझ लेता है। श्रीकृष्ण जी ने मुँह फाड़ा और समस्त विश्व का चित्र उसमें दृष्टिगोचर हो गया। इसीलिये श्रीकृष्ण महाराज स्वयं ईश्वर थे यह भी एक युक्ति है। जमशेद के पास एक प्याला था। उसमें उसे विश्व भर दिखाई पड़ता था। परन्तु इस प्रकार की युक्तियाँ हेतु-शून्य प्रतिपत्तियाँ हैं और श्रद्धालुओं को बहलाने के लिये हैं।

वह कौन सी सूरत है जिसके विषय में कहा गया है कि ऐसी कोई सूरत तुम नहीं बना सकते। क्या केवल 'सूरत बकर' या सम्पूर्ण कुरान शरीफ़ ?

सूरत यूनस की ३८ वीं आयत में वही है जो सूरत बक़र

---

* व इन् कुन्तुं फी रैबिं मिंमा नजल्ना अला अब्दिना, फातू बिसूरतिं मिं मिस्लिही व अदऊ शहदाअकुं मिन् दूनिल्लाहे इन् कुन्तुं सादिकीन। (बकर २३)

में है। दो एक शब्दों का ही अन्तर है।*

सूरत 'हूद' की १३ वीं आयत में है :—

'कह दो कि अगर तुम सच्चे हो तो तुम भी ऐसी दस सूरत बना लाओ। और खुदा के सिवाय जिसको बुला सकते हो बुला लो।'†

आयत १४ में है : —

'यदि वह तुम्हारी बात स्वीकार न करें तो जान लो कि वह (कुरान) खुदा की तरफ से उतरा है। और यह कि उसके सिवाय कोई दूसरा उपास्य नहीं, तो तुमको भी इस्लाम ले आना चाहिये'।§

सूरत 'हूद' में एक सूरत के स्थान में दस सूरतें लाने का चैलेंज दिया गया है। यह पता नहीं चलता कि 'मिस्लिहि' अर्थात् 'इस के समान' में 'इस' शब्द से किस सूरत की ओर संकेत है, किसी एक की अथवा सम्पूर्ण कुरान की? सूरत हूद की १४ वीं आयत से यह तो स्पष्ट है कि मुहम्मद साहेब विरोधियों को चैलेंज देते थे कि ऐसी सूरत बनाकर लाओ और लोगों से कहते थे कि यदि विरोधी लोग ऐसी सूरतें बनाकर नहीं ला सकते तो समझ लो कि कुरान शरीफ़ खुदा का कलाम है और उनको मुसल्मान हो जाना चाहिये।

---

* क़ुल् फातू बिसूरीतं मिस्लिहि व अदऊ मनिस्तअतुं मिन्दूनिल्लाहि इन् कुन्तुं सादिक़ीन। (यूनस ३८)

† क़ुल् फ़ातू बि अशूरिं सुवरिन् मिस्लिहि मुफ़्तरायितिन् वदऊ मनिस्तअतुं मिन्दूनिल्लाहि इन् कुन्तुं सादिक़ीन। (हूद १३)

§ फ़इल्लम् यस्तजीबू लकुम् फ़ालिमू अन्नमा उनूज़िल बि इल्मिल्लाहि व अन् ला इलाहि इल्ला हुव फ़ हल् अन्तुं मुस्लिमून। (हूद आयत १४)

सूरत बनी इस्राईल आयत ८८ में है :—

'कह दो कि यदि इन्सान और जिन्न इस बात पर मिल जावें कि इस क़ुरान जैसा बना लायें तो इस जैसा न ला सकेंगे। यद्यपि वह एक दूसरे के सहायक हों।'*

इस आयत से एक बात स्पष्ट हो गई अर्थात् चैलेंज सम्पूर्ण क़ुरान के विषय में है न केवल किसी एक विशेष सूरत के।

सूरत 'क़सस' आयत ४९ में है :—

'कह दो कि अगर सच्चे हो तुम खुदा के पास से और कोई किताब ले आओ जो इन दोनों किताबों से बढ़कर मार्ग दिखाने वाली हो।'†

इस आयत में स्वयं बना लाने के लिये तो चैलेंज नहीं है परन्तु दो किताबों से उत्तर इलहाम खुदा की ओर से लाने के लिये चैलेंज है। दो किताबों से अभिप्राय है *तौरेत और क़ुरान* से क्योंकि इसी आयत से पहले हज़रत मूसा का वर्णन है।

यदि अवतरण के क्रम की अपेक्षा से देखा जाय तो सूरत बनी इस्राईल इन पाँचों सूरतों में सब से प्रथम है अर्थात् अवतरण के क्रम से ६७ वीं। (वर्तमान संहिता में इसकी संख्या १७वीं है)। सूरत हूद ७५वीं (वर्तमान संहिता में ११ वीं), सूरत क़सस ७९ वीं (वर्तमान संहिता में २८ वीं। सूरत यूनस ८४ वीं (वर्तमान संहिता में १० वीं) सूरत बक़र ९१ वीं

---

* क़ुल् लइ निज्तमअतिल् इन्सो वज् जिन्नो अला अय्यांतू बिमिस्लि हाज़ल् कुर्आनि लायातून बिमिस्लिहि व लौ कान बाज़ोहु बिबाज़िन् ज़हीरन्। (बनी इस्राईल ८८)

† क़ुल् फ़ातू बि किताबि मिन् इन्दिल्लाहे हुव अह्दा मिन् हुमा अत्तबिअहू इन कुन्तुं सादिक़ीन। (क़सस ४९)

(वर्तमान् संहिता में दूसरो)। पहली चार मक्की हैं। अन्तिम (बक़र) मदनी हैं।*

सूरत 'बनी इस्राईल' में पूरी कुरान के बराबर बना लाने के लिये चैलेंज है। सूरत 'हूद' में दस सूरतें बना लाने के लिये। सूरत 'क़सस' में तौरेत और कुरान के बराबर कोई किताब ले आने के लिये। सूरत यूनस और सूरत बक़र में कोई सूरत बना लाने के लिये।

सूरत बनी इस्राईल से पहले ६६ बार 'वही' उतर चुकी थी। किसी में भाषा-लालित्य के आधार पर इलहाम का दावा नहीं किया गया। जब दावा किया गया उस समय मुहम्मद साहेब के मित्रों और मुसलमानों की संख्या बढ़ चुकी थी, यद्यपि विरोधियों का भी प्राबल्य था जिसके कारण हिजरत (मक्का-त्यागने) को आवश्यक समझा गया। परन्तु दोनों ओर से युद्ध शस्त्रों का था भाषा-मीमांसा का नहीं। तलवार का था कलम का नहीं। युद्ध-प्रिय शस्त्रधारियों का था। सत्य के खोजने वाले दार्शनिकों या धर्म के जिज्ञासुओं का नहीं। मदीने के लोग तो मक्के वालों से साहित्य के विषय में बहुत पोछे थे। वह भाषा लालित्य में मुहम्मद साहेब की क्या बराबरी कर सकते? मदीने में तो विरोधी भी मुसल्मानों से भय खाते थे इसलिये सूरत

---

*कुरान शरीफ़ की वर्तमान संहिता में जो सूरतों की क्रम संख्या पाई जाती है वह वही नहीं है जिस क्रम से सूरतें खुदा की ओर से उतरा करती थीं। जो सूरतें हिजरत (अर्थात् मुहम्मद साहेब के मक्का छोड़कर मदीने चले जाने) के पूर्व उतरीं वह 'मक्की' कहलाती हैं चाहे वह मक्के में उतरीं या उसके पास किसी स्थान में। हिजरत के बाद की 'मदनी' कहलाती हैं क्योंकि वह 'मदीना' या उसके आस-पास उतरी हैं।

'स्कर' का चैलेंज युद्ध-प्रिय अनुयायियों के मध्य में चमत्कार (लोकोत्तर घटना) बना रहा। मक्का के कवियों ने इस चैलेंज को स्वीकार तो किया और कुरानी आयतों की जोड़ की आयतें भी बनाईं जो रचना-लालित्य में कुछ कम न थीं। परन्तु दस सूरतें या पूरा कुरान बनाने का किसको अवकाश था। उदाहरण के लिये कुरान शरीफ़ की एक सूरत है 'सूरत फ़ील'। एक पुरुष था '*फ़ारूक़ मसीलिमा*' उसने मुहम्मद साहेब के चैलेंज को स्वीकार कर लिया और अपनी ओर से ऐसी ही एक सूरत बना दी। यद्यपि अरब के विद्वानों की दृष्टि में फ़ारूक़ की रचना कुरानी आयतों की तुलना में अधिक विशद है परन्तु यदि ऐसा न भी होता तो हम केवल इतना मान सकते थे कि मुहम्मद साहेब फ़ारूक़ मसीलिमा की तुलना में अधिक उत्कृष्ट हैं।*

इस प्रकार की बहुत सी घटनायें हैं। जिनके डर से मुसल्मान विद्वानों ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि रचना—लालित्य कुरान के इलहामी होने का सबूत नहीं है। कुरान के इलहामी होने के हेतु अन्य हैं। मौतजिला सम्प्रदाय का नेता 'हज़रत निज़ाम' कहता है कि वास्तव में ऐसे लोग हैं जो इसी

---

*कुरान की सूरत फ़ील यह है :—

अलंतर कैफ़ फ़अल रब्बुक बि असहाबिल् फ़ील। अलं यज्अल कैदिहिम् फ़ी तज़्लीलिन्। व अर्सल अलेहिम् तैरन् अबाबील। तर्मीहिम् बि हिजारतिं मिन् सज्जीलिन् फ़ा जअलहुँ क असफ़िन् मा कूलिन्।

फ़ारूक़ मसीलिमा ने इसी जोड़ की नीचे लिखी सूरत बनाई थी :—

अल् फ़ील। व मा अदरैकुमल् फ़ील! लहू जंबि वसील्। व लहू खरतूमुत्तवील। व इन जालिक मन् खलक़ रब्बुनल् फ़ील। अला कुल्लि शैयिन् कफ़ील।

जोड़ की सूरत लालित्य, विशदता तथा काव्य की अपेक्षा से बना सकते हैं।* सर सय्यद अहमद 'तफ़सीरुल् क़ुरान' सूरत बक़र में लिखते हैं :—

मगर यह बात कि उसकी मिसाल कोई नहीं कह सका या कह सकता उसके 'मिन् अल्लाह' (अल्ला की ओर से) होने की दलील नहीं हो सकती। किसी कलाम की नज़ीर न होना इस बात की तो बिला शुबह दलील है कि उसके मानिन्द कोई दूसरा कलाम मौजूद नहीं है। मगर इसकी दलील नहीं है कि वह ख़ुदा की तरफ से है। बहुत से कलाम इन्सानों के, दुनियाँ में ऐसे मौजूद हैं कि उनकी मिसाल फसाहत और बलागत में आज तक दूसरा कलाम नहीं हुआ। मगर वह 'मिनल्लाह' (ख़ुदा की ओर से उतरे हुये) तस्लीम नहीं हो सकते।"

इतना तो हर मनुष्य स्वीकार करेगा कि क़ुरान शरीफ़ में लालित्य और सौन्दर्य है और यह भी असम्भव नहीं है कि मक्के के लोग इस पर लट्टू हो जाते थे। परन्तु इससे केवल इतना सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहब बड़ी सुन्दर भाषा बोलते थे। इस सौन्दर्य को ईश्वर की ओर लगाना कहाँ का न्याय है। विचित्र बात तो यह है कि मुसल्मान विद्वानों ने कहीं तो हज़रत मुहम्मद साहेब को अनपढ़ और उम्मी बताया है और कहीं उन्हीं पुस्तकों में दूसरे स्थलों पर उनके विषय में इस प्रकार का कथन है :—

'शीर्षक—*रचना सौन्दर्य (फ़साहत और बलाग़त)*—

अरब की सब जातियों की भाषा जानते थे। हर जाति के लोगों से उन्हीं की भाषा में बोलते थे। जो वाक्य मुख से निक-

---

* ल कानू क़ादिरीन अला अय्यांतू बिमुरतिन् मिस्लिहि बलागतन् व फ़साहतन् व नज़्मन्।

जाता था वह ऐसा यथार्थ और व्यापक होता था कि देश भर में प्रसिद्ध हो जाता था। बहुत से विद्वानों ने आपके इस प्रकार के अर्थ-पूर्ण वचनों का संग्रह ग्रन्थों में किया है।

'आपका यह दावा था कि मैं सबसे बढ़ कर फसीह (सुन्दर भाषी या वाग्मी) हूँ। और इस दावे को सब लोगों ने स्वीकार किया था। *सहबान वायल*, और *कस बिन् सायिदा* आदि जो अरब के प्रसिद्ध वक्ता और वाग्मी हुये हैं उनकी सम्पूर्ण रचनायें आपकी वाक्-पटुता के समक्ष लुप्त हो गये।' (देखो सीरतुर्रसूल—जामा मिलिया इस्लामिया दिल्ली—पृ० १८५)

हम तो हज़रत मुहम्मद साहेब को उम्मी या अनपढ़ नहीं मानते। वह आयतें बना सकते थे। यह उनकी विनय-शीलता थी कि वह इसको ईश्वर-की-देन कहते थे। संस्कृत में जब कोई कवि बहुत सुन्दर कविता करता है तो कहते हैं कि इसकी जिह्वा पर सरस्वती देवी आरूढ़ हैं। इसको किसी ने इलहाम (ईश्वर-वचन) नहीं माना। परन्तु इन सब के अतिरिक्त हम एक बात और कहते हैं :—

पहली बात तो यह है कि केवल लच्छेदार अनुप्रासों की भरमार ही वाक्-सौन्दर्य नहीं है। वाक्-सौन्दर्य के आदर्श भी कालानुसार परिवर्तित होते रहते हैं। कहीं-कहीं क़ाफ़ियों अर्थात् अनुप्रासों की भरमार केवल तुक-बन्दी समझी जाती है। कुरान की आयतों और उनकी स्पर्धता में फ़ारूक-मसोलिमा रचित सूरत-फ़ील से इतना ज्ञात होता है कि मुहम्मद साहेब के समय में अरब के साहित्यकार अनुप्रास-पूर्ण (मुक़फ़्फ़ा) रचना को बहुत पसन्द करते थे। शायद उन्हीं को आकर्षित करने के लिये मुहम्मद साहेब ने अनुप्रास-मयी रचना का प्रयोग किया। परन्तु इस अपेक्षा से भी कुरान की सब आयतें एक समान नहीं हैं। कहीं-कहीं तो एक ही स्थान में काफ़ियों (तुक-बन्दियों) की

इतनी भरमार है कि रस चला जाता है। जैसे सूरतक़ाफ़ में वईद, जदीद, वरीद, क़ईद, अतीद, तहीद, वईद, शहीद, हदीद, अतीद, अनीद, शदीद, वईद, वईद, अबीद, मजीद, वईद लगातार आ गये हैं। पूर्वापर में ऐसा नहीं है।

कहीं-कहीं क़ाफ़िया केवल क़ाफ़िया के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। ध्वनि मात्र है। अर्थ कुछ नहीं। जैसे 'वत्तूरिन् व किताबिन् मस्तूरिन्।' (सूरत तूर आयत १-२)। पूरी सूरत पढ़ जाइये। 'तूर' और 'मस्तूर' के अर्थों में कोई सम्बन्ध नहीं। केवल ध्वनि-साम्य के कारण यह दो शब्द जोड़ दिये गये।

केवल आभूषणों को बिना किसी क्रम के पहन लेना ही तो सौन्दर्य नहीं है। संभव है कि इससे पहनने वाले की धनाऽढ्यता का प्रकाश होता हो। कुछ सूरतें तो न ध्वनि की अपेक्षा से सुन्दर हैं न अर्थों की अपेक्षा से। जैसे, सूरत *लहब्* :—

'अबूलहब के हाथ टूटें और उसका नाश हो। न तो उसका धन ही उसके कुछ काम आया और न वह जो उसने कमाया। वह शीघ्र भड़कती हुई आग में प्रवेश करेगा और उसकी स्त्री भी जो सिर पर ईंधन उठाये फिरती है। उसके गले में मूंज की रस्सी होगी।'*

इससे कहने वाले का क्रोध तो प्रकट होता है। परन्तु न तो भाव ही उदात्त हैं न भाषा विशद है। कुछ थोड़ी सी तुकबन्दी है। और 'लहब'† शब्द का कुछ उपहास है। वह भी उच्च कोटि

---

* तब्बत् यदाअ अबी लहबिं व तब्ब। मा अग़्ना अन् हु मालहू व मा कसब। सयस्ला नारं ज़ात लहबिम्। व अम्रातुहू हम्मालतल् हतबि। फी जीदिहा हब्लुं मिं मसदि। (सूरत अबूलहब)।

† 'अबूलहब' मुहम्मद साहेब के चचा थे। वे और उनकी स्त्री दोनों मुहम्मद साहेब के घोर विरोधी थे। इसीलिये इस आयत में उन पर

का नहीं। संभव है कि यह सूरत कुरान की आरम्भ की सूरतों में से है। ज्यों ज्यों अधिक सूरतें उतरती गईं क्रमशः उनके सौन्दर्य में भी आधिक्य होता गया। जैसा कि मानवी रचनाओं में हुआ करता है।

हमने यहाँ कुछ त्रुटियों की ओर संकेत किया है। यह हज़रत मुहम्मद साहेब की योग्यता को कम करने के लिये नहीं। हज़रत मुहम्मद साहेब ईश्वर न थे। मनुष्य थे। असाधारण मनुष्य ही सही। बड़े से बड़े मनुष्य के उच्च से उच्च और प्रशस्ततम कृत्यों में भी कुछ त्रुटियाँ रह सकती हैं। सब त्रुटियों से मुक्त तो केवल ईश्वर की ही सत्ता है। हमारा प्रयोजन केवल इतना है कि साधारण मुसल्मान जनता भाषा-सौन्दर्य को लोकोत्तर चमत्कार मानकर इस युक्ति के आधार पर कुरान शरीफ़ को ईश्वर का इलहाम मानते हैं। यह युक्ति अत्यन्त दुर्बल है। और हज़रत मुहम्मद साहेब की विद्वत्ता और वाक्-पटुता को तिरोहित कर देती है। इससे ईश्वर के ईश्वरत्व में तो कुछ आधिक्य होता नहीं। ईश्वर न अरबी बोलता है न कोई और भाषा। और न उसे भाषा-भाषी होने की प्रशंसा की आवश्यकता। यदि दो या कई ईश्वर होते तो शायद उनमें परस्पर विचार-विनिमय करने के लिये भाषा की अपेक्षा होती। रहे जीवात्मा। उनमें तो ईश्वर स्वयं व्यापक है। इसलिये भाषा की आवश्यकता तो केवल मनुष्य-मनुष्य में पड़ती है। और वहीं यह प्रश्न भी उठता है कि कौन किसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर बोलता है और कौन कम? हज़रत मुहम्मद साहेब विशद-भाषी थे। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उनसे अधिक सुन्दर बोलने वाला कोई हो

ईश्वर का कोप दिखाया गया है। 'लहब' का अर्थ है भड़कती हुई आग। अतः यहाँ श्लेष भी है।

ही नहीं सकता। संस्कृत के ग्रन्थ 'कादम्बरी' आदि कुरान शरीफ़ से कम उदात्त नहीं हैं। और यदि यह मान भी लिया जाय कि कुरान की भाषा दुनियाँ भर के ग्रन्थों की भाषा से अधिक सुन्दर है तो भी यह इलहाम नहीं हो सकती। हज़रत मुहम्मद साहेब के सहयोगियों में भी बहुत से ऐसे थे जो कुरान के भाषा-सौन्दर्य को इस अतिशयोक्ति के साथ मानने को उद्यत न थे। इसलिये सर्वसाधारण के औतुसुक्य को बढ़ाने के लिये यहाँ तक कह दिया गया :—

'हे पैगम्बर। लोगों से कह दो कि मेरे पास वही आई है कि जिन्नों के एक समूह ने इस (किताब) को सुना तो कहने लगे कि हमने एक अद्भुत कुरान सुना।'* (सूरत जिन्न आयत १)

यह भी मक्की सूरत है। अवतरण के क्रम से इसकी संख्या ६२ वीं है और वर्तमान संहिता में ७२ वीं।

यह जिन्न लोग कौन हैं और किसी भाषा के सौन्दर्य में इनकी सम्मति कहाँ तक माननीय है यह प्रश्न है जो किसी स्वातंत्र्य-प्रिय विद्वान् विचारक को यह प्रोत्साहन नहीं देते कि वह सामान्य अरब वालों की भाँति चकित होकर उनकी हाँ में हाँ मिला सकें। क्या जिन्नों की भाषा अरबी है और वह भाषा सौंदर्य के विषय में प्रमाणिक समझे जाने चाहिये ? यद्यपि भाषा-सौन्दर्य एक गुण है, संमाननीय भी और गर्व के योग्य भी। परन्तु इलहाम होने का हेतु नहीं जैसा कि सर सय्यद अहमद आदि को मानना पड़ा।

———

* कुल् । ऊहिय इलय्य अन्नहुस्तमय नफ़रुम् मिनल्जिन्न। फ़ क़ालू इन्नसमयिना कुरानन् अजबन्। (सूरत जिन्न आयत 1)

अध्याय १८

अरब के नेता

मुहम्मद साहेब अरब के नेता थे। यह बात ध्रुव सत्य है। और इसमें भी सन्देह नहीं कि इसमें उनको पर्याप्त सफलता मिली। कुरान शरीफ़ में आया है :—

(१) 'हमने इस किताब को अरबी भाषा में उतारा है जिससे तुम समझ सको।'* (सूरत यूसुफ़ आयत २)

(२) 'ऐसी किताब जिसकी आयतें स्पष्ट हैं अर्थात् अरबी का कुरान उन लोगों के लिये है जो समझ रखते हैं।'† (सूरत हमस्सिजदा आयत ३)

(३) 'और इसी तरह तुम्हारे पास कुरान अरबी भेजा है जिससे तुम बड़े गाँव (मक्के) के रहने वालों को और जो लोग इसके पड़ोस में रहते हैं उनको मार्ग दिखाओ। और इनको 'क़यामत' के दिन का भी।'‡ (सूरत शूरा आयत ७)

(४) 'हे पैगम्बर। हमने यह कुरान तुम्हारी भाषा में सरल किया है कि तुम इससे पुण्यशील लोगों को शुभ सन्देश पहुँचा

---

* इन्ना अन्जल्नाहु कुरानन् अरबीयनल्लअल्लकुं ताक़िलून। (यूसुफ़ २)

† किताबुन् फ़ुस्सलित् आयतहू कुरानन् अरबीयन् लिकौमिन यालिमून। (सिजदा ३)

‡ व क जालिक औहैना इलैक कुरानन् अरबीयन् लि तुंजिर उम्मल् कुरा व मन् हौलहा व तुंजिर योमज् जमअ। (शूरा आ० ७)

दो और झगड़ालुओं का डर सुना दो।* (सूरत मरियम आयत ९७)

फलतः कुरान अरबी भाषा में है। कुरान शरीफ़ का कोई शब्द भी ऐसा नहीं जिससे अरबी के विद्वान् पहले परिचित न थे। अथवा जिसके अर्थ को न समझते थे। 'अल्लाह' और 'अल्लाह' के गुणों के द्योतक लगभग एक सौ ऐसे नाम जिनका वर्णन कुरान में है पहले ही से ज्ञात थे। परन्तु इस पर भी अरब के लोग बहुत सी मिथ्या मान्यताओं में ग्रसित थे और मुहम्मद साहेब ने इस विषय में उनको शिक्षा दी। नेता प्रायः उसी भाषा का प्रयोग करता है जिसे शिक्षा पाने वाले समझते हों। अतः यह उचित ही था कि कुरान अरबी में है। और कुरान के दो उद्देश्य हैं। पुण्यशील पुरुषों के उदाहरण से पुण्यात्मा लोगों को प्रोत्साहन देना। और बुरे लोगों के दुष्परिणामों से बुरे लोगों को डराना। इसलिये कुरान शरीफ़ में अधिकतर उन भद्र पुरुषों की कहानियाँ आती हैं। जो अपने सद्गुणों के लिये अरब के युहूदी, ईसाई, मजूसी आदि में विख्यात थे। और उन बुरे लोगों की भी जो अपने दुर्गुणों के लिये प्रसिद्ध थे। और ईश्वर के कोप के भाजन हो चुके थे। जैसे भद्र पुरुषों में इब्राहीम, याकूब, इसहाक़, मूसा, ईसा आदि। और बुरे लोगों में फिरऔन, समूद, आद तथा लूत के जाति वाले। यह सब कहानियाँ अरब के समीपवर्ती देशों अर्थात् पश्चिमी एशिया के उन देशों की हैं जो मूसा, ईसा, नूह आदि के कार्यक्षेत्र रह चुके थे। और जिनकी सत्य, असत्य, अथवा आधी सत्य और आधी असत्य खबरें अरब के लोगों को मालूम थीं। इससे विदित होता

---

* फ इन्नमा यस्सरनाहु बिलिसानिक लि तुबश्शिर बिहिल् मुत्तक़ीन व तुंजिरो बिही क़ौमन् लुद्दन्। (मरियम ९७)

है कि मुहम्मद साहेब का उद्देश्य केवल अरब वालों के सुधार का था। समस्त कुरान भर में उन दूरस्थ देशों के विषय में कुछ नहीं मिलता जिनका इतिहास हज़रत मुहम्मद साहेब के समय से सहस्रों वर्ष पूर्व का है जैसे न कहीं रामचन्द्र के सद्गुणों का वर्णन है न रावण के दुर्गुणों का। न श्रीकृष्ण के पराक्रमों का, न कंस और जरासिंध की दुष्टताओं का। न युधिष्ठिर की ईमानदारी का, न दुर्योधन के अत्याचारों का। यह एक प्रमाण है कि छठी और सातवीं शताब्दी (ईसवी) के अरब के लोगों को इन देशों के विषय में कुछ भी ज्ञान न था। और न मुहम्मद साहेब की शिक्षा का उनसे कोई सम्बन्ध था। यहाँ तक कि जो मूर्ति-पूजक (बुतपरस्त) लोग अरब में रहते थे वह कब बुतपरस्त हो गये और जिन बुतों (देवी देवतों) को वह पूजते थे वह केवल कल्पित थे या उनका किसी ऐतिहासिक घटना से सम्बन्ध था यह भी कुरान शरीफ़ में नहीं है। जो कथायें कुरान में दी हुई हैं वह अधिकतर युहूदियों की तौरेत और ईसाइयों की बाइबिल में पाई जाती हैं। उनका ही कुछ भिन्नता से उल्लेख कर दिया गया है। इब्राहीम की मिल्लत का विशेषतः वर्णन आया है। परन्तु मनु के संविधान का कहीं उल्लेख नहीं है। ईसा के ईश्वर के पुत्र होने का खण्डन हैं, राम और कृष्ण के ईश्वर-अवतार होने का खण्डन नहीं। काबे के बुतों का वर्णन है। भारतवर्ष, ब्रह्मदेश, चीन, लंका आदि के बुतों का नहीं। अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मुहम्मद साहेब के जीवन का उद्देश्य केवल अरब के सुधार तक सीमित था। वह चाहते थे कि अरब वाले ईश्वर की उपासना में मूर्तियों का प्रयोग न करें। कुप्रथाओं को दूर कर दें। और जातियों की पारस्परिक कलह को समाप्त कर दें जिससे अरब एक ठोस और सुसंगठित जाति बन जाय। और अरब के लोग संसार में

माननीय समझे जावें। यह एक अच्छी शिक्षा थी। और जहाँ तक परिमित ज्ञान, परिमित बुद्धि और शक्ति वाले भद्र पुरुष के लिये संभव है मुहम्मद साहेब को सफलता हुई। परन्तु केवल एक सीमा तक। मुहम्मदी शिक्षा से विश्वव्यापी सिद्धान्तों का कोई सम्बन्ध नहीं। साधारण मुसल्मान हज़रत मुहम्मद साहेब की शिक्षा से पूर्व के युग और पीछे के काल में अत्युक्ति पूर्ण अन्तर करने के लिये आकाश पाताल की गप्पें मिला देते हैं। पूर्व को अज्ञान-युग और पीछे को प्रकाश युग कहते हैं। हर देश के हर सुधारक के लिये ऐसे ही विचार प्रकट किये गये हैं। महात्मा बुद्ध को बुद्ध इसलिये कहते हैं कि 'बुद्ध' शब्द का अर्थ है प्रबुद्ध (जागा हुआ)। मानों महात्मा बुद्ध से पहले दुनियाँ सो रही थी। महात्मा बुद्ध स्वयं जगे और दुनियाँ को जगाया। इससे ऐसा परिणाम निकालना संसार के साथ अन्याय होगा कि अरब के लोग नितान्त मूर्ख थे। महात्मा बुद्ध से पहले भारत वर्ष में एक ऐसा युग बीत चुका है जो विद्या और कर्म दोनों की अपेक्षा से अद्वितीय समझा जाता है। हमको तो अरब के जंगली जीवन में भी किसी पुरातन संस्कृति के चिह्न दिखाई देते हैं यह एक अलग विषय है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या क़ुरान शरीफ़ में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे सारी दुनियाँ शिक्षा ले सके? हमको तो क़ुरान शरीफ़ में बीसियों ऐसी बातें मिलती हैं जिनसे हर देश और हर युग के लोग लाभ उठा सकते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि संसार के लोगों को यह कहा जाय कि क़ुरान इलहामी (ईश्वर की ओर से उसका वचन) है और हज़रत मुहम्मद साहेब '*नबी*' या 'अन्तिम नबी' है। हर सुधारक अपने अनुयायियों को जो विशेष उपदेश देता है उस का कुछ न कुछ अंश अवश्य ही विश्वव्यापक होता है। यदि कोई पिता अपने

बेटे को कहता है कि 'शराब न पी। शराब हानिकारक है' तो यह शिक्षा सभी के लिये लाभ-प्रद हो सकती है फिर भी उस पिता को संसार का उपदेष्ठा नहीं कह सकते। हज़रत मुहम्मद साहेब जिस शताब्दी में हुये उस में दूरस्थ देशों की अवस्था अरब से कहीं अच्छी थी। अरब से थोड़ी ही दूर पर मिश्र की प्राचीन संस्कृति के चिह्न काल के आघातों से आहत होकर धरा-गर्भित हो चुके थे। कौन कह सकता है कि अरब में कोई समय ऐसा नहीं आ सकता कि इस्लामी संस्कृति से श्रेष्ठतर संस्कृति आ जाय। सूरत क़ाफ आयत १५* में लिखा है 'क्या हम पहली सृष्टि रचकर थक गये हैं।'

हज़रत मुहम्मद साहेब अरब के नेता (सुधारक) थे। उनकी पहली सफलता अरबी भाषा से सम्बन्ध रखती है। उनके प्रयत्न से अरबी भाषा ने ईरान आदि दूसरे देशों की भाषाओं पर प्रभाव डाल दिया। 'सादी' आदि की रचनाओं में कुरानी वाक्य पदे-पदे मिलते हैं। अरब के आस पास मिश्र आदि की भाषा अरबी हो गई। जहाँ जहाँ इस्लाम गया। अरबी भाषा भी साथ साथ गई।

दूसरी भारी सफलता यह थी कि हज़रत मुहम्मद साहेब के जन्म के समय अरब की जातियाँ विभक्त और विभिन्न थीं। घोर युद्ध के पश्चात् पूरा अरब मुहम्मद साहेब के आधीन हो गया। मुहम्मद साहेब अरब भर के पीर (गुरु) भी थे और मीर (शासक) भी। उनके बनाये विधायक अरब भर ने स्वीकार कर लिये। और मृत्यु के समय उनका अधिकार पूरे अरब पर हो गया। उनकी असफलतायें भी बहुत सी हुईं जैसा हर मनुष्य के साथ होता है। इसका कुछ वर्णन अवसर आने पर किया जायगा।

---

* अफ़अ ईना बिल् ख़ल् क़ल् अव्वलि। (क़ाफ़ १५)

कर्म-दीपक

(१) 'जो कोई काम करता है तो उसका फल उसी को मिलता है। कोई किसी दूसरे का बोझ न उठायेगा।'* (सूरत अन्आम् आयत १६५)

(२) 'कोई मनुष्य दूसरे का बोझ न उठायेगा। और यह कि उसकी कोशिश देखी जायगी फिर उसको उसका पूरा-पूरा फल दिया जायगा।'† (सूरत नज्म आयत ३८, ३९, ४०, ४१)

(३) 'और जिस चीज में ईश्वर ने तुम में से कुछ को कुछ पर अधिक कृपा की है उस पर ईर्ष्या मत करो। मर्दों को उनके कर्मों का फल है जो उन्होंने किये। और औरतों को उनके कर्मों का फल है जो उन्होंने किये।'‡ (सूरत निसा ३२)

जहाँ तक आचार-सुधार का प्रश्न है ऊपर लिखी आयतें

---

* व ला तक्सिबो कुल्लु नफ़्सिन् इल्ला अलेहा। व लातज़िरो वाज़िरतुन् विज़्र उख़रा। (सूरत अनआम १६५)

† अल् ला तज़िरो वाज़िरतुन् विज़्र उखरा। व अन् लैस लिल् इन्सान इल्ला मा सआ। व अन्न सायहु सौफ युरा। सुम्म युज्ज़ाअहु अल्जज़ा अल् जज़ा अल् ऊफा। (सूरत नज्म आयत ३८, ३९, ४०-४१)

‡ व लाततमन्नू मा फज्जलल्लाहु बिही बाज़कुं अला बाज़िन्। लिल् रिजालि नसीबुन् मिम्मक् तसबू व लिल् निसायि नसीबुन् मिम्मक् तसबन्। (सूरत निसा आयत ३२)

सुनहरे अक्षरों में लिखने के योग्य हैं। यद्यपि यह आयतें भिन्न-भिन्न स्थानों से ली गई हैं। फिर भी उनका अर्थ और भाव एक ही है। आचार शास्त्र का सबसे बड़ा नियम यह है कि मनुष्य अपने कर्तव्य के मूल्य और महत्व का विश्वासी हो। मनुष्य को सबसे बड़ी निर्बलता यह है कि वह हर दुःख का उत्तरदाता दूसरों को ठहराता है। कुरान शरीफ़ में ठीक ही कहा था 'तुम दूसरों के लिये भलाई का उपदेश करते हो और अपने को भूल जाते हो।* (बक़र ३४)

इतना नहीं कि हम केवल दूसरे लोगों को ही उपदेश करें। हमारे उलहनों का पोथा स्वार्थी मानव से आगे बढ़कर ईश्वर को भी घसीट लेता है। जब एक मनुष्य देखता है कि मैं निर्धन हूँ और मेरा पड़ोसी धनवान है तो उसे शिकायत होती है कि हे ईश्वर! तू ने मेरे पड़ोसी पर दया की और मुझे उस दया से वंचित रक्खा। जब एक बीमार दूसरे तन्दुरुस्त को देखता है तो उसके मन में भी यही प्रश्न उठता है। जब एक स्त्री अपने अत्याचारी पति से तंग आती तो ईश्वर को सम्बोधन करके कहती है "हे ईश्वर! तूने मुझे स्त्री बनाकर इस मर्द के अत्याचारों का भाजन क्यों बना दिया?'

ऊपर दी हुई आयतों में इसी विषय में उपदेश दिया गया है। आचार-जगत् का सब से अच्छा नियम यह है कि हर मनुष्य अपने ही कर्मों की गठरी उठाता है। दूसरों के कर्मों का नहीं। मुझे जो कुछ मिला है मेरी कमाई का फल है। दूसरे की कमाई का नहीं। स्त्री अपनी कमाई का फल पाती है। पुरुष अपनी कमाई का। ईश्वर की दृष्टि में सब जीवात्मा एक समान है। उसकी दया सब पर समान है। कोई पक्षपात नहीं। कोई

---

*अतामुरूनन्नास बिल् बिर्रे व तन्सौन अन्फ़ुसकुम्। (बक़र ३४)

स्वार्थ नहीं। यदि एक को दूसरे पर उच्चता मिली तो इस अन्तर का कारण ईश्वर का पक्षपात नहीं अपितु मनुष्य की अपनी कमाई के कारण है। जब किसी कार्यालय या दफ्तर में मास की पहली तारीख को वेतन बटते हैं, तो चौकीदार को दस रुपये मिलते हैं, लेखक को सौ रुपये और अधिष्ठाता को दो सहस्र रुपये। चौकीदार को ईर्ष्या होती है कि कार्यालय के अध्यक्ष मुझे केवल दस रुपये देते हैं और इस अधिष्ठाता को दो हजार। यह पक्षपात क्यों? तो उसका यही उत्तर मिलेगा कि 'हमने वेतन की मात्राओं में जो भेद किया वह उनकी कमाई के कारण है। हमारी दया का अनुपात उनकी कमाई के अनुसार है।'

कुरान शरीफ़ के आगमन से बहुत पहले से यह कहावत चली आती है कि 'जैसा करोगे वैसा भरोगे'। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का दूसरा मंत्र यह है कि जीव की मुक्ति केवल उस के कर्मों के द्वारा ही होगी। अतः मनुष्य को अपने कर्म ठीक रखने चाहिये। भगवद् गीता में लिखा है कि मनुष्य जैसा बुरा या भला कर्म करेगा उसी के अनुसार उसको बुरा या भला फल प्राप्त होगा। कुरान ने भी उसी प्राचीन नियम को अति सुन्दर भाषा में वर्णन किया है कि कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य के बोझ को नहीं उठाता। ईश्वर की अनुकम्पा भी मनुष्यों के कर्मों की अनुगामिनी है।

यहाँ याद रखना चाहिये कि सृष्टि के नियम केवल भविष्य पर ही लागू नहीं होते अपितु अतीत काल पर भी उन का शासन रहता है। अर्थात् जब कहा जाता है कि 'तुम जैसा करोगे वैसा भरोगे' तो यह केवल भविष्य के लिये ही उपदेश नहीं है। इसका तात्पर्य यह भी है कि 'तुम जैसा भर रहे हो। वैसा ही तुमने भूत काल में किया होगा। यदि जौ बोओगे तो जौ काटोगे न कि गेहूँ। और यदि जौ काट रहे हो तो समझ लो कि तुमने

अतीत काल में जौ ही बोये होंगे। न कि गेहूँ। कुरान शरीफ़ के कथानकों में भूतकाल का वर्णन इसीलिये है कि गुज़री हुई घटनाओं को देख कर भविष्य के लिये शिक्षा मिले। फ़िरऔन का नाश हुआ क्योंकि वह कुकर्मी था। समूद नष्ट हुआ क्योंकि वह बदकार था। जब तुम किसी को नष्ट होते देखो तो निश्चय जान लो कि ईश्वर ने उसको विनष्ट किया उसके कुकर्मों के कारण। यदि तुम नाश से सुरक्षित रहना चाहते हो तो वर्तमान काल में अपने कर्मों को ठीक करो। जैसे हमारा भविष्य हमारे वर्तमान पर आश्रित है इसी प्रकार हमारा वर्तमान भी हमारे भूत पर आश्रित रहा होगा। लोग दूसरों के भविष्य का विचार करने में अपने भूत को भूल जाते हैं। जब हम किसी को बद परहेज़ी करते देखते हैं तो सोचते हैं कि यह बीमार पड़ेगा। परन्तु हम यह नहीं सोचते कि यदि हम आज बीमार हैं तो हमने कोई न कोई बद परहेज़ी अवश्य की होगी। कुरान शरीफ़ की उपर्युक्त आयतें इसी बात की चेतावनी देती हैं। संसार कितना अच्छा हो जाय और प्राणियों के कष्ट कितने कम हो जायें यदि हम केवल इस बात को गांठ बाँधलें कि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य के बोझ को नहीं उठाता। न उठायेगा, न उठाता है, न उठाता था। अरबी का शब्द 'ला तज़िरो' है तो भविष्यकालिक क्रिया अर्थात् 'नहीं *उठायेगा*'। परन्तु इस का अर्थ 'मा वज़रत्' अर्थात् भूत कालिक भी है अर्थात् 'नहीं *उठाता था*'। अर्थात् भूत-काल में भी कभी किसी ने किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाया। बीमार को देखकर बद परहेज़ी का पता चलता है। दुःख को देखकर बुरे कर्म का पता चलता है।

यदि दूसरों पर ईश्वर की कृपा अधिक है हम पर कम है तो इसमें ईश्वर का दोष नहीं वरन् हमारे अतीत काल के कर्मों का दोष है। अब थोड़ा सा आचार शास्त्र रूपी वृक्ष की मूल का

उल्लेख करके इसकी शाखाओं पर भी विचार करें। मूल और शाखा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि जड़ आम की है तो शाखा भी आम की ही होगी।

हम देखते हैं कि एक बच्चा अन्धा उत्पन्न होता है। अर्थात् ईश्वर ने दया करके दूसरे बच्चों को नेत्र प्रदान किये। इस बच्चे को इस दया से वंचित रक्खा ? क्यों ? केवल माता पिता के अपराध से वह अन्धेपन का कष्ट नहीं भोग सकता। क्योंकि बाप का बोझ बेटा नहीं उठायेगा। यह कुरान की शिक्षा है। न ईश्वर अकारण ही किसी अपने स्वार्थ के कारण अपनी दया को भिन्न-भिन्न मात्राओं में वितरण करता है। अच्छा ! तो इसका कारण है क्या ?

कुरान शरीफ का उत्तर स्पष्ट है कि इस बच्चे ने भूतकाल में कोई ऐसी ही कमाई की होगी जिसके कारण वह आँखों जैसी विभूति से वंचित रक्खा गया।

इसी प्रकार हम संसार के सभी मनुष्यों को भिन्न-भिन्न दशाओं में उत्पन्न होते हुये देखते हैं। इस भिन्नता का निमित्त क्या है ? कुरान शरीफ़ का स्पष्ट उत्तर यह है कि पुरुषों को पुरुषों की कमाई के हिसाब से और स्त्रियों को स्त्रियों की कमाई के हिसाब से। कर्म और फल में अटूट सम्बन्ध है। इस नियम का कोई अपवाद नहीं। राजकुमार अपनी कमाई से राजा के घर उत्पन्न हुआ। और भिखारी का लड़का अपनी कमाई के कारण भिखारी का लड़का बना। ईश्वर की दया अकारण कभी न थी और अकारण कभी न होगी। वह शासक मार डाले जाने के योग्य है जो सत्पुरुषों को बन्दीगृह में भेजता है और दुष्टों को स्वतन्त्र छोड़ देता है। वह ईश्वर भी ईश्वर कहलाने का अधिकारी नहीं जिसके शासन में बुरे लोग सुख पावें और पुण्यात्माओं को कष्ट होता हो। यदि बुरे लोग सुख पाते हैं तो समझ लो कि उनका

वर्तमानकालिक सुख भूतकाल के किसी अच्छे कर्म का फल है और वर्तमान में जो वह बुरे काम कर रहे हैं उनका फल उनको आगे मिलेगा। इसी प्रकार यदि कोई सत्पुरुष दुःखी है तो उसके दुःख का हेतु उसके अतीतकाल का कोई बुरा कर्म होगा। परन्तु उसको याद रखना चाहिये कि वर्तमान काल में जो शुभ कर्म वह कर रहा है वह निष्फल नहीं जायेगा :—

'तो जिसने कण भर भी भलाई की होगी वह देख लेगा और जिसने कण भर भी बुराई की होगी उसे देख लेगा।'* (सूरत ज़लज़ाल आयत ७-८)

इस नियम से सिद्ध होता है कि यदि भविष्य वर्तमान के अनुसार है तो वर्तमान अतीतकाल के अनुसार होगा। आने वाली फ़सल में वही काटोगे जो वर्तमान में बोया है। और वर्तमान में वहीं काट रहे हो जो भूतकाल में बोया होगा। चाहे तुमको अपने पिछले कर्मों की याद हो या न हो। या वर्तमान कर्मों की याद रहे या न रहे।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि यदि कोई अन्धा या निर्धन उत्पन्न होता है अथवा धनी या स्वस्थ उत्पन्न होता है तो यह दुःख या सुख क्यों हैं ?

इस प्रश्न के तीन उत्तर हो सकते हैं। देखना चाहिये कि क़ुरान शरीफ़ के कथन की संगति किस उत्तर से लगती है।

पहला सरल उत्तर यह है कि रचयिता है ईश्वर। वह जैसी इच्छा होती है उसी के अनुसार रच देता है।

'वह जिसे चाहे उसको पुरस्कृत करे और जिसे चाहे दण्ड

---

*फ मय्यँमल् मिस्काल जर्रतिन् खैरय्यँरहु। व मय्यँमल मिस्क़ाल जर्रतिन् शर्रय्यँरहु। (जलजाल ७-८)

दे । ईश्वर भाग्यदाता और दयालु है ।'* (सूरत फ़तह आयत १४)

यह उत्तर सरल तो है शान्तिदायक नहीं। यह कर्म के सिद्धान्त को काटता है और केवल अन्धविश्वास को प्रकट करता है। यदि पुरस्कार या दण्ड कर्मों के अनुपात से न हो अपितु पुरस्कार वा दण्ड देने वाले की प्रसन्नता पर ही निर्भर हो तो कुरान शरीफ़ की ऊपर दी हुई आयतों का विरोध होता है। कोई न्यायाधीश न्यायाधीश नहीं जहाँ पुरस्कार या दण्ड न्यायाधीश की मर्जी के आश्रित हो। इससे न तो मनुष्यों का आचार ठीक रह सकता है। न धर्म की रक्षा होती है।

शुनीदं कि दर रोज़ उम्मेदो बीम।
बदाँ रा ब नेकां बिबख़्शद् करीम। (एक फ़ारसी कवि का पद)

'सुना है कि क़यामत के दिन कृपालु ईश्वर बुरों को भी भलों के साथ-साथ बख़्श देगा।'

यदि ऐसा हुआ तो बुरे लोग बुराई से कैसे रुकेंगे? कुरान का वास्तविक उद्देश तो यह कदापि नहीं है। क्योंकि ईश्वर बख़्शने वाला और रहीम है। यदि बुरों को भी स्वर्ग मिला और भलों को भी। तो 'टका सेर भाजी, टका सेर खाजा' की लोकोक्ति ठीक बैठेगी। यह संसार 'अंधेर' नगरी और यह ईश्वर 'बेबूझ राजा' हो जायेगा।

इसलिये 'जिसे चाहे' वाली आयत (फतह १४) की ऐसी व्याख्या होनी चाहिये जो कुरान शरीफ़ के मौलिक उद्देश्य के विरुद्ध न हो। व्याख्या तथा मीमांसा केवल शाब्दिक न हो अपितु यथार्थ हो।

---

* यग़्फ़िरो लि मय्यंशाओ व युअज़्ज़िबो मय्यँशाओ। व कान अल्लाहु गफ़ूरन् रहीमन्। (सूरत फतह आयत १४)

दूसरा उत्तर यह हो सकता है कि बच्चे की अवस्था का आश्रय उसके माता पिता के कर्मों पर है। परन्तु यह भी कुरानी शिक्षा के विरुद्ध है। क्योंकि स्पष्ट लिखा है कि 'कोई दूसरे का बोझ नहीं उठा सकता'। बाप के अपराध में बेटे को दण्ड नहीं मिल सकता। कुरान शरीफ़ भी यही कहती है और सांसारिक विधान भी यही बताता है।

तीसरा उत्तर यह है कि इस बच्चे ने ही अतीत काल में कोई ऐसे कर्म किये होंगे जिनके कारण उस को अमुक सुख या दुःख मिला। ऐसा मानने से न तो ईश्वर के प्रति कोई आक्षेप होता है न सांसारिक आचार विधान में कोई निर्बलता आती है। परन्तु यह उत्तर हम को परोक्ष जगत्* की ओर ले जाता है। अर्थात् ऐसी घटनाओं की ओर जो अतीत काल में हुई और जिनको हम आज अपनी आँख से नहीं देख रहे। यह जगत् केवल इतना ही तो नहीं है जो हम को आज दृष्टिगोचर हो रहा है। उसका बहुत सा भाग *हाजिर* (दृष्ट) नहीं अपितु *ग़ायब* (परोक्ष या अदृष्ट) है। हर भूतकाल परोक्ष या अदृष्ट (गायब) हो जाता है और हर भविष्यकाल गायब रहता है जब तक वह मौजूद अर्थात् वर्तमान काल में घटित होकर हाज़िर (प्रत्यक्ष या दृष्ट) न हो जाय। इसीलिये कुरान शरीफ़ में बड़े सुन्दर रूप में वर्णित है :—

---

* 'आलमुल् गैब' (अर्थात् वह जगत् जो आँख से नहीं दीखता, गायब है। इसका वास्तविक अर्थ है परोक्ष जगत्। कुरान शरीफ़ में 'गैब' का बहुत उल्लेख आता है परन्तु मुसल्मान विद्वानों ने भ्रम से इसको ईश्वर के 'अज्ञात लोक' के अर्थों में लिया है। जिस के विषय में कोई बुद्धि न लगा सके और प्रत्येक ऊट पटांग बात को मान ले।

'शिक्षा है उन धर्मात्मा लोगों के लिये जो 'ग़ैब' (परोक्ष) पर विश्वास रखते हैं।'* (सूरत बक़र आयत ३२)

संसार में बहुत से लोग हैं जिनकी दृष्टि केवल वर्तमान काल तक ही सीमित रहती है। न वह भूतकाल के विषय में विचार कर सकते हैं न भविष्य के। 'ग़ैब' से आशय यहाँ उन चीजों से नहीं है जिनके जानने की मनुष्य को आवश्यकता नहीं या मनुष्य जिनके जानने का सामर्थ्य नहीं रखता। इस आयत में बताया गया है कि ईश्वर के पुण्यशील भक्तों को उन वस्तुओं को मानने की भी आवश्यकता है जो '*हाज़िर*' नहीं। अर्थात् जो पाँच इन्द्रियों से इस समय अनुभूत नहीं होतीं। परन्तु उनके अस्तित्व के विषय में हम केवल बुद्धि से जान सकते हैं। जैसे आप बाग में आम के वृक्ष पर आम लटकते देखते हैं। आम की जड़ आप को दृष्टि से 'ग़ायब' (अदृष्ट) है अर्थात् वह आलमुल्-ग़ैब (परोक्ष जगत्) में है। आप आम को देखकर बुद्धि से यह 'अनुमान' लगा सकते हैं कि आम की जड़ भी होगी। *अवश्य होगी*। क्योंकि यदि जड़ न हो, तो फल नहीं हो सकता।

आपने एक बुड्ढे आदमी को देखा जिसके बाल सफेद हैं और मुंह में दाँत नहीं हैं। 'काले बाल' और 'दाँत' 'आलमुल् ग़ैब' अर्थात् 'परोक्ष जगत्' में हैं। परन्तु उसके सफेद बाल और खाली मुंह से सिद्ध होता है कि कभी उसके बाल काले थे और मुंह में दाँत थे।

जब आप कैदख़ाने में कैदियों को काम करते देखते हैं तो वह अपराध जिसके कारण वह कैद हुये थे आपके वर्तमान ज्ञान के बाहर की वस्तु है अर्थात् 'आलमुल् ग़ैब' (परोक्ष जगत्) है, परन्तु आप कारण-कार्य सम्बन्ध पर विचार करके कार्य से

---

* हुदन् लिल् मुत्तक़ीन लुलजीन यूमिनून बिल् ग़ैबि। (बक़र ३२)

कारण को जान सकते हैं। कार्य के द्वारा कारण को जानना वर्तमान काल के द्वारा भूतकाल को जानना है। और कारण के द्वारा कार्य को जानना वर्तमान से भविष्य तक पहुँचना है। कुरान की आयत का अभिप्राय यह है कि एक बुद्धिमान भक्त को केवल प्रत्यक्ष वस्तुओं तक ही नहीं रहना चाहिये अपितु अपनी कल्पना तथा बुद्धि से भूत और भविष्य सम्बन्धी परोक्ष-जगत् (आलमुल् ग़ैब) पर विश्वास रखना चाहिये।

अब प्रासंगिक विषय को लीजिये। अन्धा बच्चा अन्धा क्यों है ? ईश्वर ने उसे इस विभूति से क्यों वंचित रक्खा ? यह 'क्यों ?' परोक्ष जगत् ('आल्मुल् ग़ैब') की वस्तु है। हमारी शारीरिक आँख से अदृष्ट हैं। परन्तु हमारी बौद्धिक चक्षु से अदृष्ट नहीं रहनी चाहिये। इसीलिये हमारी बुद्धि ने प्रश्न कर दिया और उसी बुद्धि की सहायता से इसका उत्तर मिलेगा। यह तीसरा उत्तर इसीलिये मानना पड़ेगा कि ईश्वर ने किसी बुरे कर्म के कारण उसको इस सम्पत्ति से वंचित रक्खा।

यहाँ प्रश्न होता है कि जो बच्चा आज ही उत्पन्न हुआ है उसके कोई कार्य ऐसे नहीं हैं जिनके लिये उसको उत्तरदाता समझा जा सके। वह कौन से कर्म थे ? और कब किये गये ? जिनके दण्ड स्वरूप उसको नेत्रों से वंचित रहना पड़ा।

आप कैदी का दृष्टान्त लीजिये। कैदी कैद खाने में आज आया है। स्वतन्त्रता से वंचित किया गया। पैर में बेड़ी डाल दी गई। किस कर्म के कारण ? कैदखाने में तो उसने कोई ऐसा कार्य नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि कैदखाने के जीवन से पहले एक और जीवन था। वह अपने घर में स्वतन्त्र फिरता था। पैरों में बेड़ी न थी। उस समय कैदखाने से पहले जीवन में उसने चोरी की। इसी प्रकार इस वर्तमान जीवन से पहले इसी जीव का जिसको आप बच्चा कहते हैं एक दूसरा जीवन था जिसमें वह स्वतन्त्र

था। और जिसके कर्मों के कारण आज उसको वर्तमान जीवन मिला। हर जन्म से पहले मृत्यु होती है और हर मृत्यु से पूर्व जन्म। यह क्रम का प्रवाह सदैव चलता रहता है। कुरान शरीफ़ कहता है कि हर धर्मात्मा को इस 'ग़ैब' (परोक्ष) की बात पर विश्वास रखना चाहिये। केवल प्रत्यक्ष (हाज़िर या वर्तमान) पर विश्वास तो गधा भी कर लेता है। मनुष्य को बुद्धि इसीलिये दी गई है कि 'ग़ैब' (परोक्ष) पर भी विश्वास लावे। अन्यथा उसका ईमान (विश्वास) अधूरा है।

यह समाधान यद्यपि करोड़ों मनुष्यों को सन्तोष देता है। परन्तु जो अपने को मुसल्मान कहते और कुरान शरीफ़ को इलहाम (ईश्वर वचन) मानते हैं उनको यह उत्तर ठीक प्रतीत नहीं होता। एक मुसल्मान विद्वान् तो झट बोल उठेगा कि यह पुनर्जन्म (तनासुख़) का सिद्धान्त है जो हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि ग़ैर-मुस्लिम काफ़िरों का मत है। एक सच्चे मुसल्मान का नहीं। इस्लाम के मंतव्यों में पुनर्जन्म के सिद्धान्त (तनासुख़ के मसले) को कोई स्थान नहीं। यह भ्रम है। कुफ़्र है और स्वीकार करने योग्य नहीं।

अच्छा! क्या ऊपर के तीन उत्तरों को छोड़कर कोई और समाधान भी है जिसको मुसल्मान विद्वान् प्रस्तुत कर सकते हों? आगे के अध्याय में इसी बात पर ऊहापोह की जायगी।

अध्याय २०

पुनर्जन्म तथा विकृति (तनासुख और तमासुख)

'तनासुख' एक अरबी शब्द है जो संस्कृत के आवागमन या पुनर्जन्म के समानार्थक है। अर्थात् जीव एक शरीर को छोड़कर मृत्यु के पश्चात् दूसरे शरीर को धारण करता है। हमारा भौतिक शरीर केवल वस्त्र के तुल्य है। भगवद् गीता में लिखा है कि जैसे एक मनुष्य पुराने कपड़ों को उतारकर नये पहनता है उसी प्रकार एक जीव मृत्यु के समय एक पार्थिव शरीर को छोड़कर दूसरा पार्थिव शरीर ग्रहण करता है। यही उसका जन्म (उत्पत्ति) है। जन्म के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जन्म होता है। जो जन्मा है वह अवश्य मरेगा। और जो मरता है वह अवश्य जन्म लेगा।

यह मत सब हिन्दुओं का है। प्राचीन वैदिक ऋषियों का था। सब बौद्धों का है। और सब जैनियों का। ईसाई और मुसल्मान इस मत के मानने वाले नहीं हैं। यह लोग इसको 'मिथ्या मत' कहते हैं।

'तनासुख' के अतिरिक्त एक और अरबी शब्द है 'तमासुख'। मुसल्मान विद्वानों ने 'तमासुख' के यह अर्थ लिये हैं कि शरीर तो वही रहे। परन्तु उसी शरीर के कुछ अंगों में कोई विजातीय परिवर्तन हो जाय। (हमने यहाँ 'तमासुख' के लिये 'विकृति' शब्द का प्रयोग किया है)। यह 'तमासुख' शब्द नीचे लिखी आयतों के आधार पर गढ़ा गया है :—

(१) 'और जिन पर उसने कोप किया और जिनको उनमें से सुअर और बन्दर बना दिया।* (सूरत 'मायिदा' आयत ६०)

(२) 'बस हमने उनसे कहा कि तुम अधम बन्दर बन जाओ।'† (सूरत बक़र आयत ६५, या सूरत ऐराफ़ आयत १६६)। प्रसंग यह था कि जो ईश्वर की आज्ञा को भंग करते हैं ईश्वर उन पर कोप करता है। और उन पर अज़ाब (विपत्ति) उतारता है अर्थात् दण्ड देता है। और जो सबसे ख़राब काम करते हैं उनको सुअर या बन्दर बना देता है।

इन आयतों में जो कर्म का सिद्धान्त बताया गया है अर्थात् पापों के लिये दण्ड पाना उसमें तनासुख (पुनर्जन्म) और तमासुख (विकृति) की कोई विशेषता नहीं है न शाब्दिक, न लाक्षणिक। कोई शब्द ऐसा नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि केवल 'तमासुख' है 'तनासुख' नहीं। परन्तु यतः मुसल्मान विद्वानों ने प्रचरित कर रक्खा है कि 'तनासुख' (पुनर्जन्म) इस्लामी मंतव्यों अथवा सिद्धान्तों में नहीं है और कुरान में पापियों का 'सुअर' और बन्दर बनाना लिखा ही हुआ है इस लिये इस आयत में 'तनासुख' के बजाय 'तमासुख' है। कुरान शरीफ़ के भाष्यकारों ने यह कल्पना करके भाष्य लिखे हैं। यदि बिना भाष्यों की सहायता के कुरान शरीफ़ की इन आयतों के अर्थ निकाले जांय तो हिन्दुओं आदि के मंतव्यों के अनुसार इन आयतों का यह अर्थ होगा कि जब मनुष्यों के पाप एक सीमा

---

*'व ग़ाज़िब जलैहि व जअल मिन्हुं अल् क़िरदत वल् ख़नाज़ीर।' (मायिदा ६०)

† फ़ क़ुलना लहुं कूनू क़िरदतन् ख़ासिईन। (बक़र ६५ तथा ऐराफ़ १६६)

से बढ़ जाते हैं तो ईश्वर दूसरे जन्म में उनको सुअर बन्दर आदि नीच योनियों में डाल देता है।

अधिकतर भाष्यों में 'तमासुख़' का ही वर्णन है। यद्यपि कुछ पीछे के भाष्यकारों ने आक्षेपों से घबराकर 'तमासुख' (विकृति) से भी इनकार किया है। और कहा है कि बन्दर तथा सुअर से तात्पर्य केवल ज़िल्लत अर्थात् अपमान से है। किसी-किसी ने यह भी कहा है कि तमासुख (विकृति) मानसिक था शारीरिक नहीं अर्थात् उनका स्वभाव बन्दर और सुअर का सा बना दिया गया था। शरीर मनुष्य का ही बना रहा। सर सय्यद अहमद ने तो कतिपय भाष्यों के प्रमाण देकर यह परिणाम निकाला है कि इनकी आदतें बन्दर और सुअर की करदी गई थीं।

यह सब व्याख्यायें इसलिये की जाती हैं कि एक विस्पष्ट बात को एक बार अस्वीकार करके उसको स्वीकार करना न पड़े। अन्यथा क्या जो ईश्वर दिलों को बदल सकता है वह शरीरों को बदल नहीं सकता ? जीवों का शरीर तो ईश्वर ने ही दिया था। जो एक बार शरीर दे सकता है क्या वह दूसरी बार शरीर देने में असमर्थ है ?

सूरत वाक़िया की आयतें ५७-६१ विचारणीय हैं :—

'हमने तुमको (पहली बार) बनाया तो तुम (दुबारा उठने को) क्यों नहीं सच मानते ? देखो तो कि (जिस वीर्य्य को) (तुम स्त्रियों की योनि में) डालते हो तो क्या तुम मनुष्य को बनाते हो या हम बनाते हैं ? हमने तुम्हारे मध्य में मृत्यु को नियत किया है। और हम इस बात से असमर्थ नहीं कि तुम्हारी तरह और लोगों को तुम्हारे स्थान में ले आवें और तुमको ऐसी

जगह पैदा कर दें कि जिसको तुम नहीं जानते !*

यहाँ ईश्वर की ओर से ईश्वर के सृष्टि-व्यापार को जताया गया है। कि वह मनुष्य को बनाता है अर्थात् माता के पेट में शरीर का निर्माण करने वाला ईश्वर है। मनुष्य नहीं। और जो माँ के पेट में एक बार बना सकता है वह दूसरी बार भी बना सकेगा और मृत्यु के पश्चात् तुम को ऐसे शरीरों में जन्म देगा जिनका तुमको ज्ञान नहीं।

कुरान भर में एक आयत भी ऐसी नहीं है जिससे सिद्ध हो सके कि तनासुख (पुनर्जन्म) का सिद्धान्त मिथ्या या अमन्तव्य है। या इससे दीन इस्लाम के (सूरत बक़र आयत १७७ में दिये हुये) पाँच स्कन्धों में से किसी को हानि पहुँचती हो इसके विपरीत कई आयतों में जन्म और मृत्यु के बराबर होने का वर्णन है। जैसे :—

(१) खुदा से कैसे इनकार कर सकते हो कि तुम मर गये थे तो उसने तुमको जिलाया। फिर वही तुमको मारता है। वही तुमको जिन्दा करेगा। फिर तुम उसी की तरफ़ लौट कर जाओगे।† (सूरत बक़र आयत २८)

यहाँ मृत्यु और जीवन का बराबर आना स्पष्ट है। अनुवादकों और भाष्यकारों ने प्रमाद से केवल पुनर्जन्म से बचने के लिये 'अमवातन्' (मौतों) का अर्थ दिया है 'तुम बेजान थे।'

---

*नह्नु खलकनाकुं। फ़लौ ला तुसद्दिकून। अफ़रऐतुं मा तुमनून। अ अन्तुं तख़्लुकून हू अम् नह्नुल खालिकून। नह्नु कद्दर्ना बैनकुमलमौत। व मा नह्नु बिमस्बूकीन। अला अन तुबद्-दिल अम्सालकुं व नुनशियकुं फ़ी मा ला तालिमून। (वाक़िया ५७-६०)

† कैफ़ तक्फ़िरून बिल्लाहि व कुन्तुं अमावतन् फ़ अह्याकुं सुम्म युमीतुकुं सुम्म युह्ईकुम्। सुम्म इलैहि तुर्जऊन। (बकर २८)

कोई जीव वेजान नहीं होता। क्योंकि 'जीव' (रूह) और 'जान' पर्याय हैं। जब जीव (रूह) शरीर से निकल जाता है तो उसका नाम है 'मौत'। और जब उसे फिर शरीर मिल जाता है तो यही हयात (जीवन) या जन्म है। कुरान शरीफ़ साफ कहता है कि यह मौत और हयात (जीवन) का क्रम उस समय तक जारी रहता है जब तक निजात (मोक्ष) न हो जाय। वैदिक धर्म का यही सिद्धान्त है।

(२) 'और खुदा ने उनको आज्ञा दी कि मर जाओ। फिर उनको जिन्दा कर दिया। कुछ संदेह नहीं कि खुदा लोगों पर कृपा रखता है। परन्तु बहुत से लोग कृतज्ञता प्रकट नहीं करते।'* (सूरत बक़र आयत २४३)

यहाँ शायद कुछ लोग कहें कि यह आज्ञा विशेष लोगों को विशेष परिस्थिति में दी गई थी। परन्तु यह उत्तर भी 'पुनर्जन्म' को असिद्ध नहीं करता. ईश्वर की विशेष आज्ञा भी व्यापक (सामान्य) होती है। यदि यह बात मान ली जाय कि एक बार भी मारकर जिलाया तो पुनर्जन्म सिद्ध हो गया। ईश्वर की आज्ञायें अनादि और अनन्त (नित्य) होती हैं। इसके अतिरिक्त, यहाँ मौत और हयात (जीवन) के साथ अल्लाताला का दयालु होना और साधारण मनुष्य का कृतघ्न होना भी दिया हुआ है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि यदि कोई मनुष्य अपने छोटे से जीवन में अधिक उन्नति नहीं कर सका तो अल्लाताला मेहरबानी करके बार बार मौका देता है। हजारों मुसल्मान हैं जो इस छोटी सी जिन्दगी में इस्लाम धर्म के नियमों का पूरा पालन न कर सके। उनको समझाना चाहिये था कि ईश्वर दया-रहित

---

*फ़ क़ाल लहुमल्लाहु मूतू। सुम्मइयाहुं। इन्नल्लाह लज़ू फ़ज़्लिन् अलन्नासि व लाकिन्न अक्सरन्नासि ला यशकुरून। (बक़र २४३)

या कठोर नहीं है कि उनको पुनर्वार अवसर न दे परन्तु वह नाशुकरे हैं कि पुनर्जन्म के सिद्धान्त को निषिद्ध समझ कर ईश्वर की दयालुता को स्वीकार नहीं करते।

(३) फिर मृत्यु आ जाने के पश्चात् हमने तुमको नये सिरे से जीवित कर दिया ताकि तुम एहसान मानो।* (सूरत बक़र आयत ५६)

यहाँ तनासुख (पुनर्जन्म) स्पष्ट है। और ईश्वर को धन्यवाद है।

(४) क्या मनुष्य ने नहीं देखा कि हमने उसको नुतफ़ा (वीर्य) से पैदा किया। फिर वह तड़ाक बड़ाक झगड़ने लगा। और हमारे विषय में मिसालें पेश करने लगा। और अपनी पैदायश को भूल गया और कहने लगा कि जब हड्डियाँ सड़ जायेंगी तो कौन उनको जीवित करेगा? उससे कह दो कि उसको वही जिन्दा करेगा जिसने पहली बार बनाया था 'क्योंकि वह तमाम सृष्टि को जानता है।† (सूरत यासीन आयत ७७-७९)

यहाँ स्पष्ट है कि वीर्य से शरीर बनाया जाता है। जीव (रूह) नहीं। क्योंकि रूह (जीव) का शरीर से अलग हो जाना ही मृत्यु है। क़बर में मुर्दे गाड़े जाते हैं अर्थात् वह शरीर जिनसे जीव निकल चुका है। जब तक शरीर में जीव है कोई गाड़ता नहीं

---

* सुम्म बअ़स्नाकुं मि बादि मौतिकुं अ़ल्लकुं तशकुरून। (बकर ५६)

† अव लयरल् इन्सानो अन्ना खलक़नाहु मिन् नुतफ़तिन्। फ़ इज़ा हुव खसीमुम् मुबीन। व ज़रब लना मसलन् व नसिअ खल्क़हु। क़ाल मन् युहइल् इज़ाम व हिय रमीमुन। क़ुल् युह्‌ईयहा अल्लज़ी अनूशाहा अव्वल मर्रतिन् व हुव बि कुल्लि खल्क़िन् अलीम॥ (यासीन् ७७-७९)

जीवित को गाड़ना अपराध है। कब्र में शरीर सड़ता है न कि जीव। जो लोग समझते हैं कि जब हड्डियाँ सड़ गईं तो फिर वह नया शरीर कैसे धारण करेंगी? वह भूल जाते हैं कि ईश्वर रचना की विधि को जानता है। जिसने पहला शरीर बनाया वह दूसरा भी बना सकता है। ईश्वर के पास हड्डियाँ बनाने की सामग्री की कमी नहीं है। जिन तत्त्वों से हड्डियाँ बनती हैं ईश्वर के पास उनके ख़ज़ाने हैं। उन तत्त्वों से नई हड्डियाँ बन सकती हैं। सड़ी हुई हड्डियों से भी दूसरे शरीर बन सकते हैं। उन पुराने जीवों के न सही, दूसरे जीवों के सही। थोड़ी सी ईश्वर की रचना पर दृष्टि डालिये। कल्पना कीजिये कि जैद मर गया। अर्थात् ज़ैद का जीव अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर उड़ गया। उसकी लाश को क़बरस्तान में दफ़न कर दिया गया। हड्डियाँ एक समय के बाद राख हो गईं और उन पर घास उग खड़ी हुई। यह घास उन्हीं हड्डियों की राख का बदला हुआ रूप है। इस घास को एक बकरी ने खाया। तो उन्हीं हड्डियों का एक नया शरीर बन गया। बकर (दूसरे मनुष्य) ने उस बकरी को मारकर मांस को पकाया और खाया। इन कणों से 'बकर' का शरीर बन गया। इस प्रकार 'ज़ैद' के शरीर की हड्डियाँ 'बकर' के शरीर में रूपान्तरित हो गईं। यह है परमेश्वर को रचना-शक्ति कि जो तत्त्व जैद के के लिये निरर्थक और सड़े हुये थे वही 'बकर' के लिये सार्थक बन गये।

इसको आप तनासुख (पुनर्जन्म) कहेंगे या तमासुख (विकृति)? यदि जैद का जीव ज़ैद की हड्डियों में चिमटा रहता और फिर वह हड्डियाँ किसी बन्दर या सुअर की आकृति ग्रहण कर लेतीं तो आप शायद उसको 'तमासुख' (विकृति) कह सकते थे। परन्तु जब हम स्पष्ट देखते हैं कि ज़ैद के शरीर की हड्डियाँ बकरी का शरीर बन जाती हैं और बकरी की मौत के बाद वही

हड्डियाँ 'वकर' की हड्डियाँ बन जाती हैं तो यह 'तमासुख' नहीं 'तनासुख' है।

हम यह नहीं कहते कि 'तमासुख' (विकृति) नहीं होता। यदि किसी शरीर में जीव के रहते हुये उस शरीर में उस शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन हो जाय तो इसी का नाम तमासुख (विकृति) है। बच्चा जब युवा हो जाता है तो उसका जीव उसी शरीर में रहता है। जीव शरीर को छोड़ता नहीं। परन्तु बच्चे के चहरे पर लम्बी डाढ़ी या मौंछ आ जाती है। यह 'तमासुख' का उदाहरण है। ऐसे तमासुख केवल गर्हित सुअरों और बन्दरों के रूप में ही नहीं होते। भक्तों और धर्मात्माओं के शरीरों में भी होते हैं। ईश्वर की दया है कि वह हमारे शरीरों में 'मसूख़' (परिवर्तन) किया करता है। यह कोरा कोप नहीं है। महती कृपा है। परन्तु शरीर से जीव का सर्वांश में निकल जाना और दूसरे शरीर को धारण कर लेना 'तनासुख़' (पुनर्जन्म) है और यह भी ईश्वर की कृपा का एक उदाहरण है।

(५) 'बेशक्! ईश्वर ही दाने और गुठली को फाड़कर उनसे वृक्ष आदि उगाता है। वही जीवन को मौत से निकालता है। और मौत को जीवन से। यही तो ईश्वर है। फिर तुम कहाँ बहके फिरते हो।'* (सूरत अन्आम् आयत ९६)

यहाँ बीज और गुठली के फटने और उससे वृक्ष के उत्पन्न होने का दृष्टान्त देकर बताया गया है कि इसी प्रकार जीवन के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जीवन का प्रवाह चलता रहता है। इसका रचयिता ईश्वर है। जो इस बात पर विश्वास

*इन्नल्लाह फ़ालिक़ुल् हब्बि व न्नवा। युख़्रिजुल् हैय मिनल मीय्यति व मुख़्रिजु मीय्यति मिनल् हय्ये। ज़ालिकुमुल्लाहो। फ़अन्ना तूफ़िकून। (अन्आम् ९६)

नहीं करता वह बहका बहका फिरता है। शायद इसी आयत को देखकर शैख़ फ़रीदुद्दीन अत्तार ने कहा था :—

हफ्त सद हफ्ताद क़ालिब दीदा अम्।
मिस्ले सब्जा बारहा रोईदा अम्।

(मैं बहत्तर अर्थात् बहुत से शरीर देख चुका हूँ। घास के समान बार-बार उग चुका हूँ)।

यहाँ घास और मनुष्य में उपमा उपमेय का सम्बन्ध है। और पुनर्जन्म को सिद्ध करता है। जो मुसल्मान 'अत्तार' महोदय की इस शेर पर ईमान नहीं रखते वह कुरान के शब्दों में बहके बहके फिरते हैं।'

क्या खुदा में ताक़त नहीं कि जो मर चुका है उसे जिन्दा कर सके।* (कयामत ४०)

———

* अ लैस लक बि क़ादिरिन् अला अन युह्यिअल् मोता। (कयामत ४०)

अध्याय २१

पुनर्जन्म और यूनान के दर्शनकार

इस्लाम के आरम्भिक मन्तव्यों से यह सिद्ध नहीं होता कि तनासुख (पुनर्जन्म) का सिद्धान्त इस्लाम धर्म की मान्यताओं के विरुद्ध है। इस्लाम के कई सम्प्रदाय पुनर्जन्म पर विश्वास रखते थे। थोड़ा सा अन्तर था। जैसे—

कीसानिया सम्प्रदाय—ये लोग कीसान के अनुयायी हैं। कीसान हज़रत अली का गुलाम और सय्यद मुहम्मद बिन् हनीफ़ा का शिष्य था। इनमें कतिपय लोग तनासुख, व हलूल तथा मौत के बाद लौटने को मानते थे।

हाशमिया सम्प्रदाय—यह लोग हाशिम बिन् मुहम्मद बिन् हनीफ़ के शिष्य हैं। यह लोग मानते हैं कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के रूप में जन्म लेता तथा एक के पुण्य पाप दूसरे में चले जाते हैं।

फलात सम्प्रदाय—फलात के सभी लोग 'तनासुख' को मानते हैं। (देखो पुस्तक 'अल्मलल वल् हल्' लेखक—अबू फ़त हुल् इमाम-मुहम्मद बिन् अब्दुल करीम अल् शहरस्तानी)।

हमने यहाँ केवल दो तीन नाम दिये हैं। उन दिनों तनासुख के नाम से मुसल्मानों को चिड़ न थी। उस जमाने के अरब के लोगों में शायद फिलासफी पर वादविवाद करने का रिवाज न था। अथवा अरबवालों के सदाचार का आदर्श कुछ गिर गया था। अतः हज़रत मुहम्मद साहेब ने 'जीव के लक्षणों' की मीमांसा करने की उपेक्षा की। जब कभी 'रूह' (जीव) के विषय में

कोई उनसे प्रश्न करता तो केवल 'अमर-रब्बी' अथवा 'ईश्वरीय-प्रेरणा' कहकर टाल देते थे। यह बात उनके दर्शन विज्ञान को सिद्ध या असिद्ध नहीं करती। इसका सीधा अर्थ यह है कि भाई साहेब तुम अपने सामान्य आचार की छोटी-छोटी बातों के सुधारने का यत्न क्यों नहीं करते? व्यर्थ ऐसी बातों पर विचार-विमर्श करने की उलझन में क्यों पड़े हो जो तुम्हारी समझ से बाहर हैं। महात्मा गौतम बुद्ध का बर्तन भी ऐसा ही था। उनके युग में जो मुहम्मद साहेब से लगभग बारह सौ वर्ष पहले की बात है भारतवर्ष के पंडित सूक्ष्म (परोक्ष) विषयों पर वादानुवाद करने के लिये बड़े लालायित रहते थे यद्यपि उनका आचार गिरा हुआ था। जब कोई पंडित महात्मा बुद्ध से 'जीव' के विषय में बहस करने आता था तो उसको सरल दृष्टान्तों से समझाते थे। कि पहले अपने आचरण तो ठीक करलो, क्यों बाल की खाल निकालने में आपना समय नष्ट करते हो।

हज़रत मुहम्मद साहेब के जमाने का अरब तो महात्मा बुद्ध के जमाने के भारतवर्ष से बहुत पिछड़ा हुआ था। हज़रत ईसा की छठी और सातवीं शताब्दी में भारतवर्ष यद्यपि पतन की ओर जा रहा था परन्तु फिर भी तुलना में वह दूसरे देशों से पीछे न था। उस युग में भारतवर्ष में बड़े-बड़े विद्यालय थे यद्यपि साथ ही कुछ भाग में अविद्या भी थी। मुहम्मद साहेब अरब के आचार के आदर्श को ऊँचा करना चाहते थे। और अपने जमाने के अरब के लोगों की योग्यता को देखकर उनको शिक्षा देते थे। उनके पास जो प्रश्न लेकर आते थे वह निम्न श्रेणी के लोग होते थे। इसलिये ऐसे लोगों से जीव के लक्षणों पर बहस करना और वर्तमान जीवन के पूर्व या पश्चात् पर विस्तृत विचार करना निरर्थक समझ कर वह 'अमर रब्बी' आदि अर्थ-शून्य अथवा अस्पष्ट शब्द मात्र कह देते थे। 'अमर-रब्बी' पर भाष्य

कारों ने बहुत माथा-पच्ची की है। आजकल के मुसल्मान विद्वान भी जिनको बीसवीं शताब्दी के पाश्चात्य और पूर्वात्य विज्ञान के सान्निध्य से इतनी जानकारी बढ़ चुकी है कुरान की साधारण उक्तियों पर टीका टिप्पणियाँ करते हैं। परन्तु बात वहीं की वहीं रहती है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि हज़रत मुहम्मद साहेब ने पुनर्जन्म के सूक्ष्म और परोक्ष विषय पर कभी न ऊहापोह की न उसका विरोध किया। न 'नसख़' और 'मसख़' के पचड़े में अपने को डाला।

हज़रत मुहम्मद साहेब के समय में युहूदी भी थे और ईसाई भी। परन्तु अधिक संख्या थी मूर्तिपूजकों की जो न ईसाई थे न युहूदी। मालूम नहीं कि काबे (के मन्दिर) में युहूदी और ईसाई भी जाते थे या नहीं और उनकी प्रतिनिधि मूर्तियाँ भी थीं या नहीं। क्या काबे के भीतर ईसा और मरियम की मूर्तियाँ भी थीं जैसी कि उस काल के शामी ईसाइयों के गिरजों में थीं जो कि भारतवर्ष के दक्षिणी भाग ट्रावन्कोर आदि में बस गये थे। और जैसी आजकल भी हैं ? इनके गिरजों में ऐसी ही मूर्तियाँ हैं जैसी हिन्दुओं के मन्दिरों में। इन मूर्तिपूजकों का भी अपना दर्शन-शास्त्र रहा होगा। या यदि वह अपने दर्शन को भूल गये तो उनका सम्बन्ध किसी देश के प्राचीन दर्शन से रहा होगा। इसलिये हम यह नहीं बता सकते कि मूर्तिपूजक लोग पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते थे या नहीं। परन्तु जिन मुसल्मान सम्प्रदायों का हमने ऊपर उल्लेख किया है और वह केवल नमूने के लिये है। उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि मुसल्मानों को पुनर्जन्म के सिद्धान्त से द्वेष न था। कुरान शरीफ़ में जीवन और मृत्यु तथा जीवन और मृत्यु के प्रवाह का वर्णन आकस्मिक नहीं है अपितु लोगों के आचार-सुधार के निमित्त उन्हीं के एक मान्य सिद्धान्त की ओर अपील की गई

है। हिन्दू विद्वान् भी तो आजकल ऐसा ही किया करते हैं।

हमारा अनुमान है कि इस्लाम में दर्शन की विशेष रुचि उस समय उत्पन्न हुई जब खिलाफत बग़दाद वालों के हाथ में आई। हारूनुर्रशीद, मामूनुर्रशीद आदि खलीफे विद्या प्रेमी थे। उनके दरबारों में दूसरे देशों के विद्वानों का आदर और आतिथ्य सत्कार होता था। यूनानी दर्शन के ग्रन्थ विशेषतया अनुवाद होकर आये और इस्लामी सिद्धान्तों पर उनका प्रभाव पड़ा। विशेष कर अरस्तू (Aristotle) का। क्योंकि अरस्तू की शिक्षा ने अफ़लातून (Plato), सुकरात (Socrates) आदि प्राचीन दार्शनिकों को अधिकांश में निरस्त कर दिया था।

यूनान के प्राचीन दर्शनकार तो स्पष्टतया पुनर्जन्म को मानते थे। फीसागोरस (Pythagorus) तो ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में उत्पन्न हुआ था। वह पुनर्जन्म को मानता था। सुकरात की मृत्यु की कथा ही इतनी मनोरंजक है कि उसको पढ़ कर कोई पुनर्जन्म को अस्वीकार नहीं कर सकता। अथेंस में अफ़लातून ने नये दर्शन-सम्प्रदाय की नींव डाली। यह इन्द्रिय ग्राही प्रत्यक्ष को सत्य से भिन्न मानता था। (उसका कहना था कि जो दृश्य है व सत्य नहीं)। उसका मत था कि सत्य जगत् कोई और है जो दृश्य जगत् के परे है। इसके दृश्य अथवा अनुभव उस दूसरे सत्य जगत् की वास्तविक चीजों के छाया मात्र हैं। उसने एक दृष्टान्त दिया है। कल्पना करो कि एक पहाड़ी गुफा है। जिसमें बाहर से प्रकाश आने का केवल एक द्वार है। आप को उस गुफ़ा के द्वार पर कैद करके इस प्रकार बिठा दिया गया कि आपकी पीठ द्वार की ओर है और आप का मुंह सामने की दीवार की ओर! आप बाहर की कोई चीज देख नहीं सकते। केवल सामने की दीवार को देख सकते हैं। द्वार के प्रकाश से बाहर की चीजों की छाया पड़ती है। इसी को आप

'वस्तु' कहते हैं। वस्तुतः यह वस्तुयें नहीं हैं। बाहर की वस्तुओं की छाया मात्र हैं। इसी प्रकार जिनको हम दृश्य कहते हैं वे सचमुच (सत्य पदार्थ) नहीं। सत्य पदार्थ तो ऊपर के (पर जगत्) जगत् में है। यह दृश्य उन्हीं की छाया मात्र हैं। जैसे आप एक पशु को देख कर कहते हैं कि यह शेर है। सैकड़ों शेर हैं। लेकिन अफलातून कहता है कि यह केवल प्रतिच्छाया है उस विशेष शेर को जिसका अस्तित्व पर-जगत् में है और वह इस दृश्य शेर या इस शेर जाति से भिन्न है।

अरस्तू अफ़लातून का शिष्य था। परन्तु वह अफ़लातून के इस सिद्धान्त को अटकल या ढकोसला कहता था। उसमें और उसके गुरू में तनातनी हो गई। शिष्य को पहले तो भाग जाना पड़ा परन्तु पीछे से उसने अथेंस में आकर विद्यालय खोला जो अफलातून के विद्यालय का विरोधी और प्रतिद्वन्दी था।

अरस्तू ने अफलातून के छायावाद का खण्डन कर दिया और वाह्य जगत् की सत्यता पर बल दिया। इस दर्शन ने विद्वानों का मुँह काल्पनिक (छाया) जगत् से हटाकर भौतिक जगत् की ओर दिया। इससे एक लाभ तो हुआ अर्थात् लोग भौतिक विज्ञान की ओर झुक पड़े। परन्तु परोक्ष जगत् के सूक्ष्म सिद्धान्तों से विमुख हो गये। इससे विद्वानों के दिलों में जहाँ जगत् के भौतिक पक्ष की मान्यता अधिक हो गई वहाँ अध्यात्म की ओर से उदासीनता हो गई। पहले परलोक के समक्ष जगत् को तुच्छ समझा जाता था, अब लोक को परलोक के ऊपर प्रमुखता दी जाने लगी। इस दर्शन के प्रभाव में लोगों ने यह मानना त्याग दिया कि इस प्रत्यक्ष जन्म से पूर्व भी कोई जन्म था। और पुनर्जन्म के सिद्धान्त का मखौल उड़ाया जाने लगा। अरस्तू के इस दर्शन का प्रभाव कई भिन्न-भिन्न माध्यमों के द्वारा ईसाइयत पर भी पड़ चुका था और वही प्रभाव मुसलमानों पर पड़ा।

यूनानी दर्शन के अरबी अनुवाद के पश्चात् इस्लामी फिला-सफरों पर इसका प्रबल प्रभाव प्रतीत होता है। एक मुसलमान कवि ने जो अध्यात्म-प्रिय था एक पद्य लिखा :—

बादा अज मा मस्तशुद नै मा अजो।
क़ालिब अज मा हस्तशुद नै मा अजो।

अर्थात् शराब को हम अपनी मस्ती उधार देते हैं। शराब हमको नशा नहीं देती। जिस शरीर से आत्मा निकल चुका है उसके मुँह में शराब डालने से उसे नशा नहीं होता। शरीर को हम जीवित बनाते हैं। शरीर हमको जीवित नहीं करता।

इस पद्य से स्पष्ट सिद्ध होता है कि भौतिक शरीर से पहले आत्मा विद्यमान था। आत्मा के लिये शरीर चाहिये। शरीर के लिये आत्मा नहीं। बच्चे के लिये हिंडोला बनाया जाता है हिंडोला बच्चे को नहीं बनाता।

आज कवियों का दृष्टिकोण भौतिक हो गया। एक उर्दू कवि कहता है :—

जिन्दगी क्या है? अनासिर की मुनासिब तरकीब।
मौत क्या है? इन्हीं अजजा का परेशां होना॥

यह कुरानी या इस्लामी दर्शन नहीं है जहाँ केवल भौतिक तत्त्वों का संघात ही जीवन हो, 'रूह' या आत्मा का नाम तक मिट जाय। आजकल के मुसलमान विद्वान् जैसे जन्म के पूर्व के जीव के अस्तित्व से अनभिज्ञ अथवा अविश्वासी हैं उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् के अस्तित्व को भी नहीं जानते। केवल स्वर्ग और उसकी कल्पित आशाओं या नरक के डरों का एक धुँधला सा भान विद्यमान है। उसके विषय में भी कोई नियत और नियंत्रित सिद्धान्त नहीं कि जीव मृत्यु के पश्चात् कहाँ जाता है। कुरान शरीफ़ ठीक कहता है कि 'कहाँ बहके बहके फिरते हो।' (फ़

अन्ना तूफ़िकून)। किसी मुसल्मान से पूछो कि यदि मृत्यु के उपरान्त जीव दूसरे शरीर को नहीं लेता तो कहाँ जाता है ? नरक या स्वर्ग का द्वार तो क़यामत के दिन ही खुलेगा। तो वह बगल झांकेगा। यदि क़ब्र पर फ़ातिहा चढ़ाने वाले से कहो कि 'भाई तुमने तो इस सम्बन्धी के मरने पर भली भाँति जाँच करली थी कि उस सम्बन्धी का आत्मा इस शरीर में नहीं रहा। तभी तो तुमने इस जीव-शून्य शरीर को सैकड़ों मन मिट्टी के नीचे गाड़ दिया। अब यहाँ किसको सुना रहे हो।' तो वह नाराज़ हो जायगा। क्योंकि वह धार्मिक कृत्यों में ननु नच का अभ्यासी नहीं है। परन्तु प्रश्न निरर्थक तो है नहीं।

जब मुसल्मानी विद्वानों ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त का निषेध किया है तो हम उनका अनुसरण क्यों न करें। यह बात तो लोगों को पुनर्जन्म का सिद्धान्त मानने से रोकती ही है। परन्तु एक और आपत्ति बताई जाती है कि हमको पूर्व जन्म की याद नहीं रहती। इस आपत्ति का आधार है एक हेत्वाभास। स्मृति किसी अतीत घटना की वास्तविकता को सिद्ध करती है। परन्तु विस्मृति (याद न रहना) उसके नास्तित्व को सिद्ध नहीं करती। विस्मृति (भूल जाना) का तात्पर्य यह है कि भूतकाल में कोई घटना घटी थी। उसको हमको याद नहीं है। उसका अस्तित्व दूसरे हेतुओं से सिद्ध है। 'स्मृति' '*भाव*' का प्रमाण है। विस्मृति '*अभाव*' का प्रमाण नहीं। जब हम कहते हैं कि कल का पढ़ा हुआ पाठ आज याद नहीं है, भूल गये। तो इसका यही तात्पर्य होता है कि याद होना चाहिये था। मन के दौर्बल्य से भूल गये। हम स्वयं अपने लिखे को भूल जाते हैं और जब कोई बाह्य प्रमाण मिल जाता है तो कह उठते हैं कि वस्तुतः यह हमीं ने लिखा था, भूल गये। याद भाव का द्योतक है। विस्मृति अभाव का द्योतक नहीं। कई बार हमको ऐसे बच्चे मिले हैं जो अपने

पिछले जन्म की बातें बताते हैं और उनमें से कोई कोई सच भी निकली हैं। हमारे स्वयं अनुभव में कुछ घटनायें है जिनकी व्याख्या बिना पुनर्जन्म सिद्धान्त के माने हो ही नहीं सकती। प्रायः लोग इसको हिन्दुओं का अन्धविश्वास बताते हैं। मुसल्मानी देशों में भी ऐसी घटनायें घटती हैं, जिनको मुसल्मान विद्वान इस्लामी मन्तव्यों के विरुद्ध कहकर दबा देते हैं। और उनको छान बीन नहीं करते। अभी स्तंबोल से स्यूटर की ९ अगस्त १९६२ की एक रिपोर्ट है कि इस्माईल-अल-तकनिक (Ismall Altacnik) नामक एक चार वर्ष के बालक के शरीर में एक पुरुष का जीव है जो छः साल पूर्व दक्षिण-पूर्वी टर्की के अदाना (Adana) में मारा गया था। लड़के की बातें सुनकर मनो-विज्ञान के पण्डितों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। और टर्की के मनो-विज्ञान विभाग के मुख्याध्यक्ष डाक्टर रफ़अत कैसर (Dr. Refet Kayeseriloglu, Chairman of the Turkish Meta-psychic and Scientific Research Association.) लड़के के देखने को अदाना पधारे। उन्होंने कहा है कि यह ऐसी बात नहीं है कि एक ही शरीर में दो जीवात्मा काम कर रहे हों। यह तो साफ़ कि एक जीव ने दूसरे शरीर में जन्म पाया है। उन्होंने कहा कि हमारे विभाग की ओर से इस घटना का विवरण अन्तर्देशीय आध्यात्मिक केन्द्र (International Federation of Spiritualists) को भेजा जायगा। अध्यक्ष महोदय का यह भी कथन है कि लड़का इस जीव की घटनाओं को कुछ दिनों में बिल्कुल भूल जायगा।

ज्ञात नहीं कि इस रिपोर्ट पर निष्पक्ष भाव से कहाँ तक अनुसंधान होगा। सम्भावना तो यह है कि पक्षपाती मुल्लाओं की चीख़ पुकार इस घटना को दबा लेगी। विस्मृति के आधार पर यदि अतीत घटनाओं को परखा जाय तो हमारी अपनी

जिन्दगी की सैकड़ों बातों पर पानी फिर जायगा। बहुत सी अनिष्ट घटनाओं को हम स्वयं भूल जाना चाहते हैं और बहुत सी शुभ घटनाओं को हमारी स्वाभाविक दुर्बलता भुला देती है। बहुत से परीक्षार्थी परीक्षा में इसलिये असफल हो जाते हैं कि उनको स्मृति सहायता नहीं करती। कहते हैं, 'अमुक बात मेरी जीभ पर थी। याद नहीं आई। और विवश होकर मुझे विना लिखे उठ आना पड़ा।'

कुछ लोग यह भी आक्षेप करते हैं कि कोई मनुष्य बन्दर, सुअर, बकरी आदि नीच तथा गर्हित योनियों में जाना नहीं चाहता। यह ठीक है कि हम वर्तमान अवस्था से अच्छी अवस्था को पसन्द करते हैं बुरी को नहीं। पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानने वाले भी निचली योनियों में जाना नहीं चाहते। और तमासुख (विकृति) के सिद्धान्त के अन्तर्गत जो लोग बन्दर या सुअर बनाये गये थे वह बन्दर और सुअर बनना तो नहीं चाहते थे। परन्तु जिनके कर्म अशुभ होते हैं उनको दण्ड तो भोगना ही पड़ता है। कौन ऐसा चोर या डाकू है जो जेल जाना चाहता हो। कौन ऐसा बे-परवाह या बुरा कार्य करने वाला आदमी है जो अपने पद की अवनति चाहता हो ? कौन ऐसा विद्यार्थी है जो फेल होना चाहता हो ? परन्तु ईश्वर का ऐसा विधान है कि चाहो या न चाहो, अशुभ कर्म का दण्ड तो भोगना ही है। एक दूसरे प्रसंग में इसी नियम को कुरान शरीफ़ ने स्पष्टतया वर्णन किया है :—

'इसमें दाखिल हो जाओ। सब्र करो या न करो। तुम्हारे लिये सब बराबर है। जो काम तुम करते थे उसी का यह दण्ड है'।* (सूरत तूर आयत १६)

---

*इस्लौहा फ़ास्बिरू औ ला तस्बिरू। सवाउन् अलैकुम्। इन्नमा तज् ज़ून मा कुन्तुं तामलून (तूर १६)

अध्याय २२

क्या पशु-पक्षी निर्जीव हैं ?

क्या पशु पक्षी निर्जीव हैं ? यह एक प्रश्न है जिसका सम्बन्ध पुनर्जन्म के सिद्धान्त से भी है और जीवन के अन्य विभागों से भी। हिन्दू जनता, जैनियों और बौद्धों का तो यह मत है कि जिस प्रकार मनुष्य में जीव है उसी प्रकार कुत्ते बिल्ली गाय बैल में भी है। यह जीव सजातीय हैं। भेद केवल शरीरों का है। मनुष्यों में वस्त्र आदि का भेद पाया जाता है। अंगरेजों के कपड़े, अरब वालों के कपड़े, चीनियों के कपड़े, हिन्दुस्तानियों के कपड़े, पत्ती-पोश जंगलियों के कपड़े भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु उनके शरीर एक से हैं। स्त्री पुरुष के शरीर भी आंशिक भिन्नता के अतिरिक्त एक से ही हैं। इसी प्रकार यद्यपि जानवरों के शरीर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं तथापि उनके जीव एक से ही हैं। जीव अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है। शरीर भौतिक हैं। जीव अभौतिक हैं। सूक्ष्म जीव प्रकृति के परमाणुओं से भी सूक्ष्म है। शरीर घटता बढ़ता है। परन्तु जीव घटता बढ़ता नहीं। बच्चे का शरीर छोटा होता है। जवान का बड़ा। परन्तु गुरुता शरीर की है जीव की नहीं- आज मेरा शरीर सात बालिश्त का है, जब में उत्पन्न हुआ था तो शायद एक बालिश्त का भी न था। परन्तु बढ़ा शरीर है। जीव नहीं बढ़ा। शरीर बूढ़ा और निर्बल होता है। जीव न जीर्ण होता है न दुर्बल। सब जानवरों में जीव है। चींटी के जीव और हाथी के जीव तो उसी प्रकार सूक्ष्म हैं जैसे जवान तथा बच्चे के जीव हैं, अन्तर शरीर का है। शरीर बाहरी वस्तु है।

मुसल्मानों और ईसाइयों का मत है कि केवल मनुष्य ही सजीव हैं। जानवरों में जीव नहीं होता। इंग्लैण्ड का एक प्रसिद्ध विद्वान् था ब्रैडला (Bradlaugh)। वह यह मानता था कि संसार में कोई पदार्थ अभौतिक नहीं। प्रकृति के अतिरिक्त कोई ऐसी वस्तु विद्यमान नहीं जिसको जीव या ईश्वर कहा जा सके। जब उसके समक्ष ईसाई विद्वानों ने वह युक्तियाँ रक्खीं जिनसे मनुष्य को सजीव सिद्ध किया जा सके तो उसने कहा कि यदि आप की युक्तियों में कुछ बल है तो आपको कुत्ता बिल्ली आदि में भी जीव मानना चाहिये क्योंकि जिन प्रगतियों के कारण आप मनुष्य को सजीव मानते हैं वह सब प्रगतियाँ जानवरों में भी पाई जाती हैं। वस्तुतः ईसाई विद्वानों के पास इस आक्षेप का कोई उत्तर नहीं है। या तो 'जीव' के अस्तित्व को मानना छोड़ दो या पशुओं को भी सजीव मानो।

मुसल्मान लोग जानवरों को क्यों सजीव नहीं मानते यह एक पहेली है। क्या कुरान शरीफ़ में कहीं लिखा है कि केवल मनुष्यों के शरीर में रूह होती है जानवरों के शरीर में नहीं ? हम को तो कहीं ऐसा लेख मिला नहीं। हमारी धारणा है कि मुसल्मान विद्वानों ने जैसे अनेक ऐसे सिद्धान्त मान रक्खे हैं जो कुरान से सुसंगत नहीं हैं इसी प्रकार जानवरों के सजीव होने का सिद्धान्त भी है।

ईश्वर की रचना के तीन वर्ग हैं—हैवानात (जीव वर्ग), नबातात (वनस्पति वर्ग), तथा जमादात (पत्थर आदि)। कोई चौथा वर्ग नहीं है। ईश्वर इन सब वर्गों से सर्वोपर्य है। हैवान-वर्ग में मनुष्य तथा पशु पक्षी दोनों सम्मिलित हैं। दोनों जान-दार हैं। केवल बोलचाल का भेद है कि हम मनुष्य और कुत्ते दोनों को जान-दार कहते हैं परन्तु मनुष्य को जान-वर नहीं कहते। "जानदार' शब्द का 'दार' प्रत्यय और 'जानवर' शब्द का 'वर'

प्रत्यय कुछ अधिक अन्तर नहीं रखते। यह केवल बोल चाल का भेद है। जमादात (पत्थर आदि) में ज्ञान शक्ति का अभाव है। मिट्टी, ईंट, पत्थर, वायु, जल, अग्नि आदि 'जमादात' में गिने जाते हैं। चांद, सूर्य आदि बड़े बड़े ग्रह भी जीव-शून्य हैं। इस लिये यह भी 'जमादात' वर्ग में हैं। हैवानों में ज्ञान-शक्ति है। उन में समझ है। जैसे मनुष्य सोचता है उसी प्रकार कुत्ता और घोड़ा भी सोचता है। वनस्पति मध्यवर्गीय है। यह वर्ग है तो ज्ञान-शून्य परन्तु इसके क्षय और वृद्धि के नियम किसी सीमा तक जानदारों के शरीरों के क्षय और वृद्धि से मिलते हैं। परन्तु यह सादृश्य केवल भौतिक उपचय अपचय में है। जानवरों की समझ में न्यूनाधिक्य होता है। वनस्पति में 'समझ' के लक्षण न व्यक्त हैं न अव्यक्त। परन्तु जानदारों की समझ में शिक्षा की अपेक्षा से कमी तथा वृद्धि होती है। शिक्षित घोड़े, शिक्षित कुत्ते, शिक्षित कबूतर अशिक्षितों की अपेक्षा बहुत उन्नति कर सकते हैं। स्काटलैण्ड के कुत्ते जो भेड़ों की रखवाली करते हैं साधारण कुत्तों की अपेक्षा अधिक समझदार होते हैं। हीरे की कानों में कुत्ते चौकीदारी का काम करते हैं। आजकल अपराधियों को पकड़ने के लिये कुत्तों को शिक्षा दी जाती है। यह परीक्षण आप वृक्षों या घास आदि पर नहीं कर सकते। इसलिये हैवानात (जीवधारियों) का वर्ग उच्चतम समझा जाता है।

कुछ लोगों ने मनुष्य को 'हैवान नातिक़' (बोलने वाला जानदार) और जानवरों को 'हैवान मुतलक़' (कोरा जानवर) कहा है। 'नातिक़' और 'मुतलक़' शब्द केवल शरीर के एक भाग की अपेक्षा से हैं अर्थात् 'जीभ' से, 'समझ' का प्रकाश केवल 'जीभ' द्वारा ही नहीं होता। शरीर के अन्य अवयव भी 'समझ' को बताते हैं। भारतवर्ष के बहुत बड़े दर्शनकार श्री शंकराचार्य ने 'समझ' के तीन लक्षण बताये हैं। 'कर्तुं', अकर्तुं, अन्यथा

कर्तुम्'। करना, न करना और उलटा करना। घड़ी की सुई केवल एक दिशा में चलती है। उसमें यह शक्ति नहीं कि जब चाहे बन्द हो जाये, न यह शक्ति है कि उलटी दिशा में चल सके। इसलिये घड़ी में गति तो है पर समझ नहीं। चींटी अपनी गति में स्वतंत्र है। वह चलती भी है और रुक भी जाती है और पीछे को लौट भी जाती है। सब जानवरों का यही हाल है। इसलिये जीभ का समझ से केवल गौण सम्बन्ध है। यह नहीं कह सकते कि जितनी समझदार चीजें हैं वह सब बोलने वाली भी हों। गूंगे भी तो मनुष्य ही होते हैं जिनकी वाक्-इन्द्रिय के गोलक में दोष होता है परन्तु उनमें समझ होती है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे जानवर भी हैं जिनमें कुछ-कुछ 'नुतक़' (बोलने की शक्ति) भी पाया जाता है जैसे तोता, मैना। सब मनुष्य 'नुतक़' (बोलने की शक्ति) में बराबर नहीं होते। 'जीभ' आवाज निकालने का उपकरण है। यह उपकरण भिन्न-भिन्न जानवरों में भिन्न-भिन्न होता है। गधा बोलता है। कुत्ता बोलता है। तोता बोलता है। घोड़ा बोलता है और मक्खी भी बोलती है परन्तु धीरे से। इसलिये कहते हैं कि मक्खी भिनभिना रही है। 'भिनभिनाना' एक आवाज़ है जो उसी प्रकार के औज़ार से निकलती है जिसको आप मनुष्य की देह में 'जीभ' कहते हैं, भेद अवस्था का है जाति का नहीं। इसलिये 'हैवानात' के वर्ग को दो भागों में विभक्त करके एक को 'हैवान-नातिक़' बताना और दूसरे को 'हैवान मुतलक़' कहना केवल उपचार की भाषा है। जैसा कि आप 'हैवान नातिक़' के भी दो भाग कर सकते हैं एक फ़सीह (सुभाषी) दूसरे 'गैरफ़सीह' (कुभाषी)। वर्गीकरण तो आपकी विवेक शक्ति पर निर्भर है। अतः हैवानों (जानवरों) को निर्जीव बताना उचित नहीं। शब्द 'हैवान' (अरबी शब्द) का धात्वर्थ देखा जाय तो 'हय्य' का अर्थ है जीवित होना

जीवन जैसा मनुष्य में है वैसा ही जानवर में। यदि 'हय्य' (जिन्दगी) न होती तो न इन्सान को 'हैवान' कहते न जानवरों को। 'हैवान' को 'हैवान' कहना ही सिद्ध करता है कि जब कभी मनुष्य की बोल चाल में 'हैवान' शब्द का प्रयोग हुआ होगा तो भाषा बनाने वालों साहित्य तथा व्याकरण के प्रवर्तकों का यह विश्वास रहा होगा कि जिसमें जिन्दगी है वही हैवान है। अरबी भाषा का 'हैवान' शब्द सिद्ध करता है कि जैसे इन्सान जीता मरता है इस प्रकार दूसरे जानदार भी जीते मरते हैं। मरेगा वही जो जिन्दा था। कुत्ता अगर जिन्दा न होता तो मरता न। उसकी मौत ही उसकी जिन्दगी को सिद्ध करती है। 'यहय्य' व 'यमूतु' (जीता है और मरता है) शब्दों का प्रयोग मनुष्य और जानवरों दोनों के लिये समान रूप से होता है। इसलिये आश्चर्य की बात है कि मुसल्मान विद्वानों ने जानवरों को क्यों जीव-रहित समझा? हमने जो कुरान-शरीफ़ का अध्ययन किया तो हम इस परिणाम पर पहुँचे कि मुसल्मान विद्वानों ने जानवरों को जीव-शून्य मानकर स्वयं कुरान शरीफ़ का विरोध किया है। यह सर्वथा अनुचित है। थोड़ा सा कुरान शरीफ़ की नीचे लिखी आयतों पर ध्यान दीजिये।

'हमने इन्सान को मिट्टी के सत से पैदा किया है। फिर उसको एक दृढ़ स्थान में नुतफ़ा बनाकर रक्खा। फिर नुतफे का लोथड़ा बनाया। फिर लोथड़े की बोटी बनाई। फिर बोटी की हड्डियाँ बनाईं। फिर हड्डियों पर माँस का चाम चढ़ाया, फिर उसको नई आकृति में ढाल दिया।* (अल् मौमिनून आयत १४)

---

* व लक़द् ख़लक़्नल् इन्सान मिन् सुलालतिन् मिन् तीनिन्। सुम्म जअ़लनाहु नुत्फ़तन् फ़ी करारिम् मकीनिन् सुम्म ख़लक़्नन् नुत्फ़त अ़लक़तन्। फ़ ख़लक़्नल् अ़लक़त मुज़्ग़तन्। फ़ ख़लक़्नल्

यहाँ प्रश्न यह है कि मनुष्य के शरीर की रचना का जो क्रम इस आयत में दिया हुआ है वह केवल मनुष्य के शरीर तक ही सीमित है या गाय, बैल, हाथी, सांप, बिच्छू आदि सभी जानवरों में पाया जाता है ? यदि कुरान शरीफ़ की इस आयत की व्याख्या सृष्टि रचना का अवलोकन करके की जाय तो यह मानना पड़ेगा कि यद्यपि वर्णन यहाँ केवल मानव शरीर का है। परन्तु इसके अन्तर्गत सभी जानवर आ जाते हैं। मिट्टी के सत से लेकर, नुतफ़ा, लोथड़ा, बोटी, हड्डियाँ, चमड़ा सभी अवस्थायें हर छोटे और बड़े जानदारों में एक सी पाई जाती हैं। वैधानिक अंतर रत्ती भर भी नहीं। शरीर-शास्त्र के सुविज्ञों ने गर्भवती माताओं के गर्भ के फोटो लिये हैं। मनुष्य के गर्भ और खरगोश, गाय, बकरी आदि के गर्भों में जाति-भेद नहीं है। इससे यह क्यों न माना जाय कि मनुष्य के शरीर का दृष्टान्त देकर कुरान को यह भी इष्ट था कि जो बात मनुष्य के शरीर की बनावट पर उदाहरण के रूप में घटित होती है। वह समस्त जानवरों पर भी ठीक बैठती है। हमारे इस अनुमान की पुष्टि कुरान शरीफ़ की दूसरी आयतों से होती है। सूरत 'नहल' आयत ६९ देखिये :—

'तेरे रब ने शहद की मक्खी को वही (इल्म) दी कि पहाड़ों पर घर बना। और वृक्षों पर और कुंजों अर्थात् फैली हुई लताओं पर, फिर सब फलों में से खा। और अपने पालने वाले के साफ रस्तों पर चली जा। उनके पेट से भिन्न भिन्न रंगों वाला पेय निकलेगा जो मनुष्य के लिये स्वास्थ्यप्रद होगा। यह निशानियाँ

मुज़ग़त इज़मन्। फ़ कसौनल् इज़म् लहमन्। सुम्म अनूशानाहु खल्क़न् आख़र॥ (मौमिनून १४)

हैं उन लोगों के लिये जो सोचते हैं।*

यहाँ कुरान शरीफ़ में उस समझ का वर्णन है जो ईश्वर ने शहद की मक्खी को दी है और साथ ही यह भी कहा है कि जो सोचने वाले हैं वही इस सूत्र को समझ सकते हैं कि शहद की मक्खी जीव शून्य जड़ पदार्थों का लोथड़ा नहीं है अपितु सजीव और समझदार है। जो सोच समझ कर निश्चय करने के अभ्यासी नहीं हैं उनके लिये तो कुछ कहा नहीं जा सकता।

एक और आयत देखिये :—

'दाऊद का वारिस सुलेमान हुआ और उसने कहा कि हम को (खुदा की तरफ से) जानवरों की बोली सिखाई गई है।†' (सूरत नमल आयत १६)

यह आयत तो 'हैवान नातिक' और 'हैवान मुतलक़' के भेद पर पानी फेर देता है। सुलेमान को पक्षियों की बोलियाँ सिखाई गई तो इस का खुला अर्थ यह है कि पक्षी 'हैवान मुतलक' नहीं 'हैवान नातिक' हैं। इससे जानवरों का सजीव, सबुद्धि, और स-वाक् होना सिद्ध होता है। मनुष्य की वाणी और पशुओं की वाणी में कुरान शरीफ़ की दृष्टि में केवल मात्रा का भेद है जाति का भेद नहीं। यह मुसल्मान विद्वानों के लिये विचारणीय प्रश्न है।

---

* व औहा रब्बुक इलन् नहलि। अनित् तख़्जी मिनज्जबालु बुयूतन् व मिनश्शजरि व मिमा य अरिशून। सुम्म कुली मिन् कुल्लि स्समराति फस्लु की सुबुल रब्बिक ज़ुललन्। यख़रुजो मिन् बुतूनि हा शराबुं मुख़्तलिफ़ुन् अल्वानहुं। फ़ी हे शिफ़ाउन् लिल्नासि। इन्न फ़ी ज़ालिक ल आयतुन् लि क़ौमिन् यतफ़क्करून। (नहल ६९)

† व वरिस सुलैमानु दाऊद व क़ाल या अहियुन्नासु उल्लमना मन्तिक़त् तैरि। (नमल १६)

आप शायद कहें कि इन्सान के लिये तो लिखा है कि उसके शरीर में अल्लाह ने रूह फूंकी (नफ़ख़्तु फ़ीहे)। जानवरों के लिये ऐसा नहीं कहा गया। हमारा कहना है कि मनुष्य का उदाहरण केवल नमूने के लिये दिया गया है। क्योंकि जब पशुओं के शरीरों की रचना का वही क्रम (व्यवस्था) है जो मनुष्य के शरीर का है तो कुत्ते बिल्ली को जिन्दा करने का भी वही नियम होगा। यह संभव नहीं कि मनुष्य के शरीर को जिन्दा करने के लिये तो खुदा को रूह फूंकने की ज़रूरत पड़े लेकिन जब कुत्ते, बैल, या हाथी का शरीर बन जावे तो वह बिना रूह के ही लगभग मनुष्य की भाँति चल फिर सकें। जब मनुष्य के बच्चे के शरीर में रूह फूंकी गई तो इस बच्चे को चलने फिरने में कई मास लग गये। गाय का बच्चा तो बहुत शीघ्र उठ खड़ा होता है बिना रूह के यह सब कैसे हो सकता है ? सूरत शूरा में आया है :—

'अल्लाह ने तुम्हारे लिये तुम्हारी ही जाति के जोड़े बनाये। और जानवरों के लिये उनकी जात के।'* (शूरा ११)

यदि जानवर निर्जीव होते तो उनको पैदा करने के लिये 'जोड़ों' की आवश्यकता न होती। मिट्टी का एक निर्जीव घड़ा दूसरे घड़े को उत्पन्न नहीं करता। कुम्हार अलग-अलग घड़े बनाता है। जैसे अकेला मनुष्य नर या अकेली मनुष्य स्त्री सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकती इसी प्रकार साँप, बिच्छू, कुत्ते, भेड़िये, शेर चीते भी करते हैं।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि यद्यपि कुरान शरीफ़ जानवरों को 'सजीव' (रूह-वाला) समझता रहा, भाष्यकारों ने

---

* जअ़ल लकुं मिन् अनफ़ुसिकुं अज़्वाजन् व मिनल् अनआमि अज़्वाजन्। (शूरा ११)

कुरान शरीफ़ को अपने कपोल-कल्पित मंतव्यों के प्रकाश में देखने की कोशिश की। चाहिये तो यह था कि भाष्य (तफ़सीरें) कुरान शरीफ़ के रहस्यों को खोलकर दिखलाती। परन्तु इसके विपरीत तफ़सीरों ने कुरान शरीफ़ को अपनी कल्पनाओं के रंग में रंगने की कोशिश की। यह केवल हमारा ही कथन नहीं है।

इमाम फखरुद्दीन राज़ी की तफ़सीर (भाष्य) बहुत प्रसिद्ध और प्रामाणिक है। अबू हबनान आदि विद्वानों ने लिखा है कि 'इस तफ़सीर में सब कुछ है *सिवाय तफ़सीर के* (कुल्लो शैइन् इल्लंत् तफ़सीर।' अर्थात् इधर उधर की बातें तो बहुत भर दी गई हैं मुख्य विषय को स्पष्ट नहीं किया गया। तहज़ीबुल् इल्ख़ाक़ जिल्द अव्वल में तो लेखक ने झुँझला कर यहाँ तक कह दिया :—

'खुदा इन किस्सों और कहानियों को किसी मुसल्मान को न दिखावे न सुनावे जो लोगों ने तफ़सीरों में भर दिये हैं।' (पृष्ठ १५०)

———

अध्याय २३

क़यामत या पुनरुत्थान

कर्म के सिद्धान्त का सम्बन्ध जैसा पुनर्जन्म के सिद्धान्त से है वैसा ही क़यामत से है। क़यामत का उल्लेख कुरान शरीफ़ में बहुत बार आया है। इस्लाम धर्म के स्तम्भों में जो पाँच स्तम्भ हैं, उनमें एक स्तम्भ यह भी है कि क़यामत पर ईमान (विश्वास) रखना चाहिये।

सूरा बकर आयत १७७ में हैं :—'लेकिन नेकी यह है कि लोग खुदा पर और क़यामत के दिन पर, और फ़रिश्तों पर और (खुदा की) किताब पर और पैगम्बरों पर ईमान लावें।'*

क़यामत को यहाँ 'योमिल् आख़िरे' अर्थात् अन्तिम दिन कहा है। इसके अतिरिक्त कयामत के लिये और भी शब्द हैं :— योमिद्दीन या धर्म का दिन (सूरा फातिहा ३), योमिल् आखिर या अन्तिम दिन (बक़र ८), योमन् या विशेष दिन (बकर ४८), योमिल् आख़िर या अन्तिम दिन (बकर ६२), योमल् कयामत का दिन, (बकर ११३) योमन (बकर १२३), वह दिन जब वे बेहोश कर दिये जायँगे (तूर ४५)।

इसके अतिरिक्त 'सूरा क़यामत' एक अलग सूरा है। यह सूरा मक्के में उतरा था। आजकल कुरान शरीफ़ में इसका नम्बर ७५ है। वस्तुतः उतरने के क्रम से यह ३६ वां सूरा है।

---

* व लाकिन्नल् बिर्रं मन् आमन बिलाहे वल्योमिल् आखिरे वल् मलायिकते वल् किताबे वन्नबीईयन। (सूरा बकर आयत १७७)।

यह सूरत उस समय उतरी थी जब मुहम्मद साहेब अपनी पैगम्बरी के प्रचारार्थ अरब के लोगों को कयामत के वर्णन से डराते थे। इसकी पहली आयतों पर विचार कीजिये :—

'मैं कसम खाता हूँ कयामत के दिन की और मैं क़सम खाता हूँ 'नफ़स लव्वामा' की।'*

अरबी के विद्वानों ने मनुष्य की प्रवृत्ति के तीन भाग किये हैं। 'नफ़स अम्मारा' अर्थात् पाप की ओर ले जाने वाली प्रवृत्ति, दूसरी 'नफ़स लव्वामा।'। जो बुराई करने वाले के दिल में अपनी बुरी प्रवृत्ति के लिये घृणा उत्पन्न करती है। तीसरी 'नफ़स मुतमयिना' जो पुण्य कर्मों की ओर ले जाती है।

इस सूरत में खुदा क़यामत के दिन की क़सम खाता है और नफ़स लव्वामा की। अर्थात् ऐसी प्रवृत्ति की जो पापियों के दिल में अपने पापों के लिये घृणा का भाव उत्पन्न करती है।

अब तनिक क़सम खाने के विषय में सोचिये। कुरान शरीफ़ में बहुत बार कसम खाई गई हैं। कहीं सूर्य की, कहीं चाँद की, कहीं रात की, कहीं दिन की, कहीं कलम की, कहीं फजर या प्रातः काल की (देखो सूरत फजर, कलम आदि)। इन आयतों को लौहि महफ़ूज़ या अमरपट्टिका के किसी भाग की प्रतिलिपि, या उसका अंश या अनुवाद कहना तो परले दर्जे का अन्ध विश्वास ही हो सकता है। बात ऐसी मालूम होती है कि अरब के लोगों में क़सम खाने का बड़ा रिवाज था। जब कोई बात करने वाला किसी श्रोता को किसी बात पर विश्वास दिलाने के लिये आग्रह करता था तो उन चीजों की क़सम खाता था जिनके विषय में श्रोता को कोई सन्देह न हो। या जिनको वह प्रिय

---

* ल आ उक़्सिमो बि योमिल् क़यामते। व ल आ उक़्सिमो बिन् नफ़्सिल् लव्वामते। (क़यामत १-२)

समझता हो। जैसे भारत में भी कहते हैं 'तुम्हारे सर की क़सम अमुक बात ऐसी ही है। तुम इस पर संदेह मत करो।' हज़रत मुहम्मद साहेब को अपनी पैगम्बरी का प्रचार इष्ट था। वह अविश्वासियों को उन्हीं की भाषा में उन्हीं के प्रचलित मुहाविरों में क़समें दिलाते थे। और क़यामत का भय दिखाते थे। जिन चीज़ों की क़सम खाई जाती थी वह दो प्रकार की थीं। एक तो सामने थीं और जिनकी प्रतीति होती थी जैसे सूरज, चाँद, रात दिन आदि। कुछ कल्पित थीं। आजकल भी बच्चों या मूर्खों को डराने के लिये इन्हीं दो प्रकार की चीज़ों का प्रयोग होता है। मा कहती है, 'बच्चा! दूध पीले, नहीं तो हउआ कान काट ले जायगा!' एक मा को हमने यह कहते सुना, कि 'दूध पीले, नहीं तो पुलिस पकड़ ले जायगी'। कोई यह भी कह सकती है कि 'दूध पीले, नहीं तो मैं तुझे सज़ा दूँगी'। 'हउआ' नितान्त कल्पित है। कहीं हउये का अस्तित्व नहीं। पुलिस अर्द्ध कल्पित है और अर्ध सत्य। पुलिस है तो अवश्य परन्तु बच्चे को दूध न पीने के जुर्म में पकड़ती नहीं। स्वयं दण्ड देना यह वास्तविक सत्य है। उसमें कल्पना का अंश नहीं। कसम खाकर डराने में वही बातें हैं। रात और दिन की वास्तविक सत्ता है। उनका प्रत्यक्ष होता है। क़यामत को किसी ने देखा नहीं। केवल कल्पना है। और उसकी शपथ बुराइयों से डराने के लिये उन लोगों के सामने खाई गई है। जो नफ़स-लव्वामा (पाप की प्रवृत्ति) के शिकार हैं। अर्थात् हैं तो दुराचारी परन्तु उनको अपने दुराचारी होने पर खेद है। कुछ तो ऐसे लोग थे जो कट्टर (कभी न मानने वाले विरोधी) थे। उनके आगे शपथ खाना वृथा था। वह तो हज़रत मुहम्मद साहेब को जादूगर या पागल समझते थे। क़यामत का डर उन पर क्या प्रभाव डाल सकता था? कुछ मुसल्मान थे। उनको डिग जाने से बचाने के लिये

क़यामत का डर दिखाया जा सकता था। कुछ बीच के थे। उनके लिये तो इस प्रकार की शपथें बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती थीं। सूरत 'क़यामत' में इसी प्रकार के कुछ प्रत्यक्ष और कुछ कल्पित डरों का उल्लेख है। कयामत की कल्पना मुहम्मद साहेब ने स्वयं तो बनाई नहीं मालूम होती। क्योंकि युहूदियों और ईसाइयों में इसकी पूर्णतया मान्यता थीं। उनके धार्मिक ग्रन्थों में उसका वर्णन था। वहाँ भी इसी प्रकार के कथानक थे। परन्तु मुहम्मद साहेब की बात पर भी कुछ लोग आक्षेप करते थे।

'पूछता है कि कयामत कब होगी?'* (कयामत ६)

हज़रत मुहम्मद को क्या ख़बर? लेकिन जबाब तो देना ही है। जबाब भी ऐसा हो कि जिससे कहा जाय उस पर प्रभाव डाल सके। इसलिये यह तो नहीं कहा कि क़यामत कितने दिनों बाद होगी। परन्तु भयानकता को स्पष्ट कर दिया। अर्थात् 'जब आँख चुंधिया जावे। चाँद गहना जावे और चाँद और सूरज इकट्ठे कर दिये जावें।'†

बच्चा पूछता है 'हउआ कहाँ रहता है? और कब आयेगा?' मा उत्तर देती हैं, 'चुप! चुप! वह आयेगा तो तेरा दम घुट जायेगा।' सूरत ऐराफ़ में जो शायद हिज़रत के थोड़े ही दिनों पहले उतरी थी और जब शत्रुओं का बड़ा प्राबल्य था क़यामत के विषय में कहा गया :—

'यह लोग तुमको क़यामत के बारे में पूछते हैं कि उसके

---

* यस्अलु अय्यान योमुल् कयामतो। (सूरत कयामत, आयत ६)

† फ़ इज़ा बरक़ल् बसरो। व ख़शफ़ल् क़मरो। व जमअल् शम्सुवल क़मरो। (कयामतें ७, ८, ९)

आने का समय कौन सा है ? कह दो कि इसका ज्ञान तो मेरे ईश्वर को ही है। वही उसको उसके समय पर प्रकट करेगा। वह आस्मान और ज़मीन में एक भारी बात होगी और यकायक तुम पर आ जायगी।"*

इसमें सन्देह नहीं कि यह उत्तर बड़ी बुद्धिमत्ता का था। इससे मुहम्मद साहेब की नीति-निपुणता का प्रकाश होता है यदि यह कह देते कि 'कम से कम चौदह सौ साल के बाद।' (क्योंकि अब तक तो कयामत नहीं हुई, न चाँद और सूरज इकट्ठे हुये) तो लोगों का भय कम हो जाता। जो दण्ड दीर्घ-काल के पीछे दिया जाय उसका भय कम हो जाता है। मनुष्य सोचता है कि कौन जाने क्या होगा ?

अब तो आराम से गुज़रती है।
आक़बत की ख़बर ख़ुदा जाने।

परन्तु जब कहा कि कयामत यकायक आ सकती है तो भय अधिक हो गया।

कुरान शरीफ़ में कयामत का उल्लेख तो बहुत है। परन्तु न तो समय निश्चित है न घटनायें निश्चित हैं। कयामत कब आयेगी और क्या क्या दशा होगी। इसका वर्णन अनिरुक्त या अत्यन्त अधूरा है। केवल इतना बताया गया कि वह समय घोर विपत्ति का होगा। क़यामत का आरंभ सूर फूकने (शंख-ध्वनि) से होगा। इसके विषय में भी जो वर्णन है अस्पष्ट है।

---

* यस्अलूनक अनस्सायते अय्यान मुर्साहा। कुल् इन्नमा इल्मुहा इन्दे रब्बी। लअ युजल्लीहा लिवक्ति हा इल्ला हुव सक़ुलत् फ़िस्समावाते वलूअर्जे ला तीतीकुं इल्ला बग़्ततन्। (सूरत ऐराफ़ आयत १८६)

और स्वयं मुसल्मान विद्वान् इस का वर्णन करने में असमर्थ हैं। तफ़हीमुलक़ुरान नामक भाष्य के भाष्यकार ने स्वयं स्वीकार किया है :—

'सूर फूंकने की असली कैफ़ीयत क्या होगी। इसकी तफ़सील हमारी समझ से बाहर है। कुरान से जो कुछ हमें मालूम हुआ है वह सिर्फ इतना है कि कयामत के रोज़ अल्लाह के हुक्म से एक मरतबा सूर फूंका जायगा। और सब हिलाक हो जायँगे। फिर न मालूम कितनी मुद्दत बाद जिसे अल्लाह ही जानता है दूसरा सूर फूंका जायगा और तमाम अव्वलीन (पहले) और आखिरीन (पिछले) अज़ सरे नौ जिन्दा होकर अपने आप को मैदान-हश्र में पायेंगे। पहले सूर पर सारा निज़ामे कायनात् (जगत्) दरहम बरहम होगा। और दूसरे सूर पर एक दूसरा निज़ाम (व्यवस्था) नई सूरत और नये क़वानीन के साथ क़ायम हो जायगा।' (तफ़हीमुल् कुरान सूरत अन्-आम ७३, पृ० ५५२)

———

अध्याय २४

जन्नत का बाग़ और जहन्नुम की आग

कुरान शरीफ़ के अनुसार मुहम्मद साहेब के दो कर्तव्य हैं। एक शुभ आचरणों के लिये स्वर्ग (जन्नत) का सन्देश और दूसरे दुराचरणों के लिये नरक (जहन्नुम) की भर्त्सना। मुहम्मद साहेब *बशीर* (शुभफल का सन्देश देने वाले) भी हैं और *नज़ीर* (अशुभ फलों का भय दिलाने वाले) भी। 'हमने तुझको बशीर और नज़ीर बनाकर भेजा।' (बकर ११९)। 'अल्लाह ने नबियों को बशारत और डराने के लिये भेजा।' (बकर २१३)

स्वर्ग के मोद और नरक की यातनाओं के चित्र सूरत 'तूर' से उद्धृत किये जाते हैं:—

'उस दिन (अर्थात् क़यामत के दिन) झुटलाने वालों (उन लोगों के लिये जिन्होंने पैगम्बरों की बात को न मानकर झूठा बताया) के लिये ख़राबी है। जो असमंजस में पड़े खेल रहे हैं। जिस दिन उनको नरक की आग की ओर ढकेल-ढकेल कर ले जायँगे। यह वही आग है जिसको तुम झूठा समझते थे। तो क्या यह जादू है ? या तुमको दिखाई ही नहीं देता ? इसमें प्रवेश कर जाओ। धैर्य करो या धैर्य न करो। तुम्हारे लिये एक सा है। जो कर्म तुम किया करते थे उन्हीं का तुमको बदला मिल रहा है।* (सूरत तूर ११-१६)

---

*फ़ वैलुं। योमि इज़िं। लिल् मुकज़्ज़िबीन। अल्लज़ीनहुं फ़ी ग़ौसिन् यल्अबून। योम युद्ऊन इला नारे जहन्नम दअअन्। हाज़-

'जो दोष-रहित हैं वह बागों और आनन्दों में होंगे। जो कुछ उनके स्वामी ने उनको प्रदान किया उसके कारण प्रसन्न। और उनके स्वामी ने उनको नरक की यातना से बचा लिया। अपने शुभ कर्मों के पारितोषिक के रूप में मौज से खाओ और पियो। पीठों पर। जो बराबर बिछे हुये हैं। तकिया लगे हुये। और बड़ी-बड़ी हूरों (अप्सराओं) को हम उनका साथी बनायेंगे।......और जिस प्रकार के गोश्त और फलों का उनका जी चाहेगा उनको प्रदान करेंगे। वहाँ एक दूसरे से शराब के प्याले झपट लिया करेंगे। जिसके पीने से सिर नहीं फिरेगा। न कोई पाप की बात! और युवा सेवक जो ऐसे होंगे जैसे छिपाये हुये मोती उनके आस पास फिरेंगे।'* (सूरत तूर आयत १७-२०, २१-२४)

यह नमूना है नरक की आग का और स्वर्ग के बाग का। इसी प्रकार का चित्र और दूसरी जगहों पर खींचा गया है। जहाँ कहीं-कहीं आंशिक भेद है। बात वही है। सत्याचरण के लिये स्वर्ग के मोद-प्रमोद और दुराचरण के लिये नरक

हिन्नारुन् अल्लती कुन्तुं बिहा तुकज्जिबून। अ फ़ सहिरुन् हाज़ा। अं अन्तुं लातब्सुरून। इस्लूहा। फ़स्बिरू अव ला तस्बिरू। सवाऊँ अलेकुम्। इन्नमा तुजज़ून मा कुन्तुं तामिलून। (तूर ११-१६)

* इन्नल् मुत्तक़ीन। फी जन्नातिं व नईमिन्। फाकिहीन बिमा आताहुँ व वक़ाहुँ रब्बुहुँ अज़ाबिज् जहीम्। कुलू व अशरिबु हनीआ-यन् बिमा कुन्तुं तामिलून। मुत्तकीईन अला सुरूरिन्। मुस्फ़ फ़ूहिन्। व ज़व्वजनाहुँ बिहूरिन् ऐनिन्।.........व अमूददनाहुँ बि फाकहितिन् व लहमिन् मिम्मा यशतहून। यतनाज़ाऊन फाहा कासँ ला लग़्वुन् फोहा व ला तासीमुन्। व यतूफ़ अलेहिम् ग़िज़्मानुन् लहुँ लूलूअन् मकनूनुन्। (तूर १७-२०, २१-२४)

की आग। एक के लिये शुभ-सन्देश, दूसरे के लिये भय! कहीं-कहीं बहती हुई नहरों का उल्लेख है। अथवा नरक की यातनाओं का विस्तृत वर्णन है और धमकी दी गई है कि नरक में सदैव (खालिदून) रहना पड़ेगा इसी प्रकार स्वर्ग में भी।

हरदेश में विद्वान्, दार्शनिक या सच्चे अध्यात्म के प्रेमी तो बहुत कम होते हैं। सर्वसाधारण तो लौकिक विलासी जीवन के इच्छुक होते हैं। अरब की भी ऐसी ही दशा थी। हज़रत मुहम्मद साहेब के व्यावहारिक चातुर्य और नीति नैपुण्य का सबसे प्रबल प्रमाण तो यह है कि साधारण अरबों को ललचाने और डराने के लिये स्वर्ग और नरक का यह चित्र खींच दिया। अरब जैसे गर्म और उजाड़ देश में जहाँ गर्म रेतीले मैदान, झुलसाने वाली गर्म लूएँ। पानी की कमी, आदि-आदि हों, वहाँ के लोगों के लिये बहने वाली नहरें, अच्छे अच्छे मेवे, बड़ी आँखों वाली हूरें, मोती जैसे लौंडे, और दोस्ताना हँसी मजाक़, और शराब के प्यालों पर झपटा झपटी, और ऐसा करते हुये भी पाप के दोष से पृथक्त्व, (लातासोम)। इनसे अधिक लालच की कौन सी चीज़ हो सकती है? और इसी प्रकार जिस देश में रोज़ आग बरसती हो वह नरक की ज्वाला और खौलता हुआ पानी पीने को मिले इससे अधिक डराने वाली कौन सी चीज़ हो सकती है?

यह तो हुई सर्व साधारण की बात! रहे कुछ थोड़े से विद्वान्! वह सत्यता जानना चाहते हैं। उनके मन में स्वभावतः प्रश्न उठता है कि यह लालच और भय असली हैं अथवा कल्पित? जैसे हउआ। क्या स्वर्ग और नरक कोई देश विशेष हैं? क्या वह इसी जगत् में हैं या इसके बाहर? इस जगत् से कितनी दूर? क्या स्वर्ग और नरक इस समय भी विद्यमान् हैं? अथवा क़यामत के दिन अथवा उसके निकट बनाये जायँगे?

यदि इस समय हैं। और सज़ा और जज़ा (कर्मों के अशुभ या शुभ फल) का दिन होगा क़यामत। सृष्टि के आरम्भ हुये अब तक सहस्रों वर्ष बीत गये। अभी वह दिन नहीं आया। तो उन स्वर्ग और नरक में क्या हो रहा है ? हूरें (अप्सरायें) क्या कर रही हैं ? और गिलमाँ (लौंडे) क्यों बनाये गये हैं ? यदि यह कोई विशेष स्थान नहीं हैं और केवल लक्षणा है तो जब तक अलङ्कारों को दूर करके सरल भाषा में असली बात बताई न जावे, मूर्खों की मूर्खता को बढ़ाना और उनको बहकाना होगा। मुसल्मान मर्द भी हैं और मुसल्मान औरतें भी। पुण्यात्मा और ईश्वर-पूजक स्त्रियों के पुण्यात्मा और ईश्वर-पूजक पति तो बड़ी-बड़ी आँखों वाली हूरों से मित्रता करेंगे और यह पुण्यशीला और ईश्वर भक्त बीबियाँ ! (खुदा जाने इनके दिल पर कैसे बीतेगी ?)

इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक उन्नति के लिये आवश्यक है कि भौतिक इच्छाओं से विरक्ति उत्पन्न की जाय। यदि किसी मौमिन (ईमान लाने वाले मुसल्मान) ने इस दुनियाँ में भौतिक प्रलोभनों से केवल इसलिये परहेज़ किया कि इस प्रकार की चीजें स्वर्ग में मिलेंगी तो इच्छायें तो ज्यों की त्यों बनी रहीं। वास्तविक न सही काल्पनिक ही सही। जो हूरों की इच्छा करके इस जीवन में व्यभिचार से परहेज करता है वह मानसिक व्यभिचार (mental adultery) का तो दोषी हो ही जाता है। इस प्रकार के लालच और डर केवल क़ुरान तक ही परिमित नहीं हैं। और न हज़रत मुहम्मद साहेब के मस्तिष्क की कल्पना या घड़न्त है। अन्य धर्मों की पुस्तकों में भी ऐसे ही कल्पित स्वर्ग और नरक का चित्रण है। जो देश या काल की अपेक्षा से कुछ-कुछ भिन्न हो गया है। परन्तु उपनिषदों में जो भारतवर्ष के प्राचीन काल की आध्यात्मिक पुस्तकें समझी जाती हैं इस प्रकार के

मन मोहक प्रलोभनों का खण्डन और निषेध किया गया है। जैसे एक उपनिषद् है कठ। उसमें एक अध्यात्म का श्रद्धालु '*नचिकेता*' एक गुरु के पास जाता है और कहता है कि आप मुझे अध्यात्म का लोकोत्तर पाठ पढ़ाइये। गुरु जी पहले शिष्य की परीक्षा लेना चाहते हैं कि वस्तुतः यह लोक-सुख का इच्छुक है या अध्यात्म का। वह उसको कहते हैं कि 'ऐसे कठिन प्रश्न से क्या लाभ? मैं तुझको ऐसे साधन बता सकता हूँ कि तुझे लोक के सभी आनन्द प्राप्त हो जाये। बाग़ हों, झीलें हों, महल हों, सुन्दर ललनायें हों।' शिष्य उत्तर देता है कि इन नश्वर सुखों को लेकर मैं क्या करूँगा? मैं तो अमर जीवन का इच्छुक हूँ।' इसी प्रकार जब याज्ञवल्क्य विरक्त होकर सन्यासी होना चाहते हैं तो वह अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहते हैं कि मैं तो बन को जाता हूँ। तुम मेरे धन धान्य को संभालो और मौज करो। मैत्रेयी कहती हैं कि महाराज मुझे लौकिक सुख नहीं चाहिये। ऐसी वस्तुओं को लेकर मैं क्या करूँगी जो अमरत्व की प्राप्ति में बाधक है। इस पर याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को अध्यात्म का वास्तविक उपदेश देते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो प्रलोभन स्वर्ग के चित्रण द्वारा दिया गया है वह मनुष्य के आचरण को बिगाड़ता तो है उसका सुधार नहीं करता। हिन्दू धर्म के पुराणों में राजा इन्द्र और उसकी अप्सराओं का उल्लेख है। इसीने मुसलमान नवाबों के शासन काल में 'इन्द्र सभा' की नींव डाली। जिससे लोगों के सदाचार पर बुरा प्रभाव पड़ा। और क़ुरान के हूर और गिलमान का साधारण मुसल्मानों के दिल पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। अतः इस युग के मुसल्मान विद्वानों ने इस सार्वजनिक भावना को दूर करने की कोशिश की है। सर सय्यद अहमद लिखते हैं। 'बस, यदि बहिश्त की हकीकत यही बाग़ और नहरें

और मोती के और चाँदी सोने की ईंटों के मकान और दूध, व शराब और शहद के समुद्र और लज़ीज मेवे और खूबसूरत औरतें और लौंडे हों तो यह तो कुरान की आयतों और खुदा के वचनों के बिल्कुल विरुद्ध है।' सर सय्यद अहमद ने कुरान की दूसरी आयतों का प्रमाण देकर यह बताया है कि यह केवल उपमायें और अलङ्कार हैं। न कि 'बहिश्त की हक़ीकतें।' यदि सब मुसल्मान विद्वान् सर्व साधारण को इस भ्रांति के विरुद्ध आवाज़ उठावें तो स्वर्ग का जो कल्पित लालच और नरक का कल्पित और झूठा डर है वह दूर हो जाये। और लोगों की प्रवृत्ति शुभ आचरणों की ओर हो जाय।

कुछ लोगों की धारणा है कि नरक का भय और स्वर्ग का प्रलोभन, चाहे वह झूठा और बनावटी ही क्यों न हो सर्व साधारण को बहुत से पापों से बचाता है। जैसे 'हउआ' के डर से बच्चे रोना बन्द कर देते हैं। परन्तु हमको याद रखना चाहिये कि झूठ या कल्पना की नींव पर सदाचार और अध्यात्म का भवन खड़ा नहीं किया जा सकता। और यदि खड़ा किया जायगा तो अतिशीघ्र भयावह सिद्ध होगा। नरक और स्वर्ग के विपत्ति-जनक विचारों ने लोगों के दिलों में भ्रांति उत्पन्न कर दी है। ग़ालिब (उर्दू के प्रसिद्ध कवि) ने कहा था :—

हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन,
दिल के बहलाने को 'गालिब' यह खयाल अच्छा है।

दिल के बहलाने के लिये। किसके दिल के ? केवल उन्हीं के जो अन्ध श्रद्धा के शिकार हैं और सत्य के प्रकाश में आने से घबराते हैं। यदि यह ठीक है कि—

रास्ती मूजिबे रज़ाय खुदास्त !
(सत्य ईश्वर की प्रसन्नता का साधन है)

तो झूठ को ईश्वर की प्रसन्नता का बाधक मानना पड़ेगा। कल्पित भय और झूठा लालच दिलाने वाले लोग स्वयं भी झूठ बोलते हैं और दूसरों को झूठ बोलने की प्रेरणा करते हैं। क़ुरान शरीफ़ भी तो कहती है कि 'मिथ्या कल्पना सचाई के सामने काम नहीं आती।'* (अल् नज्म आयत २८)

———

* इन्नज़् ज़न्न ला युग़्नी मिनल् हक़्क़े शैयन्। (नज्म २८)

अध्याय २५

सिफ़ारिश

जिस प्रकार नरक और स्वर्ग की झूठी और कल्पित कहानियाँ सदाचार पर बुरा प्रभाव डालती हैं उसी प्रकार का सिफ़ारिश का सिद्धान्त भी है। प्रश्न यह नहीं हैं कि शिफ़ायित (सिफ़ारिश) और शफ़ीअ (सिफ़ारिश करने वाला) शब्दों के धात्वर्थ क्या हैं ? प्रश्न यह है कि मुसल्मान जनता के मस्तिष्क में शिफ़ायित (सिफ़ारिश) की क्या तसवीर खिंची हुई है। सामान्य मुसल्मान समझता है कि यदि मैं इस्लाम पर ईमान लाता हूँ तो क़यामत के दिन हज़रत मुहम्मद साहेब अपनी उम्मत (अनुयायियों) की सिफ़ारिश खुदा से करेंगे और खुदा मुसल्मानों को स्वर्ग में भेज देगा। और काफ़िरों को नरक में। चाहे मुसल्मानों ने कुछ पाप भी किये हों और चाहे काफ़िरों में कुछ अच्छी बातें भी क्यों न हों। कहा जाता है कि एक अवसर पर एक मुसल्मान नेता ने कहा था कि एक पापी और दुराचारी मुसल्मान महात्मा गाँधी से अच्छा है। संभव है कि मुसल्मान विद्वानों तथा धर्म के नेताओं का ऐसा विचार न हो, तथापि जनता की यही धारणा है और मुसल्मान विद्वानों की ओर से इस धारणा के विरुद्ध कोई यत्न नहीं किया जाता। यह तो है कि कभी कभी दो एक जाति के हित चिन्तक लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित कर देते हैं। परन्तु ऐसे लोग तो विरले ही हैं। मुसल्मान जनता तो इन पद्यों पर विश्वास रखती है :—

कहता था .खुदा दिल में न घबराये मुहम्मद ।
बख्शूंगा उसी को जिसे फ़रमाये मुहम्मद ॥

अथवा

अल्लाह के पल्ले में वहदत के सिवा क्या है ?
लेना है सो ले लेंगे हम अपने मुहम्मद से ॥

इस सब के लिये नाम बदनाम होता है हज़रत मुहम्मद साहेब का या कुरान था। सत्य यह है कि यह दोष है केवल मुसल्मान विद्वानों का जिन्होंने जनता को धोखे में डाला और अब भी डाल रहे हैं। कुरान शरीफ़ में तो साफ़ लिखा है कि 'जिन्होंने बुरे कर्म किये उनको बुरा और जिन्होंने शुभ कर्म किये उनको अच्छा बदला दे।'* (सूरत नज्म आयत ३१)

तनिक 'सिफ़ारिश' (शिफ़ायित) के विषय में कुरान शरीफ़ से पूछिये :—

(१) 'डरो उस दिन से जब कोई किसी के काम न आवें और न किसी की सिफ़ारिश स्वीकार की जाय। और न किसी से किसी प्रकार का बदला (मुआविज़ा) अंगीकार किया जाय। और न लोग किसी अन्य प्रकार से सहायता प्राप्त कर सकें।'† (बक़र-४८)।

(२) 'किसी की सिफ़ारिश लाभ न देगी।'‡ (बक़र १२३)

---

* लि यजज़िय ल्लज़ीन असाऊ बिमा अमिलू। व यजज़ि यल्लज़ीन अहसनू बिल् हुस्ना (नज्म-३१)

† वत्तक़ू योमन् ला तजज़ी नफ़्सुन् अन् नफ़्सिन् शैयन् व ला युक़् बिलो मिन्हा शफ़ाअतुन् व ला यूख़ज़ो मिन्हा अदलुन् वा लाहुँ युन्सरून। (बक़र ४८)

‡ ला तन्फ़उहा शिफ़ाअतुन्। (बक़र १२३)

(३) न दोस्ती और न सिफ़ारिश।* (बक़र २५४)
(४) कौन है जो उसको सिफ़ारिश कर सके।† (बक़र २५५)
(५) कौन सिफ़ारिश कर सकता है।§ (यूनस ३)
(६) वह सिफ़ारिश न कर सकेंगे।¶ (मरियम ८७)

यहाँ हमने वह आयतें प्रस्तुत करदी हैं जिनमें 'शफ़ाअत' का का शब्द साफ़-साफ़ आया है। यों तो कुरान में ऐसी आयतों की कमी नहीं है जिनमें साफ़ लिखा है कि केवल कर्मों का दण्ड या शुभफल होगा और किसी प्रकार की सहायता या सिफ़ारिश से लाभ न होगा। ऊपर दी हुई आयतों में कहीं-कहीं 'इल्ला बि इज़्नही' आया है। इसका अर्थ यह है कि 'इन अवसरों को छोड़ कर जब अल्लाह का हुक्म हो'। परन्तु इसका यह कदापि अर्थ नहीं कि बिना कर्मों की अपेक्षा के ख़ुदा किसी को किसी की सिफ़ारिश का हुक्म देगा। यदि न्याय है तो सिफ़ारिश नहीं और यदि सिफ़ारिश है तो न्याय नहीं।

हज़रत मुहम्मद साहेब भी कहीं यह दावा नहीं करते कि मैं कयामत के दिन किसी की सिफ़ारिश कर सकूँगा। वह तो स्पष्ट कहते हैं कि मैं न जादूगर हूँ न पागल हूँ। न फ़रिश्ता हूँ, न शफ़ीय हूँ। मैं तो ख़ुदा के हुक्मों को तुमको बता रहा हूँ कि ख़ुदा यह पसन्द करता है। कुरान शरीफ़ में बहुत से स्थलों पर आया है कि ख़ुदा के हुक्मों को सुना देने के बाद मुहम्मद साहेब का उत्तरदातृत्व समाप्त हो जाता है। मनुष्य अपने कर्म करने में स्वतन्त्र है। जैसा करेगा वैसा भरेगा। कोई किसी दूसरे का

---

* ला ख़ुल्लतुन् व ला शफ़ाअतुन्। (बक़र २५४)
† मन् ज़ा अल्लज़ी यशफ़उ इन्दहू। (बक़र २५५)
§ मा मिन् शफ़ीइन्। (यूनस ३)
¶ ला यम्लिकूनल् शफ़ाअत। (मरियम ८७)

बोझ न उठायेगा। मुहम्मद साहेब की विनम्रता तो कहीं-कहीं यहाँ तक बढ़ गई है कि दूसरों की सिफ़ारिश करना तो दूर रहा वह अपने कर्मों के लिये भी डरते हैं। देखिये :—

(१) 'मैं स्वयं डरता हूँ कि मुझ से पाप हो जाय तो बड़े दिन कष्ट भोगूंगा।* (सूरत यूनस आयत १५)

(२) हो नहीं सकता कि पैगम्बर खयानत कर सके। अर्थात् किसी पापी की सिफारिश कर सके।† (आल अमरान १६२)

हम अपने इस कथन की पुष्टि में डाक्टर गुलाम जैलानी बर्क की पुस्तक 'दो कुरान' से एक युक्ति-युक्त उद्धरण प्रस्तुत करते हैं :—

'जिस प्रकार वैद्य रोगी के लिये 'शफ़ीय' बनता है बशर्ते कि रोगी वैद्य की आज्ञाओं का अनुपालन करे इसी प्रकार रसूल जाति के व्यक्तियों का 'शफीअ' होता है बशर्ते कि लोग उसकी आज्ञाओं का अनुपालन करें। आजकल लगभग हर मुसल्मान झूठ बोलने फरेब देने, दाव खेलने और दुनियाँ भर की बद-कारियों के बाद भी शफ़ायत के नशे में चूर फिरता है। हमारे कौल :—

१—शफ़ाअत करेगा मुहम्मद हमारी।
मैराज में हक ने नबी से कहा, तू और नहीं मैं और नहीं।
उम्मत को मैंने बख्श दिया, तू और नहीं मैं और नहीं।

और इसी प्रकार के दूसरे सुला देने वाले गीत सुना सुनाकर जाति को अवनति और दुर्भाग्य के गहरे गर्त में पहुँचा रहे हैं।

---

* इन्नी अखाफ़ो इन् असैतु रब्बीअ अज़ाब योमि अजीमतिन्। (यूनस १५)

† माकान लि नबीइन् अय्यँ युगल्ल। (आल अमरान १६२)

दूसरी ओर हमारे उपदेशक दुराचारियों, दुर्भाषियों और दुष्ट प्रवृत्तियों के पाप बखशवा कर* सारी कौम को मिथ्यामानी, विलासी, बे-हिम्मत और दुनियाँ का कलंक बना रहे हैं।'

जब एक मुस्लिम जाति का हितैषी अपनी जाति को 'शफाअत के सिद्धान्त' के विषय में असन्मार्ग पर जाते हुये देखकर जी में कुढ़ता है और अपनी जाति को इस मत के त्यागने का उपदेश देता है तो हर बुद्धिमान मुसल्मान को इस विषय पर ध्यान देना चाहिये।

---

* 'शफाअत' अरबी शब्द है। इसका धात्वर्थ है 'चंगा' या 'नीरोग' होना। चालू अर्थ है सिफारिश करके गुनाह बखशवा देना। बर्क महोदय का कहना है कि रसूल को हम धात्वर्थ में शफीय कह सकते हैं। अर्थात् जैसे हकीम रोगी को उसी अवस्था में नीरोग कर सकता है कि रोगी हकीम के बताये मार्ग पर चले इसी प्रकार रसूल भी अपने अनुयायियों को स्वर्ग-प्राप्ति का साधन हो सकता है। यदि लोग रसूल के बताये धर्म का पालन करें। चालू अर्थ यह है कि इस्लाम पर ईमान लाओगे तो मुहम्मद खुदा से गुनाह बखशवा देंगे और स्वर्ग मिलेगा। बर्क महोदय कहते हैं कि यह मिथ्या है, फरेब है। धोखा है। इससे जाति का नाश हो रहा है। बात तो ठीक है। परन्तु 'शफाअत' शब्द ऊपर दी हुई आयतों में आया है। वहाँ तो 'शफाअत' का चालू अर्थ (सिफारिश) ही है। बर्क साहेब का इस ओर ध्यान नहीं गया।

अध्याय २६

क़यामत का सत्य अर्थ

मनुष्य के कर्म और ईश्वर की ओर से उनका बुरा या भला फल ! इस प्रतिपत्ति का सम्बन्ध स्वर्ग और नरक से, अथवा सिफ़ारिश के विषय से अथवा क़यामत के विधान से है नहीं परन्तु मान लिया गया है और इस कल्पित और मिथ्या लालच और भय ने आचार के जगत् में बहुत सी अनिष्ट बातें उत्पन्न करदी हैं। मुसल्मान विद्वान् भी इस बुराई का अनुभव करते हैं और संकेत द्वारा या परोक्ष रूपेण जनता को चेतावनी भी देते रहते हैं। परन्तु जनता के विचारों में कोई अच्छा परिवर्तन नहीं होता।

क़यामत के ठीक अर्थ समझने के लिये अरबी व्याकरण तो कुछ सहायता करता है परन्तु कुरान शरीफ़, हदीसों या भाष्यों से तो उलझी हुई डोर और उलझ जाती है। अरबी व्याकरण के अनुसार 'क़यामत' का अर्थ है 'खड़ा होना'। और 'योमे क़यामत' का अर्थ है 'खड़े होने का दिन'। हज़रत मुहम्मद साहेब ने इस शब्द को अपने निज मस्तिष्क से नहीं गढ़ा। युहूदियों, ईसाइयों, और इसी प्रकार के दूसरे धर्मों के ग्रन्थों में तथा कथानकों में 'क़यामत' का वर्णन आता है। परन्तु यह पता नहीं चलता कि कौन उठेगा ? कैसे उठेगा ? और क्यों उठेगा ?

जनता की धारणा है कि मुर्दे कब्रों में से उठ खड़े होंगे। वह सीधी सी बात नहीं समझ सकते कि मरने पर आत्मा शरीर से निकल जाता है। (और कब्रों में जीवात्मा नहीं गाढ़े जाते

अपितु उनके पार्थिव शरीर गाड़े जाते हैं। कैसे संभव हो सकता है कि जीवात्मा क़ब्रों में से उठकर खड़े हो जायँ? जीव मरने के पश्चात् कहाँ जाता है। जागता है या सोता है? कुछ लोगों ने सोचा कि लाशों की हड्डियाँ क़यामत के दिन क़ब्रों में से उठेंगीं। और जब लोगों ने इस झूठी बात पर सन्देह किया तो उनको चुप करने के लिये कह दिया गया कि क्या ईश्वर के लिये यह कठिन चीज है? जिसने ज़मीन और आसमान बनाये जिसने इन्सान के शरीर को नुतफ़े (वीर्य) से उत्पन्न किया वह क्या मुर्दा हड्डियों को जिला कर खड़ा नहीं कर सकता? इस प्रकार के उत्तर तो हर एक अतथ्य घटना के लिये दिये जा सकते हैं। इससे ईश्वर का विधान-शून्य (बे उसूलापन) होना ही प्रकट होता है।

कुछ मन चले लोग यह भी कह देते हैं कि शरीर के जिन अवयवों से हम पाप करते हैं वही हमारे विरुद्ध साक्षी देंगे। हमारी जीभ कहेगी कि अल्ला मियाँ इसने मेरे द्वारा झूठ बोला था। इत्यादि इत्यादि! परन्तु यह तो बच्चों के दिल को बहलाने वाले किस्से हैं। यदि अंगों की साक्षी की आवश्यकता हो तो ईश्वर का ज्ञान और किरांमेकातिबेन* का लेख क्या अर्थ रखता है? क्या ईश्वर कोई ऐसा निर्बल न्यायाधीश है जो पुलिस की रिपोर्ट और पाप कर्म के साधन तलवार बन्दूक को खोजता फिरे?

क़यामत का जो चित्र खींचा जाता है वह जगत् के संहार

---

* कहते हैं कि किरांमे-कातिबेन दो फरिश्ते हैं जो हर मनुष्य के दायें और बाँयें कन्धे पर बैठे हुये उसके कर्मों का लेखा रखते हैं। इज् यतलक़्क़ल् मुतलक़्क़ियान् अनिल् यमीने व अनिश्शिमाले क़यीदुन्। (क़ाफ़ १७)

का है। उसमें खड़ा होने या खड़ा करने का कोई सामान नहीं है। फिर 'क़यामत' शब्द का अन्तिम दिवस से सम्बन्ध जोड़ना एक उलझन है जो सुलझनी चाहिये।

हमारा विचार है कि यह उलझन वैदिक साहित्य की प्राचीन पुस्तकों से सुलझ सकती है। वैदिक धर्म का यह सिद्धान्त है :—

(१) वर्तमान जगत् ईश्वर की सबके पहली रचना नहीं है। ईश्वर अनादि और अनन्त है। उसकी रचना का व्यापार भी अनादि और अनन्त है।

(२) जैसे दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन होता है इसी प्रकार सृष्टि का भी एक दिन होता है और एक रात ! दिन का पारिभाषिक नाम है ब्रह्म दिन और रात का ब्रह्मरात्रि ! जिस प्रकार सौर्य दिवस और सौर्य रात्रि क्रमशः होते रहते हैं इसी प्रकार ब्रह्म दिन के पीछे ब्रह्म रात्रि और ब्रह्म रात्रि के पीछे ब्रह्म दिन होता है। सृष्टि का आरम्भ ब्रह्म दिन से होता है और समाप्ति ब्रह्मरात्रि से। इस प्रकार 'क़यामत का दिन' वह दिन है जब सृष्टि का आरंभ होता है। न कि वह जिस दिन सृष्टि का अन्त हो। ब्रह्म दिन की समाप्ति पर प्रलय होती है। प्रलय का अर्थ है कार्य का अपने कारण में लय हो जाना। जैसे मिट्टी से घड़ा बनता है। यह सृजन है। घड़ा बनकर खड़ा हो गया। यह घड़े की '*क़यामत*' है। इसी प्रकार सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आकाश आदि बनकर खड़े हो जाते हैं। कुरान शरीफ़ में आता है—'(कुन् फ़ यकून) ईश्वर ने आज्ञा दी और सृष्टि बनकर खड़ी हो गई।' वस्तुतः यही क़यामत का दिन था। 'कुन् फ़ यकून' के अर्थ समझने में भी लोगों ने भूल की है। 'कुन् फ़ यकून' (कहा 'होगा' और हो गया) का यह अर्थ नहीं है कि

ईश्वर केवल आज्ञा मात्र से बिना उपादान कारण के या बिना किसी रचना-क्रम के सृष्टि को रच देता है। ऐसा तो ईश्वर ने न कभी किया न अब कर रहा है। ईश्वर की आज्ञा से बादल बनते हैं। ईश्वर आज्ञा देता है 'बादल बन जा' और बादल बन जाता है। परन्तु एक क्रमानुसार और एक नियत समय में। समुद्र से भाप बनने और बादल के बरसने तक कितना कारण-कार्य की क्रम रहता है और कितना समय लगता है? ईश्वर ने कहा, 'हीरा बन जा'। और हीरा बन जाता है 'परन्तु लाखों वर्षों में' इसी प्रकार ब्रह्मदिन के पूर्व ईश्वर सृष्टि को उपादान प्रकृति से क्रमशः उत्पन्न करता है। गर्भ में वीर्य पड़ते ही मनुष्य नहीं उत्पन्न हो जाता। वीर्य सिंचन से पूर्ण देह के बनने तक कितने दर्जे तै करने पड़ते हैं। बहुत से लोग समझते हैं कि अरबी का शब्द 'ख़ालिक़' केवल उसी के लिये आता है जो 'उपादान कारण' के बिना चीज़ों की रचना केवल आज्ञा मात्र से करदे। कुरान शरीफ़ की साक्षी इसके विरुद्ध है। कुरान शरीफ़ में क्रिया 'ख़लक़' का प्रयोग बहुत स्थलों पर हुआ है। और उसके साथ 'उपादान' का भी उल्लेख है। देखिये:—

(१) इन्सान *उछलते पानी में* पैदा हुआ है।* (तारिक ६)

(२) तूने मुझे *आग से* बनाया और उसको मिट्टी से।† (ऐराफ़ १२)

(३) हमने तुमको *मर्द और औरत* से पैदा किया।‡ (अल् हिजरात १३)

---

* ख़ुलिक़ मिम्माइन् दाफ़िक़िन्। (तारिक ६)

† ख़लक़्तनी मिन् नारिन् व ख़लक़्तहू मिन् तीनिन्। (ऐराफ़ १२)

‡ ख़लक़्नाहुँ मिन् ज़क़रिंन व उन्सा। (हिजरात १३)

(४) हमने उसको वीर्य के कण से उत्पन्न किया।* (यासीन ७७)

(५) उसने जिन्नों को आग की लपक से पैदा किया।† (अर्रहमान १६)

यहाँ हमने विषय के बीच में पाँच उदाहरण दिये हैं। इस बात की पुष्टि में कि अरबी का शब्द 'ख़लक़' स्वयं इस बात को सिद्ध नहीं करता कि ईश्वर उपादान कारण के बिना अभाव से भाव उत्पन्न कर देता है। यह है तो शब्द विवाद। परन्तु मुसल्मान विद्वानों ने शब्द 'ख़लक़' के आधार पर जनता में यह भ्रान्ति फैला रक्खी है कि क़ुरान शरीफ़ में ख़ुदा के लिये ख़ालिक़ या 'ख़लक़ना' शब्दों का प्रयोग मात्र ही इस बात का प्रमाण है कि सृष्टि रचना में ईश्वर किसी 'उपादान कारण' का प्रयोग नहीं करता। और जो कुछ बनाना है वह *'अभाव से भाव'* ही उत्पन्न करता है। तथा बिना किसी क्रम से क्षण में उत्पन्न कर देता है। माली से कहो कि आम का फल लगा दो। तो वह कई वर्षों में लगा पायेगा। जादूगर से कहो कि आम का फल लगा दो तो वह तुरन्त तुम्हारे कमरे में एक आम ला उपस्थित करेगा। परन्तु हर मनुष्य जानता है कि जादू केवल हाथ का खेल है। उसकी कोई वास्तविकता नहीं। इसी प्रकार ईश्वर भी क्षण भर में उपादान प्रकृति के बिना किसी पदार्थ की रचना नहीं करता। ईश्वर जैसा सृष्टि के आरम्भ में ख़ालिक़ (रचयिता) था वैसा ही आज भी 'ख़ालिक़' है। वह उपादान कारण का भी प्रयोग करता है और काल का भी।

अब हम मुख्य प्रसंग की ओर आते हैं, 'क़यामत' सृष्टि का

---

* ख़लक़नाहु मिन नुत्फ़तिन्। (यासीन ७७)

† ख़लक़ल्जान्ने मिम्मारिजिन् मिन् नारिन्। (अर्रहमान १६)

प्रातःकाल है, सायंकाल नहीं। मुसल्मान विद्वानों ने यहूदियों और ईसाइयों की कहानियों को सुनकर 'सायंकाल' के लिये प्रातः काल का वाचक शब्द प्रयुक्त कर लिया। जिसको 'प्रलय' कहना चाहिये था उसको 'क़यामत' कह दिया। जब एक बार भूल हो गई तो प्रलय के समय जो दशा होनी चाहिये थी उसका संबंध 'क़यामत' के साथ जोड़ दिया। अर्थात् कार्य जगत् का अपने मूल कारण (प्रकृति) में लय हो जाना। जब शाम होती है और रात्रि समीप होती है तो सूर्य अस्त होने लगता है। उसको यदि 'सूर्योदय' कहकर पुकारें तो कहेंगे कि हे संसार के मनुष्यों 'सूर्य उदय हो रहा है। डरो, भयभीत हो।' एक बुद्धिमान् पुरुष कहेगा कि 'सूर्योदय मत कहो 'सूर्यास्त' कहो। इसी प्रकार जिसको तुम 'क़यामत' कहते हो वह 'प्रलय' का समय है। 'क़यामत' अर्थात् उत्थान या खड़े होने का नहीं।

अब प्रश्न यह है कि क्या प्रलय के पश्चात् फिर क़यामत (उत्थान) होगी ? वेद कहता है 'हाँ ! होगी'। जब रात बीत जायेगी तो सूर्य फिर उदय होगा। समस्त सृष्टि जो स्वप्न की अवस्था में अपने कारण रूप में लुप्त हो गई थी वह अगले ब्रह्म-दिन अर्थात् प्रातः काल को फिर बनकर खड़ी हो जायगी। यह क़यामत (उत्थान या खड़े होने) का दिन होगा। वृक्ष बनकर खड़े हो जायेंगे। पृथ्वी और आकाश बन जायँगे। मनुष्य और इतर प्राणियों के शरीर बन कर खड़े हो जायेंगे। यह होगा 'क़यामत का शुभ दिन'। पिछले ब्रह्म दिन की समाप्ति पर जीवों ने जो कर्म किये थे अच्छे या बुरे। उन्हीं के फल स्वरूप नये शरीर दिये जायँगे। इसको यदि आप चाहें तो 'महशर' (इकट्ठे उठ खड़े होने का दिन) कह सकते हैं परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि *अनन्त* स्वर्ग या *अनन्त* नरक मिलेगा। स्वर्ग और नरक अनन्त नहीं हो सकते।

एक प्रश्न और है। प्रलय और क़यामत का सम्बन्ध जीवों के कर्मों से नहीं है। इसका सम्बन्ध रचना-संविधान से है। जो चीज़ बनती है वह बिगड़ती है। बनी हुई सृष्टि के लिये एक दिन ऐसा भी होना चाहिये जब कार्य कारण में लय हो जाय। यदि सभी मनुष्य पुण्यात्मा होते तो भी प्रलय होती। प्रलय इसलिये नहीं हैं कि जीवों के कर्मों का फल देना है। अपितु इसलिये है कि प्रत्येक 'आरंभ' के लिये 'अन्त' है। जीवों के कर्मों का फल तो सदा ही दिया जाता है। छोटे कर्म का छोटा फल और बड़े कर्म का बड़ा फल।

मुसल्मान विद्वानों ने यह मिथ्या भावना भी फैला रक्खी है कि जीवों के कर्मों का निर्णय 'कयामत के दिन' होगा। कुरान शरीफ़ की कई आयतें भी इसी भाव को प्रकट करती हैं। परन्तु क़ुरान शरीफ़ में चेतावनी के रूप में जो कथानक दिये हुये हैं उनसे यह बात सिद्ध नहीं होती। फ़िरऔन, आद, समूद आदि क़ाफ़िरों ने ईश्वर की आज्ञाओं को भंग किया। यह उनके बुरे कर्म थे। खुदा ने इनको दण्ड देने के लिये क़यामत के दिन की प्रतीक्षा नहीं की। और उनको नष्ट कर दिया। ऐसे उदाहरणों से क़ुरान शरीफ़ भरा पड़ा है। आज कहाँ हैं आद, समूद आदि के जीवात्मा ? यदि कहो कि सर्वथा नष्ट हो गये और उनका अभाव हो गया (वह विद्यमान नहीं हैं) तो बुरे कर्मों के कारण जो यातनायें होतीं उनसे छुटकारा हो गया। आश्चर्य है कि मुसल्मान विद्वान् इन सीधी साधारण बातों की क्यों उपेक्षा करते हैं। क्या विचारे छोटे-छोटे अनपढ़ मूर्तिपूजक काफ़िरों के लिये ही नरक की आग है ? और इतने बड़े अपराधियों के लिये नहीं ?

सारांश यह है कि कर्मों का सिद्धान्त जो क़ुरान शरीफ़ की आयतों से सिद्ध होता है यही है कि जीवों के कर्मों का दण्ड

अपराध के परिमाण और तथ्यता के अनुसार दिया जाय। जिससे लोग डरें और शिक्षा लें और पग-पग पर संभलने का यत्न करें। जब तक स्वर्ग और नरक तथा क़यामत की कल्पित भ्रांतियाँ रहेंगी मानव जाति के सदाचार पर उत्कृष्ट प्रभाव न पड़ेगा। गौण रीति से डराया धमकाया जा सकता है। परन्तु रोग की यह वास्तविक चिकित्सा नहीं है।

———

तौहीद (ईश्वरैक्यवाद) का दीपक

हमने अब तक इस्लाम धर्म के जिन दीपकों का उल्लेख किया है उनमें सब से प्रबल दीपक 'तौहीद' है। इस पर समस्त इस्लाम जगत् को अभिमान है। वस्तुतः 'तौहीद' है ही ऐसा सिद्धान्त जिस पर सम्पूर्ण मानव जाति की उन्नति का आधार है। ईश्वर एक है। एक हां। कई ईश्वर नहीं। कई ईश्वरों के मानने वाले न इस लोक में उन्नति कर सकते हैं न परलोक में। कुरान शरीफ़ में इस बात का पदे पदे उल्लेख है। हज़रत मुहम्मद साहेब के सुधार-सम्बन्धी जीवन का आरंभ ही यहीं से होता है। यदि हज़रत मुहम्मद साहेब और मुसल्मान विद्वान् तौहीद (एक-ईश्वर-वाद) की पुष्टि करने और मूर्ति पूजा के उन्मूलन में सफल हो जाते तो केवल एक ही यह बात जगत् की कृतज्ञता के लिये पर्याप्त थी। परन्तु दुर्भाग्यवश अरब का वातावरण 'तौहीद' के अनुकूल न पड़ा। और जिस पौधे को मुहम्मद साहेब ने बड़े उत्साह के साथ लगाया वह अरब के रेतीले मैदान की गर्मी और जलती लूओं की झुलस से उत्पन्न होते ही मुरझा गया।

कुछ तो गुल खिल कर बहार अपनी, सबा, दिखला गये।
हसरत उन गुंचों पै है जो बिन खिले मुरझा गये।

हमारी यह निराशा-मिश्रित स्पष्टवादिता विचारणीय है। क्योंकि मुसल्मानों का दावा है कि तौहीद के झंडाधारी केवल यही हैं। और इन्होंने मूर्ति पूजा का नाश कर दिया। हमको

यह दोनों बातें दिखाई नहीं पड़ती। नारे तो बहुत सुनते हैं। परन्तु वास्तविक अवस्था से इनकी पुष्टि नहीं होती।

स्मरण रहे कि 'तौहीद' एक मानसिक प्रवृत्ति है। ईश्वर का अस्तित्व उन इन्द्रिय-ग्राही अनुभवों में से नहीं हैं जिसको पाँच इन्द्रियों से जाना जा सके। हमारे भौतिक शरीर के भौतिक गोलक तो बाहरी भौतिक चीजों के भौतिक गुणों को जानने के लिये ही हैं। ईश्वर का अस्तित्व तो बुद्धि से ही जाना जा सकता है। इसलिये हम कहते हैं कि 'तौहीद' कोई ऊपरी चीज़ नहीं है अपितु मानसिक है। मानसिक भी ऐसी जो पूर्णतया कल्पना-शून्य हो। क्योंकि बौद्धिक ज्ञान में यदि थोड़ी सी भी कल्पना मिल जाती है तो उत्तम से उत्तम भोजन भी विषैला बन जाता है। केवल इतना मात्र कह देने का नाम 'तौहीद' नहीं है कि खुदा एक है। कई खुदा नहीं। खुदा की संख्या से हम को इतना प्रयोजन नहीं जितना खुदा के गुणों से है। ईश्वर के गुणों के आधार पर ही हम यह कह सकते हैं कि ईश्वर एक ही है। क्यों-कि अमुक गुणों वाले कई ईश्वर नहीं हो सकते। हम देखते हैं कि मुसल्मान विद्वानों ने 'तौहीद' के साथ ईश्वर के गुणों पर पूरा विचार नहीं किया। यों तो खुदा के लिये कुरान शरीफ़ में सौ के लगभग नाम आये हैं परन्तु उनके अर्थों की मीमांसा नहीं की गई। ईश्वर देहधारी (साकार) है या अभौतिक (निराकार)? सब स्थानों पर विद्यमान है या केवल एक स्थान पर? अर्थात् केवल स्वर्ग में? सृष्टि को रचना किसके हित के लिये करता है? इत्यादि।

मुसल्मान जनता की यह धारणा है कि ईश्वर अर्श (आसमान) पर है। हजरत मुहम्मद साहेब मैराज में उससे मिलने गये थे। बुराक़ नामी घोड़े पर चढ़कर गये थे। शीराज़ (ईरान) के प्रसिद्ध कवि सादी ने लिखा है :—

सवारे जहाँगीर मकरां बुराक़।
कि बिगुज़िश्त अज़ क़सरे नीली खाक़॥

हदीसों और भाष्यों में इसके सम्बन्ध में कहानियाँ हैं और यद्यपि कुछ थोड़े से विद्वान् इसको उपमा मानते हैं परन्तु वह भी यह यत्न नहीं करते कि सर्वसाधारण में फैली हुई भ्रांति को दूर करके उपमाओं का स्पष्टीकरण जनता के समक्ष कर दें। इस का परिणाम यह होता है कि मूर्तिपूजा किसी न किसी रूप में बनी रहती है। मुसलमान विद्वानों ने '*मूर्तिपूजा*' का विरोध करने के बहाने *मूर्तियों* का विरोध किया। और मूर्ति-भंजक पद पर गर्व करते रहे। उन्होंने यह नहीं समझा कि तौहीद-परस्ती (एक-ईश्वर-पूजा) के शत्रु मूर्तियाँ नहीं हैं अपितु मूर्तियों की 'पूजा' है। और केवल मूर्तियों को तोड़ने से मूर्ति पूजा नहीं जा सकती। तौहीद की शत्रु केवल पत्थर की पूजा ही नहीं है। सितारों की पूजा, वृक्षों की पूजा, नदियों की पूजा, पहाड़ों की पूजा, मनुष्यों की पूजा, क़बरों की पूजा, यह सब पूजायें ईश्वर-पूजा के मार्ग में रुकावट हैं। जो मनुष्य सूर्य की उपासना करता है उसकी सूर्य-पूजा छुड़ाने के लिये सूर्य का मिटा देना कहां तक ठीक होगा? क्या गंगा और यमुना के पूजकों को पूजा छुड़ाने के लिये गंगा और यमुना को सुखा देना चाहिये? या विंध्याचल की पूजा के विरोध में विंध्याचल को उखाड़ फेंकना चाहिये? वस्तुतः इस्लामी एक-ईश्वर-वादियों ने मूर्तियों के तोड़ने की आज्ञा देकर साधारण लड़ाकुओं को उभार दिया। कि वह धन के लालच से हिन्दुओं को बरबाद कर दें। वह बुत परस्ती को बन्द नहीं करा सके। वाराणसी के मन्दिर के एक भाग को तोड़ देना मुग़ल सम्म्राट् औरङ्गजेब के लिये सुगम था परन्तु मूर्तिपूजा तो ज्यों की त्यों बनी रही। इसका कारण यह है कि तौहीद-परस्ती (एक-ईश्वर-पूजा) की पुष्टि में और बुत परस्ती के विरोध में जो कोशिश की

गई उसमें मौलिक भूल थी और वह भूल आगे चलकर दुष्परिणाम उत्पन्न करती।

खिश्ते अव्वल गर निहद मैमार कज।
ता सुरय्या मीरवद दीवार कज॥

पहली ईंट धरी जो टेढ़ी। पूरी गई भीत सो टेढ़ी।

वह टेढ़ापन कहाँ है? जरा सोचिये।

आपने मूर्तियों को तो हटा दिया। परन्तु मूर्तिपूजा की सहायक क्रियाओं पर हाथ नहीं लगाया।

(१) पहली सहायक क्रिया है *सिजदा* (सिर झुकाना)। जिस प्रकार मुसल्मान नमाज़ पढ़ता है। घुटने टेकता है। झुकता है। सिजदा करता है। यह सब क्रियायें मूर्तियों के सामने की जाती हैं। जो ईश्वर हमारे हृदय के भीतर है उसके सामने झुकने का क्या अर्थ? समस्त मूर्ति पूजकों के मन्दिरों में उसी प्रकार से पूजा की जाती है। भेद केवल इतना है कि मुसल्मान सिजदा करने वाले के सामने मूर्ति नहीं होती परन्तु मूर्तिपूजा का विधान तो वैसा ही है। जब भारतवर्ष में वैदिक युग में मूर्ति पूजा न थी तो लोग योग द्वारा अपने अन्तःकरण में ईश्वर की भावना करते थे। किसी के सामने झुकते नहीं थे। वेदों में बहुधा कहा है कि नदियों के किनारे या पहाड़ों के समीप जहाँ प्राकृतिक दृश्य अपने पूरे जोबन पर दिखाई पड़ें आसन लगा कर बैठ जाओ और मन में ईश्वर का भजन करो। उस युग में न मूर्तियों के मन्दिर थे न सिजदा। न मस्जिद! मूर्तिपूजकों के मन्दिर तो पीछे बने। उस समय हर स्थान जहाँ पर मनुष्य ईश्वर का स्मरण करे उपासनालय था। समस्त संसार अल्लाह का घर था। उसका कोई विशेष घर न था। काबा भी फलतः बुतख़ाना (मूर्तियों का मन्दिर) ही था। जब आपने मस्जिदें

बनाई और काबे की तरफ़ मुँह करके सिजदा किया तो मूर्ति पूजकों की क़रीब क़रीब सारी नक़ल उतार दी।

(२) तवाफ़ (परिक्रमा)—हिन्दुओं के मन्दिरों में परिक्रमा करने की प्रथा है। काबे की भी उसी प्रकार की परिक्रमा होती थी। क्योंकि जब काबा उपासनालय था और उसकी मूर्तियाँ उपास्य थीं तो उनकी परिक्रमा भी आवश्यक हुई। मुसल्मानों ने काबे की परिक्रमा करके उस मूर्ति पूजा की प्रथा को बनाये रक्खा।

(३) संग असवद—यह एक काला पत्थर है जो काबे के भीतर है और दुनियाँ भर के हज करने वाले (हाजी लोग) उसका मान करते और चुम्बन करते हैं। हदीस है कि संग असवद के छूने और चूमने से पापियों के पाप छूट जाते हैं। यह पत्थर आदि में सफ़ेद और चमकीला था। पापियों के स्पर्श से काला और प्रकाश-हीन हो गया। (देखो 'तारीखुल् अंबिया' नबियों का इतिहास सन् १२८१, शीर्षक जिक्रे इबराहीम)। यह प्रथा मूर्तिपूजा की याद दिलाने के लिये काफ़ी है। मालूम नहीं कि जब सब पत्थर काबे से उठाकर फेंक दिये गये तो मूर्ति पूजा का अन्तिम अवशेष क्यों छोड़ दिया गया? जनश्रुति है कि जब हज़रत उमर संग असवद के पास गये तो उनको यह बात खटकी। वह नहीं चाहते थे कि संग असवद को बोसा देकर (चूमकर) मूर्तिपूजन की प्रथा को जीवित रक्खें। वह कहने लगे 'हे काले पत्थर! तू उसी प्रकार का एक पत्थर है जैसी अन्य मूर्तियाँ हैं। मैं तुझे पूजना नहीं चाहता परन्तु विवश हूँ। हज़रत मुहम्मद साहेब ने तुझे बोसा दिया था।' क्या अच्छा होता यदि हज़रत उमर इस पत्थर को भी साहस करके फेंक देते और इस्लामी जगत् से मूर्ति पूजन का कलंक मिट जाता। शायद ऐसी भी कथा है कि हज़रत उमर ने एक वृक्ष काट डाला

था क्योंकि मुहम्मद साहेब उसकी छाया में बैठ गये थे और लोग इस वृक्ष को पवित्र (पूजनीय) समझने लगे थे। मूर्ति पूजा इसी प्रकार जीवित रहती है।

(४) *पशुबलि*—यह भी मूर्ति पूजकों की प्रथा है। वह मूर्तियों को उपास्य देव समझकर उनके समक्ष भाँति-भाँति के भोजन रखते हैं। उनकी धारणा है कि इस भोजन का सूक्ष्म भाग देवते स्वयं खा जाते हैं और स्थूल भाग प्रसाद के रूप में पुरोहितों और पंडितों के लिये छूट जाता है। पशुओं को मारकर देवतों पर चढ़ाते हैं क्योंकि देवतें मनुष्यों की भाँति खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं, जागते हैं। उनको सर्दी और गर्मी लगती है। परन्तु आश्चर्य है कि मूर्ति पूजा के कट्टर शत्रु होते हुये भी इस्लाम धर्म ने इस निन्दनीय और प्रयोजन-शून्य रस्म को क्यों जीवित रक्खा? ईश्वर मन को मारने (वशी भूत करने) को तो पसन्द करता है जिससे मन में उठने वाली दूषित भावनायें छूट जायें और मनुष्य पुण्यशील बन जाय। पशु-बलि से ईश्वर को क्या प्रयोजन? उसे भूख नहीं लगती। उसे न मेवे पसन्द हैं न मांस।

(५) काबे पर अधिकार जमाने का प्रयास—यदि मुसल्मानों को वस्तुतः मूर्ति पूजा छोड़नी थी तो वह मूर्तियों के घर काबे पर स्वत्व स्थापित करने के लिये क्यों यत्नशील और चिन्तित रहे? यदि यह लोग मूर्तिपूजा जोड़कर केवल एक ईश्वर की उपासना की ओर ही ध्यान रखते तो उनको अपने ही घर पर्याप्त थे। ईश्वर तो वहाँ भी था ही। काबे की चिन्ता में पड़कर मूर्तिपूजकों से शत्रुतायें भी हुईं और युद्ध भी।

आये दिन मन्दिरों मस्जिद के हैं झगड़े रहते।
दिल में ईंटें हैं भरीं, लब पै खुदा होता है॥

आज यदि वाराणसी के आर्य लोग मूर्तियों को पूजना नहीं चाहते। तो वह विश्वनाथ के मन्दिर पर भी स्वत्व प्राप्त करने

क्यों जायें ? उनकी उपासना के लिये तो उनके अपने स्थान पर्याप्त हैं। यदि हिन्दुओं के दिल से मूर्ति-पूजा हट गई तो विश्वनाथ का मन्दिर स्वयं रिक्त हो जायगा। विरोध मूर्ति पूजा से है न कि मूर्ति से।

(६) जब बुतपरस्ती के बजाय बुतों से लड़ाई छिड़ गई तो लड़ाकू लुटेरों को मूर्तियों के तोड़ने और उनके माल को लूटने का अवसर हाथ आ गया। पिछली चौदह शताब्दियों में हजारों घटनायें हुई जहाँ दीन इस्लाम के संरक्षक कहलाने वालों ने मन्दिरों और उपासनालयों को लूटा और लूट के माल से मालामाल हो गये। यह तौहीद परस्ती (एक ईश्वर की पूजा) तो न थी। जरपरस्ती (धन का लालच) था।

(७) क़ब्र परस्ती—कबरें जड़ हैं पत्थरों के समान। उनके भीतर लाशें गड़ी हैं। निर्जीव लाशें। जिनसे जीव निकल चुका है। उसमें और पत्थरों में कोई भेद नहीं। परन्तु सब मुसल्मान क़बरों पर फातेहा (दुआ) पढ़ते और चढ़ावा चढ़ाते हैं। मुजाविरों (क़बर की रखवाली करने वालों) को उससे लाभ होता है। जैसे मन्दिरों के पुजारियों को। मन्दिरों के पुजारी नहीं चहते कि उनकी जीविका चली जाय। और कबरों के मुजाविर भी नहीं चाहते कि उनकी आय में रुकावट हो।

हमने बहुत से मुसल्मान विद्वानों को कहते सुना है कि इस्लाम धर्म में कबर की पूजा निषिद्ध है और जो लोग मदीने में हज़रत मुहम्मद साहेब की कबर पर माथा टेकने जाते हैं उनको वहाँ की सरकार के सिपाही जाने नहीं देते। परन्तु हमारी दृष्टि में इस बाहरी रुकावट का कोई अर्थ नहीं। क्योंकि दुनिया भर के हाजी हज करने केवल इसलिये जाते हैं कि काबे और मदीने में इब्राहीमी और मुहम्मदी स्मारक हैं। और उनके दर्शन से स्वर्ग मिलेगा। कोई हाजी केवल ईश्वरोपसना अथवा

कुरान शरीफ़ के अध्ययन के लिये हज करने नहीं जाता। यह सौभाग्य तो उसको अपने देश में भी प्राप्त था। उन देशों में मुसल्मान विद्वान् कोई ऐसा उपदेश नहीं देते कि हज करने मत जाओ। हर जगह क़ब्रों, समाधियों और रोज़ों की पूजा होती है। मुसल्मान भी पूजते हैं और गैर मुस्लिम पड़ोसी भी शरीक हो जाते हैं। कोई रोकता नहीं। जब तक मिथ्या मतों की जड़ हरी है उसके पत्तों को तोड़ने से कोई लाभ नहीं। एक ओर तो आप यह चाहते हैं कि संसार भर के मुसल्मान अपनी कमाई से मक्के और मदीने वालों को लाभान्वित करते रहें, दूसरी ओर तौहीद (एक-ईश्वर-पूजा) के नाम पर क़ब्र-पूजन को रोकने का बाहरी ढोंग रचते रहें। यह दो परस्पर विरुद्ध बातें कैसे हो सकेंगी ? कुरान शरीफ़ ने भी तो किसी दूसरे प्रसंग में यही शिक्षा दी थी :—

'अपने धर्म में निरर्थक अत्युक्ति न करो और ऐसे लोगों की इच्छाओं के पीछे न चलो। जो पहले पथ-भ्रष्ट थे और दूसरों को और भी पथ-विचलित कर गये।'* (अल् मायिदतः आयत ७७)।

तथा 'वह तुम्हारे भेदों को जानता है और जाहिर को भी और उसको भी जानता है जो तुम करते हो।'† (अल् अन् आम आयत ३)

———

* ला तग़्लू फ़ी दीनिकुम् ग़ैरुल् हक़्क़ि। व ला तत्तबिऊ अहवाये क़ौमिन् क़द् ज़ल्लू मिन् क़ब्लो व अज़ल्लू कसीरन्। (सूरत अल्मायिदा आयत ७७)

† यालमु सिर्रकुं व यालमु मा तक् सिबून। (अल् अन्-आम आयत ३)

अध्याय २८

नर पूजन

जिस प्रकार मूर्ति पूजन ईश्वर पूजन का शत्रु है इसी प्रकार नर-पूजन भी है। भद्र तथा वृद्ध पुरुषों का सम्मान और आदर तो हर मनुष्य का कर्तव्य है। हम उनको नमस्कार करते हैं। उनसे आशीर्वाद चाहते हैं और वह हमारे नमस्कार का प्रत्युत्तर देते हैं क्योंकि वह हमारी बात सुनते हैं। परन्तु यदि वह हमारे समक्ष न हों। और हम उनकी तसवीर या मूर्ति बनाकर उसके सामने सिजदा करें तो यह लगभग मूर्ति-पूजन जैसी ही चीज़ है। क्योंकि वह मूर्ति हमारी बात नहीं सुनती।

पत्थर भी सुना करते हैं फरियाद किसी की।

जब श्री रामचन्द्र जी या श्री कृष्ण जी जीवित थे तो हम उनके समक्ष सिर झुकाते थे अपनी फ़रियाद करते थे और वह हमारी फरियाद सुनते थे। परन्तु जब वह नहीं हैं तो उनकी मूर्तियों के सामने सिर झुकाना एक-ईश्वर-पूजा का विरोध करना है। साधारण हिन्दू यही समझता है कि रामचन्द्र जी की मूर्ति के सामने सिर झुकाने से ईश्वर की पूजा हो जाती है ठीक वैसे ही बाज़ मुसल्मान लोग हज़रत मुहम्मद के साथ करते हैं। जब हज़रत मुहम्मद साहेब इस संसार में जीवित थे तो उनका आदर सत्कार हमारा परम कर्तव्य था। परन्तु आज मुसल्मानों ने अपने कल्मे की भीतर मुहम्मद साहेब को भी शामिल कर रक्खा है। जब हम यह कहते हैं कि अल्ला को छोड़कर दूसरा कोई हमारा उपास्य देव नहीं तो अल्लाह हाज़िर नाज़िर (विद्य-

मान तथा देखने वाला) है। वह हमारी बात सुनता है। परन्तु जब हम कहते हैं कि मुहम्मद साहेब हमारे रसूल हैं और इस वाक्य को अल्लाह के कल्मे के साथ जोड़ देते हैं तो हज़रत मुहम्मद साहेब तो हमारी बात सुनते नहीं। अल्लाह के ध्यान के साथ मुहम्मद साहेब का भी ध्यान उसी समय हमारे मन के समक्ष आ जाता है। फिर तौहीद कहाँ रही ? मुहम्मद साहेब जो शिक्षा हमारे लिये छोड़ गये उसके लिये हम कृतज्ञ हैं। परन्तु इस कृतज्ञता का रूप क्या हो ? यह प्रश्न है। मुहम्मद साहेब तो हैं नहीं कि वे इस बात की अपेक्षा करें। हम उनकी शिक्षा के अनुसार आचार व्यवहार करें यही उन वृद्ध जनों के प्रति कृतज्ञता है।

कुरान शरीफ़ की एक मशहूर आयत है कि जब खुदा ने आदम को सब चीजों के नाम सिखाये तो फ़रिश्तों से कहा कि आदम को सिजदा करो। सब फरिश्तों ने सिजदा किया। इबलीस को छोड़कर। इसका मुख्य अभिप्राय तो मुझे यह मालूम होता है कि इस आयत की यह शिक्षा है कि यदि भद्र पुरुषों के सामने कोई विद्वान् आ जाये तो वह उसको नमस्कार करें। फरिश्ते नेक थे परन्तु विद्वान् न थे। आदम विद्वान् था। इसलिये उसके लिये सत्कारपूर्वक नमस्कार आवश्यक था। परन्तु कहीं यह नहीं कहा कि आदम की अनुपस्थिति में आदम की मूर्ति को नमस्कार करो। हमको भी विद्वानों के प्रति आदर पूर्वक नमस्कार करना चाहिये। परन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् हम केवल उनको स्मरण कर सकते हैं अर्थात् उनकी शिक्षाओं को। उनको नमस्कार नहीं करना चाहिये। कर भी नहीं सकते। ऐसा संभव नहीं। इसलिये जब तक इस्लामी कलमें में मुहम्मद साहेब का नाम ईश्वर के नाम के साथ जुड़ा रहेगा नर-पूजा जीवित रहेगी और तौहीदपरस्ती (एक ईश्वर पूजन) में सफलता

हो ही नहीं सकती। यहाँ तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं। मुसल्मानों की प्रवृत्ति का प्रश्न है। यदि आप कहें कि यह मूर्खों की प्रवृत्ति है तो विद्वान् लोग अपने अन्तःकरण का अवलोकन करें। वह भी तो रोज़ नमाज़ पढ़ते हैं और जानते हैं कि उनके दिलों में क्या है ? किसी मस्जिद में कोई विद्वान् जनता को इस मिथ्या-भावना से रोकता नहीं। अपितु इधर-उधर की व्याख्यायें करके अपने को मिथ्या भावनाओं के ऊपर मुलम्मा करने वालों में शामिल पाता है।

इतना ही नहीं है। नर-पूजा का यह क्रम पीढ़ी दर पीढ़ी दीर्घकाल से चला आता है। अगले लोग पिछले लोगों के प्रतिनिधि बन जाते हैं। लोग उन पर बैअत करते हैं। अर्थात् वह उनके अनुकरण करने की शपथ लेते हैं और पीरों और मुरीदों (गुरु चेलों) की परम्परा चलती रहती है इनकी आवाज़ के सामने अल्लाह की आवाज़ दब जाती है।

अध्याय २९

बशारत या भविष्य-वाणी

बशारत के धात्वर्थ हैं शुभ संदेश। पैगम्बरी के प्रसंग में बशारत के पारिभाषिक अर्थ यह हैं कि किसी 'नबी' के पैदा होने से बहुत दिनों पूर्व धार्मिक ग्रन्थों में यह भविष्य वाणी कर दी गई थी कि अमुक नबी भविष्य काल में आयेगा। और लोगों का पथ-प्रदर्शन करेगा। जब कोई नबी आता है और पैगम्बरी का दावा करता है तो इस दावे की पुष्टि में यह भी कहा जाता है कि इसके आगमन की भविष्य वाणी तो बहुत दिनों पहले कर दी गई थी। और चूँकि उसका आगमन उसी भविष्य वाणी के अनुसार है इसलिये किसी को उसके मानने में ननु नच नहीं करनी चाहिये।

हमारे इस कथन की पुष्टि तथा व्याख्या मासिक पत्र 'कान्ति' के १९६२ ई० (अक्टूबर मास) के हाल के अंक के एक उदाहरण से होती है। 'कान्ति' एक हिन्दी पत्रिका है जो इस्लाम धर्म के प्रचार के उद्देश से 'जमाअत-इस्लाम-हिन्द' नामी संस्था की ओर से रामपुर से निकलता है। विश्वनायक (अर्थात् जगत् गुरु) के शीर्षक से '*क़ौसर यज़्दानी*' महोदय इस लेख में लिखते हैं :—

'यह वही मुहम्मद थे जिनके बारे में महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्य नन्दा के कान में निम्न बात उस समय कही जब कि उनकी आखिरी साँसें चल रही थीं और उनका निष्ठावान शिष्य

उनके पाँवों को अपनी अश्रु धारा से यह कह कर पखार रहा था कि—

'स्वामी ! आपके जाने के बाद संसार वालों को कौन शिक्षा देगा ?'

'नन्दा !' महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया, 'मैं प्रथम बुद्ध नहीं हूँ जो पृथ्वी पर आया, न मैं अंतिम बुद्ध हूँ। अपने समय पर एक बुद्ध और आयेगा—जो अमर सत्य मैं बताता रहा हूँ, वह भी वही बतायेगा, मेरी तरह वह भी एक पूर्ण जीवन व्यवस्था का प्रचार करेगा।'

'हम उसको कैसे पहचानेंगे ?' नन्दा ने पूँछा।

'वह 'मित्तरिया'* के नाम से प्रसिद्ध होगा।' स्वामी ने कहा Leader 16 Oct. 1930.

ऐसे ही मूसा ने इस बच्चे के आने की सूचना इस तरह दी थी :—

'खुदा सीने से निकला, सईर से चमका और फारान ही के पर्वतों से प्रकट हुआ दस हजार 'कुर्दासियों' के साथ'। (पैदाइश, अध्याय १६-२)

यह वही पैगम्बर थे जिनके आने की हज़रत दाऊद, सुलेमान और नबी यसाअयाह ने खुशखबरी दी थी, नबी हबक़ूक, अलयसअ आदि ने भी उनके आगमन की सूचना दी थी।

यह वही रसूल थे जिनके आने की सूचना फाँसी के तख्ते पर लटकते समय हज़रत ईसा ने अपने साथियों को इन शब्दों में दी थी।

'मुझे तुमसे और भी बहुत सी बातें करनी हैं पर अब तुम

---

* मित्तरिया का अर्थ है 'वह जिसका नाम करुण है।' अर्थात् 'रहमत'।

उसे सहन नहीं कर सकते। जब वह पुण्यात्मा आयेगा तो तुमको तमाम सच्चाई की राहें दिखायेगा, इसलिये वह अपनी ओर से कुछ न कहेगा, जो कुछ अल्लाह की ओर से सुनेगा, वही कहेगा, और तुम्हें आगे की बातें बतायेगा।' (यूहना अध्याय १६, आयत १३-१४)।

इस पूरे लेख से आपको यह ज्ञात हो जायगा कि मुसल्मान विद्वानों की दृष्टि में 'बशारत' या 'भविष्य वाणी' का क्या अर्थ है ? और हज़रत मुहम्मद साहेब के शुभागमन को भविष्य वाणी किन शब्दों में की गई है। या दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि किस प्रकार के कथनों को मुसल्मान विद्वानों ने मुहम्मद साहेब की बशारत समझा हुआ है।

जब कोई किसी के सामने कोई 'भविष्यवाणी' करता है तो उसका प्रयोजन यही होता है कि तुमको आजकल जो कष्ट हो रहे हैं उनको दूर करने के लिये. अमुक साधन भविष्य में उपस्थित होंगे। कल्पना कीजिये कि मैं बीमार हूँ। चिकित्सा की कोई संभावना नहीं है। मैं घबरा रहा हूँ। आप मुझे ढ़ारस दिलाने के लिये एक भविष्य वाणी करते हैं कि 'घबराओ मत कल अमुक डाक्टर आयेगा और तुम्हारी समुचित चिकित्सा करेगा।' तो यह सुनकर मुझे अवश्य सान्त्वना होगी। और मैं उस डाक्टर के आने की प्रतीक्षा करूँगा। परन्तु यदि मेरे जीवन में कोई डाक्टर न आवे और मैं मर जाऊँ और तीन चार सौ वर्ष पीछे मेरे किसी परिवार में कोई डाक्टर उत्पन्न हो जाय और वह दावा करे कि मेरे आने का शुभ संदेश तो इतने वर्ष पहले अमुक पुरुष को दिया जा चुका था तो कौन ऐसा बुद्धिमान पुरुष है जो ऐसी भविष्यवाणी को ठीक समझ ले। और ऐसी भविष्यवाणी से वक्ता या श्रोता को क्या लाभ हो सकता है ? अब आइये, ऊपर की भविष्य वाणियों को जाँच करें।

महात्मा बुद्ध हज़रत मुहम्मद साहेब से हज़ार ग्यारह सौ साल पूर्व हुये। अरब से बहुत दूर देश भारत में। जब वह मृत्यु के निकट थे तो उनका भक्त शिष्य स्वभावतः शोकातुर और दुःखी था। उसका आचार्य और पथप्रदर्शक उससे अलग हो रहा था। उस समय उसके वियोगज दुःख को दूर करने के लिये महात्मा बुद्ध ने कहा होगा कि संसार में सैकड़ों गुरु उत्पन्न हुये और होंगे। तुम क्यों दुःखी होते हो ? यह संसार तो इसी प्रकार चलता रहता है। इसका हज़रत मुहम्मद साहेब से तो किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। गुरु का नाम 'मैत्रेय' दिया हुआ है जो नन्द (शिष्य) का दिया हुआ है। बुद्ध के इस कथन का केवल नन्द ही साक्षी है। यह वार्तालाप केवल दो मनुष्यों में हुआ था। बुद्ध में और नन्द में। बुद्ध की मृत्यु की बात नन्द ने कही होगी। 'मैत्रेय' का अर्थ है जगत् का हितैषी। सभी आचार्य संसार के मित्र होते हैं। शायद इस लेख के लेखक से पहले किसी मुसलमान विद्वान् ने हज़रत मुहम्मद साहेब की बशारत में महात्मा बुद्ध की इस बातचीत का प्रमाण नहीं दिया। और शायद 'लीडर' पत्र में एक लेख देखकर कौसर महोदय का जी ललचाया कि इसको बशारत में शामिल कर दो। महात्मा बुद्ध के पीछे पूर्वी और पश्चिमी देशों में बहुत से नेता उत्पन्न हुये। भारत वर्ष में शङ्कर, रामानुज, कबीर, नानक इत्यादि। पश्चिमी देशों में हज़रत ईसा आदि। महात्मा बुद्ध के कथन में कोई शब्द ऐसा नहीं है जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में संकेत से भी यह प्रकट हो सके कि यह भविष्य वाणी हज़रत मुहम्मद के सम्बन्ध में है और हज़रत मुहम्मद या उनके सहयोगियों में से किसी ने इस बशारत का कोई वर्णन नहीं किया। यदि आज न्यायालय में दो मनुष्य खड़े हो जायँ और एक कहे कि महात्मा बुद्ध का आशय गुरु नानक से है और दूसरा कहें कि हज़रत मुहम्मद

साहेब से, तो निर्णय किन शब्दों के आधार पर होगा ? हमारे जीवन में ही एक अवसर आ चुका है। थियोसोफीकल सोसायटी के कुछ नेताओं की ओर से यह दावा किया गया था कि महात्मा बुद्ध की भविष्य वाणी के अनुसार महात्मा मैत्रेय श्री जे० कृष्ण मूर्ति के शरीर में प्रकट होंगे। बहुत दिनों तक इसका चर्चा रहा। किंवदन्तियाँ भी चलती रहीं। यह युग भी वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा बदल चुका था। मिथ्या मान्यताओं और अन्धविश्वास का जोर कुछ कम हो गया था। अतः यद्यपि श्री जे० कृष्ण मूर्ति अपने विचारों का प्रचार करते रहे परन्तु महात्मा मैत्रेय के रूप में नहीं। अपितु अपने वैयक्तिक रूप में। कोई सम्प्रदाय अपने प्रवर्तक या आचार्य को मैत्रेय का अवतार मान सकता है।

अब रही हज़रत ईसा की भविष्यवाणी। इसमें भी एक भी शब्द नहीं जिससे कहा जा सके कि यह भविष्य वाणी हज़रत मुहम्मद के सम्बन्ध में है। दाऊद, सुलैमान आदि की भविष्य वाणियाँ भी इसी प्रकार की हैं। केवल कुछ मनमोहक शब्द कह दिये गये इनको आप आशीर्वाद कहें या सहानुभूति। ऐसी भविष्य वाणियाँ तो प्रतिदिन हुआ करती हैं। इनका दावेदार कोई कहीं हो सकता है। न काल का निर्देश न देश का। न घटनाओं का ! कौन सा युग है जिसमें दुराचार, लुचपन या अत्याचार, न्यूनाधिक नहीं हुये ? और कौन सा युग है जब उनसे संरक्षण के लिये नेता उत्पन्न नहीं हुये ? मुहम्मद साहेब और महात्मा बुद्ध की जीवन-घटनाओं में कौन सा सादृश्य है या उनके सिद्धान्तों और मंतव्यों में कौन सी एकता है जिसके आधार पर कहा जा सके कि महात्मा बुद्ध ने हज़रत मुहम्मद साहेब के शुभागमन का समाचार इतनी शताब्दियों पूर्व दिया था।

हम यह बात तो स्वीकार करते हैं कि अनपढ़ लोगों में भविष्य वाणियों के विषय में एक मिथ्या विश्वास चला आता है। भारतवर्ष में ज्योतिषी लोग रोज भविष्य वाणियाँ किया करते हैं कोई हाथ की रेखाओं को देखकर आगे की बात बताता है। कोई ग्रहों की चाल से भविष्य वाणी करता है। यह भविष्य वाणियाँ शुभ सन्देश भी होती हैं और अशुभ भी। आश्चर्य तो यह है कि धार्मिक भवन की नींव ऐसे मिथ्या विश्वास पर रख ली जाती है। और बड़े-बड़े विद्वान् भी चक्कर में आ जाते हैं। तथा दुनियों को चक्कर में डाल देते हैं। हज़रत ईसा के विषय में भी ईसाई पादरियों ने युहूदियों की धर्म पुस्तकों से निकाल निकाल कर इस प्रकार की बशारतें पेश की हैं। जिनको युहूदी नहीं मानते। परन्तु ईसाई मानते चले आ रहे हैं। हम यहाँ बाइबिल से कुछ नमूने पेश करते हैं :—

मत्ती की इंजील अध्याय १ आयत २२, २३ में है :—

'यह सब कुछ इसलिये हुआ कि जो वचन प्रभु ने भविष्य वक्ता के द्वारा कहा था वह पूरा हो। (२२)

कि देखो एक कुँवारी गर्भवती होगी और एक पुत्र जनेगी और उसका नाम इम्मानुएल रक्खा जायगा जिसका अर्थ यह है 'परमेश्वर हमारे साथ'। (२३)

ईसाई विद्वान् कहते हैं कि इस आयत में 'पुराना नियम' के 'यशायाह' अध्याय ७। आयत १०-१४ का हवाला है। वह आयतें यह हैं :—

'फिर यहोवा ने आहाज़ से कहा' (१०)। 'अपने परमेश्वर यहोवा से कोई चिह्न माँग, चाहे वह गहरे स्थान का हो, या ऊपर आसमान का हो' (११)। 'आहाज ने कहा, मैं नहीं माँगने का' और मैं यहोवा की परीक्षा नहीं करूँगा (१२)। 'तब उसने कहा, हे दाऊद के घराने सुनो क्या तुम मनुष्यों को उकता

देना छोटी बात समझकर मेरे परमेश्वर को भी उकता दोगे ? (१३)। 'इस कारण प्रभु आप ही तुमको एक चिह्न देगा। सुनो, एक कुँवारी गर्भवती होगी और एक पुत्र जनेगी और उसका नाम इम्मानुएल रक्खेगी।' (१४)

यह भविष्य वाणी कब की गई ? उसी किताब में देखिये :—

'यहूदा का राजा आहाज जो योताम का पुत्र और उज्जिय्याह का पोता था उसके दिनों में आराम के राजा रसीन और इस्राईल के राजा रमल्याह के पुत्र पेकह ने युरुशलेम से लड़ने के लिये चढ़ाई की परन्तु युद्ध करके उनसे कुछ बन न पड़ा। (१)

जब दाऊद के घराने को यह समाचार मिला कि अरामियों ने एप्रैमियों से सन्धि की है तो वह और उसकी प्रजा ऐसी काँप उठी जैसे बन के वृक्ष वायु चलने से काँप जाते हैं। (२), (यशायाह अध्याय ७ आयत १-२)। तब यहोवा ने यशायाह को आज्ञा दी कि आहाज से मिल और उसको विश्वास दिला। अतः यशायाह आहाज के पास जाता है और आहाज का ढ़ारस बँधाता है कि उसके शत्रु सफल न हो सकेंगे। हज़रत ईसा के आगमन की बशारत (भविष्यवाणी) का इसी घटना से सम्बन्ध है।

अब तनिक सोचिये। यह आह्लाद जन्य और सान्त्वना की बात कब कही गई ? हज़रत ईसा के आगमन के ७४२ वर्ष अर्थात् लगभग तीस पीढ़ियों पहले। आहाज को इससे क्या लाभ हुआ ? और इस का क्या प्रमाण है कि यहाँ संकेत कुंआरी मरियम के गर्भवती होने और ईसा मसीह की उत्पत्ति के विषय में है। और न यह संभव है कि ईसा मसीह के शुभागमन ने आहाज या उसके सहयोगियों को कोई लाभ पहुँचाया हो ? हाँ इतना अवश्य है कि ईसाई पादरियों ने बेबात का बतंगड़ बना

लिया। 'प्रेरितों के कामों का वर्णन' अध्याय १ को १५ से २० तक की आयतें देखिये :—

'और उन्हीं दिनों में *पतरस* भाइयों के बीच में जो एक सौ बीस व्यक्ति के लगभग इकट्ठे थे खड़ा होकर कहने लगा (१५)। हे भाइयो अवश्य था कि पवित्र शास्त्र का वह लेख पूरा हो जो पवित्र आत्मा ने दाऊद के मुख से यहूदा के विषय में जो यीशु के पकड़ने वालों का अगुआ था पहले से कही थी (१६)। क्योंकि वह तो हममें गिना गया और इस से बकाई में सहभागी हुआ (१७)। उसने अधर्म की कमाई में एक खेत मोल लिया और सिर के बल गिरा और उसका पेट फट गया। और उसकी सब अतड़ियाँ निकल पड़ीं (१८)। और इस बात को युरूशलम के सब रहने वाले जान गये। यहाँ तक कि उस खेत का नाम उनकी भाषा में हकल दमा अर्थात् लोहू का खेत पड़ गया। (१९) क्योंकि भजन संहिता में लिखा है कि उसका घर उजड़ जाय और उसमें कोई न बसे। और उसका पद कोई दूसरा ले ले। (२०)।

यह है पादरी पतरस का एक लैक्चर जो हज़रत ईसा के समय के बहुत पीछे दिया गया था और जिसका उद्देश्य यह था कि सुनने वाले लोग एक पुरानी गप्प कहानी से प्रभावित होकर ईसाई धर्म में पक्के हो जायं। पतरस को यह क्या पड़ी थी कि वास्तविक घटना की जाँच करते ? वह तो थे केवल वक्ता। या धर्म-प्रचारक ! उनको ऐतिहासिक या प्राकृतिक घटनाओं के अनुसंधान से क्या प्रयोजन ? भजन संहिता (दाऊद के जुबूर) के जिस गीत का ऊपर के लैक्चर में हवाला दिया गया है वह तो बिल्कुल कुरान की सूरत अबूलहब से मिलता जुलता है उसमें एक कोसा है जो बहुधा लोग बुरे लोगों के लिये कोसते समय दिया करते हैं। उसमें ऐतिहासिक घटना का कोई उल्लेख नहीं

है। यह बद्दुआ तो मुहम्मद साहेब के किसी शत्रु पर भी लागू हो सकती है। पतरस ने यह भी नहीं सोचा कि दाऊद के जिस गीत का हवाला दिया जा रहा है। उसमें यीशु मसीह के साथी का कोई वर्णन नहीं है। ईसाई पादरियों का कहना है कि यहाँ जुबूर (भजन संहिता) के अध्याय ४१ की ९ वीं आयत अभिप्रेत है। परन्तु वहाँ तो दाऊद अपने शत्रु की शिकायत कर रहा है। 'मेरा परम मित्र जिस पर मैं भरोसा रखता था। जो मेरी रोटी खाता था उसने भी मेरे विरुद्ध लात उठाई है।' उसमें ईसा के चेले यहूदा का कहाँ वर्णन है जिसने ईसा को पकड़वाया था ?

एक और भविष्य वाणी देखिये :—

'मैं उसको देखूंगा तो सही, परन्तु अभी नहीं।'
मैं उसको निहारूँगा तो सही, परन्तु समीप होके नहीं।
याकूब में से एक तारा उदय होगा।
और इस्राईल में से एक राज दण्ड उठेगा।

जो मोआब के अलंगों को चूर चूर कर देगा। (गिनती २४-१७)

यहाँ 'सितारा' से अभिप्राय ईसा मसीह से लिया जाता है। यह भविष्यवाणी थी। किसने की और कब की ? और किसको शान्ति देने के लिये की ? इसका उत्तर स्वयं बाइबिल से सुनिये 'गिनती' के २२ वें अध्याय में दिया है कि बिलाम एक सगुन देखने वाला था जो पतोर नगर में रहता था। यह भविष्यवाणी उसी ने की थी ! कब की थी ? ईसा मसीह के जन्म से १४५२ वर्ष पहले। 'तब इस्राईलियों ने कूच करके परीहो के पास यरदन नदी के इस पार मोआब के अरावा में डेरे खड़े किये।' (गिनती २२-१)

मोआब के लोग डर गये कि 'अब यह दल हमारे चारों ओर

के सब लोगों को ऐसा चट कर जायेगा जिस तरह बैल खेत की हरी घास को चट कर जाते हैं।' (गिनती २२-४)

इस प्रकार भयभीत होकर 'मोआब' के राजा बालाक ने जो सिप्पोर का पुत्र था बलाम के पास आदमी भेजे कि बलाम ईश्वर से उनकी सहायता के लिये प्रार्थना करे। क्योंकि बालाक को विश्वास था कि जिसको 'तू आशीर्वाद देता है वह धन्य होता है और जिसको तू स्राप देता है वह स्रापित हो जाता है' (गिनती २२-७)। इस पर बलाम ने ईश्वर से प्रार्थना की और यह भविष्य वाणी उसी का परिणाम है। जिनका जी चाहे सब अध्यायों का अवलोकन करें। सान्त्वना देनी थी बालाक को जो बिचारा एस्राईल की चढ़ाई से भयभीत हो रहा था। बलाम ने भविष्य वाणी कर दी कि लगभग पंद्रह शताब्दियों पीछे ईश्वर हज़रत ईसा को भेजेगा। 'जब तक इराक़ से तिर्याक़ आयेगा साँप का काटा मर जायेगा।' यह चिकित्सा है या उपहास। भविष्य वाणी है या अलफ़लैला की कहानी ?

एक तीसरी भविष्य वाणी सुनिये :—

'हे बैतलेहम एप्राता यदि तू ऐसा छोटा है कि यहूदा के हज़ारों में गिना जाता तौभी तुझमें से मेरे लिये एक पुरुष निकलेगा जो ऐस्राएलियों में प्रभुता करने वाला होगा और उसका निकलना प्राचीन काल से वरन् अनादि काल से होता आया है। (मीका ५-२)

यह भी हज़रत ईसा के आने की खुशखबरी (बशारत या भविष्य वाणी) है। कब हुई ? ईसा से ७१० वर्ष पूर्व। इसके अतिरिक्त यह एक स्वप्न था जो मीका नबी ने देखा था।

एक और बशारत का नमूना देखिये :—

'जब ऐस्राइल बालक था तब मैंने उससे प्रेम किया और अपने पुत्र को मिश्र से बुलाया।' (होशे अध्याय ११ आयत १)

यह घटना ईसा से ७२५ वर्ष पूर्व की है। मती की इंजील की दूसरे अध्याय की १ ली आयत में इसी बशारत की ओर इशारा है कि होशे में जो भविष्य वाणी की गई थी वह पूरी हुई। क्योंकि ईसा मिश्र से बुला लिये गये। मती और होशे के वर्णनों को मिलाकर पढ़िये। अद्भुत पहेली मालूम होगी। कोई कहीं कुछ अटपाँग बात कह देता है और उसके सैकड़ों वर्ष पीछे कोई उसकी मनमानी व्याख्या कर बैठता है।

हम यहाँ केवल एक और बशारत का उल्लेख करते हैं :—

'यहोवा यह भी कहता है—सुन, रामा नगर में विलाप और बिलक-बिलक कर रोने का शब्द सुनने में आता है। राहेल अपने लड़कों के लिये रो रही है। और अपने लड़कों के कारण शान्त नहीं होती। क्योंकि वह जाते रहे।' (यिर्मया अध्याय ३१ आयत १५)

'यहोवा यों कहता है। रोने पीटने और आँसू बहाने से रुक जा' क्योंकि तेरे परिश्रम का फल निकलने वाला है। और वे शत्रुओं के देश से लौट आयेंगे।'

'अन्त में तेरी आशा पूरी होगी। यहोवा की यह वाणी है। तेरे वंश के लोग अपने देश में लौट आवेंगे।' (यिर्मयाह अध्याय ३१ आयत १६-१७)

मती अध्याय २, आयत १७ व १८ में इस कथन को भी ईसा मसीह के आगमन से सम्बद्ध किया गया है :—

'तब जो वचन यिर्मयाह भविष्य वक्ता के द्वारा कहा गया था वह पूरा हुआ।'

रामाह में एक करुण-नाद सुनाई दिया। रोना और बड़ा विलाप। राहेल अपने बालकों के लिये रो रही थी। और शान्त होना न चाहती थी क्योंकि वे हैं नहीं।' (मती २-१७, १८)

'पुराने नियम' (Old Testament) के अनुसार यह घटना ईसा मसीह से ६०६ वर्ष पूर्व की है। और यह भविष्य वाणी नहीं अपितु उस समय की एक घटना का वर्णन है। परन्तु मसी महोदय के लिये यह भी ईसा के आगमन की एक 'बशारत' बन गई।

इन बशारतों में एक मेरी ओर से मिलाइये। फारसी कवि हाफ़िज़ का एक पद है :—

रसीद मुज़दा कि अय्यामे ग़म न ख्वाहद मुंद।
चुनीं न मुन्द चुना नीज़ हम न ख्वाहद मुंद॥

'संदेश मिला है कि दुःख के दिन न रहेंगे।
वह नहीं रहा तो यह भी नहीं रहेगा।'

यह एक बशारत है। किस के लिये? ब्रह्म देश ४ जनवरी १९४८ को अंगरेजों के पंजे से मुक्त हुआ। क्या ऊपर लिखी बशारतों के समान किसी ब्रह्मदेश के निवासी को यह कहने का अधिकार प्राप्त नहीं है कि हाफ़िज़ ने यह भविष्य वाणी इसी आज़ादी के विषय में की थी?

ऐसी बशारतों (भविष्य वाणियों) को पढ़ते हुये मुझे अपने बालकपन की एक बात याद आ जाती है। उस समय विक्टोरिया भारतवर्ष की महाराणी थीं। वह थीं अंगरेज़ और ईसाई। उस समय गाँव वाले कहा करते थे कि जब रावण के बेटा मेघनाद मारा गया और उसकी पत्नी सुलोचना अपने पति का शव मांगने के लिये रामचन्द्र के पास आई तो उसके विलाप को सुनकर रामचन्द्र जी का दिल पिघल गया और उन्होंने यह वरदान दिया कि तेरी जाति में से एक स्त्री पैदा होगी जो भारतवर्ष पर राज करेगी। विक्टोरिया वही महाराणी है। जिसके विषय में प्राचीन काल में भविष्यवाणी की गई थी। रामचन्द्र जी की बात पूरी हुई।

यह थी गाँव वालों की गप। किसी विद्वान् ने चाहे वह भारतीय हो या अंगरेज इस गप की ओर ध्यान नहीं दिया। परन्तु ऐसी ही कहानियों को ईसाइयों ने हज़रत ईसा के लिये और मुसल्मानों ने हज़रत मुहम्मद साहेब के लिये बशारत (भविष्य वाणी) मान रक्खा है। जब तक यह कहानियाँ केवल साधारण जनता तक ही सीमित रहती हैं उस समय तक यह उनके मनोविनोद का साधन रहती हैं। और इनसे लोगों का जी बहलता है। परन्तु जब इनको महत्व और बढ़ाव दे दिया जाता है और इन का प्रवेश धर्म ग्रन्थों में हो जाता है तो पवित्र ग्रन्थों की पवित्रता में बट्टा लग जाता है। और जिन विशाल व्यक्तियों से इनका सम्बन्ध जोड़ा जाता है उनकी मौलिक महत्ता भ्राँत विचारों के पर्दे के पीछे छिप जाती है। संभवतः साम्प्रदायिक प्रचारकों को कुछ सफलता मिल जाय। परन्तु धर्म का वास्तविक प्रयोजन तो निष्फल हो जाता है। कुरान में कहा है कि 'सच आया और झूठ भागा'। परन्तु होता है इसका उलटा। 'झूठ आता है और सत्य भाग जाता है।' हज़रत मुहम्मद साहेब के गौरव को प्रकट करने के लिये बहुत से विशाल पराक्रम हैं। इनसे उनकी महत्ता सिद्ध होती है। बशारत की कल्पित गप्पों और बनावटी कहानियों को गढ़ने और मानने की क्या जरूरत है? कस्तूरी वह है जो स्वयं सुगन्ध दे न कि अत्तार के कहने की जरूरत पड़े। 'कान्ति' पत्रिका के सम्पादक महोदय ने महात्मा बुद्ध के अन्तिम वचनों को मुहम्मद साहेब की बशारत बताया है। शायद वह समझते होंगे कि महात्मा बुद्ध के इस वचन को सुन कर हिन्दू लोग इस्लाम की ओर झुक जायँगे। हमारे मत में तो यह सीधा मार्ग नहीं है।

———

अध्याय ३०

हज़रत इब्राहीम और उनका संविधान

युहूदियों, ईसाइयों और मुसल्मानों में हज़रत इब्राहीम को वही उच्चपद प्राप्त है जो आर्य लोगों में मनु जी को। मनु जी वह पहले महात्मा समझे जाते हैं जिन्होंने बहुत प्राचीन काल में वेदों की शिक्षाओं के आधार पर मनुष्य समाज के हितार्थ स्मृति शास्त्र का निर्माण किया। उनके नियम सामाजिक रोगों के लिये 'भैषज' (दवा) कहे जाते हैं। यद्यपि मनुस्मृति में काल की उथल-पुथल के कारण बहुत कुछ अदल-बदल हो गया है फिर भी मनुस्मृति वर्तमान काल में भी प्रामाणिक समझी जाती है। और उसी के आधार पर बहुत सी स्मृतियाँ बन गई हैं।

इसी प्रकार हज़रत इब्राहीम की शरीअत (संविधान या स्मृति) अनुकरण के योग्य समझी जाती है।

युहूदी कथानकों के अनुसार हज़रत इब्राहीम का ज़माना बहुत पुराना था। यह 'बनी इसराईल' (इसराईल वंश) के आदि पुरुष थे। यह हज़रत मूसा से भी बहुत पहले हुये। शायद हज़रत ईसा से दो सहस्र वर्ष से भी पूर्व। इतने पुराने युग का ठीक-ठीक इतिहास जानना तो असंभव सा है। कुछ लोगों का तो यह भी कहना है कि हज़रत इब्राहीम कोई ऐतिहासिक पुरुष थे ही नहीं। एक बड़े पुरुष के अस्तित्व की कल्पना करके उस पर कथानकों का किवाम चढ़ा दिया गया है। परन्तु यदि हम हज़रत इब्राहीम को एक ऐतिहासिक व्यक्ति स्वीकार करलें तो भी उनका

व्यक्तित्व कहानियों के बोझ के नीचे इतना दब गया है कि प्याज़ के छिलकों की भाँति भीतर कुछ मिलता नहीं। कुरान शरीफ़ में हज़रत इब्राहीम का उल्लेख आता है। और विशेष कर इसलिये कि उनके पिता (आज़र) पत्थर की मूर्तियाँ बनाते और बेचते थे। हज़रत इब्राहीम ने भी मूर्तियाँ बेची थीं। और इन्हीं मूतियों की शक्लें देखकर शायद उनको 'एक ईश्वर पूजा' का ध्यान आया। और इन्होंने प्रतिमा पूजन त्याग दिया। अपनी सन्तान को भी 'एक ईश्वर' के लिये प्रेरणा की। कुरान शरीफ़ में इस बात का सुन्दर वर्णन दिया है 'इब्राहीम ने अपने बेटों को और याकूब ने भी वसीयत की कि ए बेटो! अल्लाह ने तुम्हारे लिये यही दीन पसन्द किया है। इसलिये इसी धर्म में मरना। आपने क्या यह दृश्य देखा कि याकूब के सामने मौत खड़ी है और वह अपने पुत्रों से कह रहे हैं 'मेरे पीछे किसकी पूजा करोगे?' वे उत्तर देते हैं, 'हम पूजा करेंगे तुम्हारे अल्लाह को और तुम्हारे बाप दादों अर्थात् इब्राहीम, इस्माईल और इसहाक़ के अल्लाह की। हम उसी एक अल्लाह के मानने वाले हैं।'* (बक़र १३२)

इससे अगली आयत और भी सुन्दर है और हर मनुष्य को उसको गाँठ बाँध लेनी चाहिये :—

'यह उम्मत तो खतम हो गई। उसकी कमाई उनके साथ

---

* व वस्सा बिहा इब्राहीमो बनेहि, व याकूबो, 'य बनइय इन्नल्लाहस्तफ़ा लकुमुद्दीन फ़ ला तमूतुन्न इल्ला व अन्तुं मुस्लिमून। अम् कुन्तुं शुहदा अ इज़् हज़र याकुबल् मौतो, इज़् क़ाल लि बनेहि मा ताबुदून मिन् बादी। क़ालू नाबुदो इलाहक व इलाह आबाइक इब्राहीम, व इस्माईल व इस्हाक़ इलाहन् वाहिदन् व नहनो लहू मुस्लिमून।' (बक़र १३२)

और तुम्हारी कमाई तुम्हारे साथ। तुमसे यह नहीं पूछा जायगा कि वे क्या करते थे।'* (बक़र १३३)

जो लोग कहानियों को सुन-सुन कर बिना सोचे विचारे इब्राहीम की शरीअत की अन्धी पैरवी करते हैं उनको सोचना चाहिये कि पूर्वजों की अन्धी पैरवी उनका असली सत्कार नहीं है। कोई सुधारक अपने समय की बुराइयों को पूर्णरूपेण दूर नहीं कर सकता। कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं। हज़रत इब्राहीम के साथ भी ऐसा ही हुआ। मूर्तिपूजा के विरोध के कारण उनको अपना देश छोड़ना पड़ा जैसे हज़रत मुहम्मद साहेब को हिज्रत करनी पड़ी। उनके देश निकाले की लम्बी कहानी हम यहाँ देना नहीं चाहते। उन दिनों मिस्र का राज्य बड़ा प्रबल था। हज़रत इब्राहीम देशविदेशों में मारे-मारे फिरते रहे। अन्त में मिस्र जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने मिस्र वालों में कुछ प्रथायें देखीं और किसी कारण से विवश होकर अथवा स्वयं अपनी इच्छा से उनमें से कुछ प्रथायें स्वीकार करलीं। मुसल्मानों में भी उनमें से कुछ रस्में पाई जाती हैं जो निन्दनीय होने के अतिरिक्त क़ुरान शरीफ़ की असली तालीम के विरुद्ध भी हैं। हम यहाँ कुछ का वर्णन करते हैं :—

(१) ख़तना (पुरुष की प्रजनन इन्द्रिय का अगला चमड़ा काट देना। इसको भारतवर्ष में 'मुसल्मानी करना' भी कहते हैं)। क़ुरान शरीफ़ की कोई आयत इसकी आज्ञा नहीं देती। केवल इतना है कि ख़तने को इब्राहीमी शरीअत कहते हैं। हज़रत मुहम्मद साहेब का ख़तना हुआ था। सब युहूदी ख़तना कराते थे। ईसाइयों ने यह प्रथा बन्द कर दी थी। हज़रत

* तिल्क उम्मतुन् क़द् ख़लत्। लहा मा कसबत् व लकुं मा कसब्तुम्। व ला तुस्अलून अम्मा कानू यामिलून। (बक़र १३३)

इब्राहीम ने इस प्रथा का आरम्भ नहीं किया था। हजरत आदम या क़ाबील या हाबील के ख़तने का कहीं उल्लेख नहीं है। फिर प्रश्न यह है कि सृष्टि-क्रम के विरुद्ध यह प्रथा कैसे पड़ गई ? और इन्सान ने ख़ुदा की रचना में क्यों अनुचित प्रक्षेप किया ? कुछ लोग शायद कहें कि डाक्टर लोग रोज कुदरत के कामों में दख़ल देते हैं। इस प्रकार का एक उदाहरण मैं भी दे सकता हूँ। एक बच्चा जब पैदा हुआ तो उसके पाख़ाने जाने का रास्ता बिल्कुल बन्द था। डाक्टरों ने पेट में दूसरी जगह सूराख़ करके नली लगा दी। मल वहीं से निकलने लगा। लड़का अब जवान है। किसी दफ्तर में क्लर्क है। वह मेरे स्कूल में पढ़ता था। उसे दिन में बार बार कपड़ा बदलना पड़ता है। इस प्रकार की बहुत सी घटनायें रोज अस्पतालों में देखने में आती हैं। परन्तु ख़तने की बात तो अलग ही है। डाक्टर लोग केवल उसी समय हस्ताक्षेप करते हैं जो कोई असाधारण बात हो जाती है और उससे समस्त शरीर को हानि की संभावना होती है। विशेष अंग का विशेष चमड़ा जो ख़तने में काटा जाता है असाधारण भी नहीं है और शरीर के दूसरे अंगों के लिये हानिकारक भी नहीं। यदि ऐसा होता तो समस्त मनुष्य जाति के लिये कुदरत उस चमड़े को कदापि न बनाती। सारी दुनियाँ के सभी लोग ख़तना नहीं कराते। अधिकतर मुसल्मान ही ख़तना कराते हैं। और वह भी शरीअत इब्राहीमी के अनुपालन के उद्देश से। मैंने स्वयं बच्चों को देखा है। कोई माता अपने बच्चे पर यह अत्याचार होते न देखेगी जब तक उस पर धार्मिक कर्तव्यता को थोपा न जाय और उसका न पालना ईश्वर के कोप का भाजन समझा जाय। यह प्रथा हज़रत इब्राहीम ने नहीं डाली थी। मिस्र में यह प्रचलित थी। मिस्र के इतिहास से यह ज्ञात नहीं होता कि इस प्रथा का आरम्भ कैसे हुआ ? संभव है कि

हज़रत इब्राहीम को उस नये देश में जाकर यह प्रथा ग्रहण करनी पड़ गई हो। ख़तने के आरम्भ के कई कारण हो सकते हों। कभी-कभी अनपढ़ लोग बड़े लोगों की अनावश्यक बातों का अनुकरण करने लगते हैं। संभव है कोई बड़ा आदमी किसी विशेष रोग में ग्रस्त हो गया हो और उस समय चमड़े का काटना जीवन की रक्षा के लिये आवश्यक समझा गया हो। और पीछे से उसकी सन्तान में यह प्रथा पड़ गई हो।

एक और भी अनुमान है। यह तो ठीक ही है कि उस युग में मिश्र के लोगों में और दूसरो जातियों में भी देवताओं पर पशुओं की बलि चढ़ाने की प्रथा थो। कहीं कहीं नर-बलि भी दी जाती थी। यह बलियाँ अविद्या के चिह्न थे। मिथ्या-पूजा की जड़ है अविद्या। भारतवर्ष में भी यह अविद्या पाई जाती है। कलकत्ते की काली माई और विन्ध्याचल की देवी पर बकरे चढ़ाये जाते हैं। नैपाल में भैंसों की बलि दी जाती है। इन लोगों का विश्वास है कि जिन पशुओं की बलि दी जाती है उन के मांस का सूक्ष्म भाग देवतों को पहुँचता है। कुछ का यह भी विश्वास है कि बलि में जो पशु मारे जाते हैं वह सीधे स्वर्ग को जाते हैं। महात्मा बुद्ध ने ऐसी निन्दनीय प्रथा का प्रबल खंडन किया था। हर बुद्धिमान मनुष्य को ऐसा करना चाहिये। हज़रत इब्राहीम के समय में ऐसे बलिदान चालू थे। कुछ कोमल हृदय मनुष्य ऐसे भी थे जिन को ऐसी निन्दनीय प्रथाओं के रोकने का साहस तो न था तथापि वह ऐसी कुर्बानियों को पसन्द नहीं करते थे। इसलिये उन्होंने एक बहाना खोज निकाला कि पशु को मारा न जाय अपितु उसका कान काट कर छोड़ दिया जाय। मैंने बचपन में अपने घर में एक प्रथा देखी। मेरे परिवार में मांस नहीं खाया जाता था। वह किसी प्राणी की हिंसा करना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु उन को बताया गया था कि सकट नामी त्यौहार

के दिन बकरा काटना चाहिये। और बकरे का सिर घर के पुरुषों को (स्त्रियों को नहीं) खाना चाहिये। मेरे पूर्वजों ने एक विधि निकाली कि असली बकरे के स्थान में तिल, घी और गुड़ का एक बकरा बनाते थे। मैंने बचपन में चाकू से उस बनावटी बकरे की गर्दन काटी है। मुझे तिल, घी और गुड़ खाने में मजा आता था। जब मैंने आर्य समाज में प्रवेश किया तो इस प्रथा को सर्वथा बन्द कर दिया। क्योंकि इसमें किसी पशु की कुर्बानी नहीं थी फिर भी प्रवृत्ति तो वही थी। बुरी प्रवृत्ति बुरे कर्म से अधिक हानिकारक होती है। मैं निश्चित रूप से तो नहीं कह सकता परन्तु मैं अनुमान करता हूँ कि नर-बलि से बचने वाले दयालु लोगों ने सुधार के रूप में प्रजनन-इन्द्रिय के ऊपर के चमड़े को काट डालना पूर्ण बलि का प्रतीक समझ लिया होगा। जो कुछ भी हो। है यह प्रथा मूर्खता पर आधारित। यह शरीयत न तो हजरत आदम की है न हजरत इब्राहीम की। इतिहास से हमको इतना तो पता चलता है कि हजरत इब्राहीम ने इस प्रथा को इसलिये जारी किया था कि साधारण मिस्री लोगों में और उनमें कोई अन्तर न रहे। क्योंकि हजरत इब्राहीम परदेसी थे। उनको कठिनाइयाँ पड़ती होंगी। आजकल मुसल्मानों में यह पहचान की निशानी मानी गई है। जब किसी को जबर-दस्ती मुसल्मान बनाते हैं तो उसका खतना भी करते हैं। इस्लाम धर्म के पाँचों महा कर्तव्यों के अनुपालन से भी अधिक आव-श्यक खतना समझा जाता है। जब किसी का खतना होता है तो कहते हैं कि इसकी मुसल्मानी हो गई। खेद है कि कुरान शरीफ़ के कथनानुसार इब्राहीम की क़ौम तो खतम हो गई परन्तु उसकी निर्बलतायें अब भी प्रबल रूप में विद्यमान हैं।

(२) इब्राहीमी संविधान (शरीअती) के अन्तर्गत एक और दूषित प्रथा है कुर्बानी (पशु-बलि)। हम ऊपर कह चुके हैं कि

हजरत इब्राहीम से पूर्व कई देशों में देवतों के लिये पशुओं की बलि दी जाया करती थी। और कहीं-कहीं मनुष्यों की भी। जैसे अतिथि के सत्कार के लिये बहुमूल्य पदार्थ अर्पित किये जाते हैं इसी प्रकार देवतों के लिये भी बहुमूल्य पशु का आलभन होता था। और यतः मनुष्य समस्त प्राणियों में सब से अधिक मूल्यवान् है अतः मनुष्य की भी बलि दी जाने लगी। मनुष्यों में भी जो प्रियतम समझे जाते थे जैसे कि पुत्र या पुत्री, उसको भी देवता की प्रसन्नता के लिये कुर्बान कर देते थे। यह प्रथा रोम, यूनान, पश्चिमी एशिया, भारतवर्ष आदि सभी देशों में अनेक रूपों में पाई जाती थी। देवी के सामने अपना सिर काट कर चढ़ा देना भी कहीं-कहीं देखा जाता है। यह प्रथा घोर निन्दनीय और मिथ्याज्ञान पर आधारित है। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु अज्ञान की तो कोई सीमा नहीं है। अज्ञानी पुरुष धर्म के नाम पर और ईश्वर के नाम पर हर प्रकार की वीभत्स तथा हत्यारी प्रथाओं को करने के लिये विवश हो जाता है। मूर्त्ति पूजक तो देवी देवताओं को मानने वाले हैं। उनका विश्वास है कि देवी देवते बलि के मांस के इच्छुक रहते हैं। कलकत्ते की कालीमाई तो विख्यात है। कुछ पुजारी और पण्डे यह भी मशहूर कर देते हैं कि बलिदान किया हुआ पशु सीधा स्वर्ग को जाता है परन्तु आश्चर्य और खेद उन लोगों पर है जो मूर्तिपूजन के विरुद्ध हैं और रुधिर-प्रिय देवी देवताओं को भी नहीं मानते। ईश्वर को एक महती और विशाल शक्ति मानते हैं जिसको न खाने की आवश्यकता है न पीने की। 'खुदा को न तो जानवरों का गोश्त पहुँचता है न खून। अपितु मनुष्य की धर्म-परायणता।'* (सूरत 'हज', आयत ३७)

* लय्यँनालल्लाह लुहूमहा व ला दिमाऊहा। व लाकिन् यनालहुत्तक़्वा। (हज ३७)

फिर मौमिन् (ईमानदार मुसल्मान) लोग कैसे सहन करते हैं कि मिथ्यामतों की यह प्रथा उनमें बनी रहे ? हज़रत इब्राहीम का शुभ नाम इस बुरी प्रथा के साथ में सम्बन्धित है। कहते हैं कि हज़रत इब्राहीम ने अपने प्रिय पुत्र इस्माईल को क़ुर्बान कर दिया था। हम भी उन्हीं का अनुकरण करते हैं। मांसाहारी आगन्तुकों के लिये पशु मारे जाते हैं। ईश्वर तो मांसाहारी नहीं फिर ईश्वर का कौन सा काम अटका है जो नर-बलि से पूरा किया जाय ? हज़रत इब्राहीम ने अपने बाप दादों की मिथ्यावादिता अर्थात् मूर्ति पूजन को त्याग दिया था इसके लिये उनको कष्ट भी झेलने पड़े। फिर आश्चर्य है कि उन्होंने पशु बलि की इस पुरानी प्रथा को क्यों जारी रक्खा ? पुराने प्रभावों को बड़े लोग भी कठिनाई से छोड़ पाते हैं। हज़रत इब्राहीम के पास कोई फ़रिश्ता ऐसा पैग़ाम नहीं लाया कि क़ुर्बानी करना धार्मिक कर्तव्य है। उन्होंने केवल स्वप्न में देखा था कि क़ुर्बानी का हुक्म हुआ है। यह स्वप्न केवल पुराने सुने सुनाये क़िस्सों के कारण था। हर मुसल्मान को तो यह स्वप्न होता नहीं। स्वप्न तो स्वप्न ही है। केवल स्वप्न, केवल दिमाग़ की कमज़ोरी। उसके प्रभाव में हज़रत इब्राहीम अपने प्रियतम पुत्र को बलि चढ़ाने पर राज़ी हो गये। ईश्वर ने उनको इस प्रकार की अस्वाभाविक परीक्षा में क्यों डाला ? वास्तविक बात क्या थी ? इतनी पुरानी बात का अनुसन्धान भी कैसे हो ? हज़रत इस्माईल तो बच गये। इस के सम्बन्ध में लोगों ने बीसियों कहानियाँ गढ़ ली हैं। और क़ुरान शरीफ़ में बौद्धिक स्तर पर कोई जाँच नहीं की गई। जनता में फैली हुई कहानियों को कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ कह दिया गया है। और मुसल्मान लोग केवल अन्ध विश्वास से बिना प्रबल प्रमाणों के उनको मान लेते हैं। परन्तु इस सब के होते हुये भी यह सिद्ध नहीं होता कि मुसल्मान लोग इब्राहीमी

शरीअत की पाबन्दी करते हैं। हज़रत इब्राहीम ने अपने प्रिय पुत्र की बलि देनी चाही थी। मुसलमान लोग कुछ थोड़े से पैसे खर्च करके एक बेचारे पशु की बलि चढ़ा देते हैं। और उस के मांस को अपने मित्रों में बाँट देते हैं। यह कुर्बानी तो नहीं। केवल क़ुर्बानी का नाटक है और वह भी बड़ी हत्या के रूप में। एक ओर तो एक-ईश्वर-वाद और अध्यात्म का दावा, दूसरी ओर पवित्र मसजिदों और उपासनालयों में क़साइयों के काम! दूसरों के उपकार के लिये मनुष्य यदि अपने निज हितों को त्याग दें तो यह सच्ची कुर्बानी (आत्म-त्याग) हो सकती है। ऐसी कुर्बानी (त्याग) से अल्लाह का सामीप्य (कुर्ब) प्राप्त होता है। परन्तु 'रहमान' और 'रहीम' अल्लाह के बन्दे बेचारे बेज़बान जानवरों को मारकर अल्लाह को खुश करना चाहते हैं। हज़रत इब्राहीम की शरीअत में बहुत सी अच्छी बातें हैं उनका अनुपालन नहीं किया जाता। इस्लाम धर्म के मानने वालों के लिये यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

(३) *काबे का सम्मान*—काबे का इतिहास हज़रत इब्राहीम के इतिहास से सम्बद्ध है। हज़रत इब्राहीम मक्के के रहने वाले न थे। केवल देश-निर्वासन के समय मक्के से गुज़रे थे। और कहा जाता है कि उन्होंने काबे की नींव डाली। काबा क्यों बनाया गया? और उसने कैसे उन्नति की? 'काबा' शब्द के लिये हिन्दी पर्याय है 'घेरा या घेर'! काबा भी एक घेरा (अहाता) था। वह शायद इसलिये बनाया गया हो कि कुछ लोग वहाँ एकत्रित होकर उपासना कर सकें या अन्य अच्छी बातों पर विचार कर सकें। हज़रत इब्राहीम मूर्तिपूजक न थे। इसलिये काबा के भीतर मूर्तियों का प्रवेश केवल इब्राहीमी संविधान के विरोध का ही परिणाम रहा होगा। हज़रत मुहम्मद साहेब के समय में काबे में बुत (मूर्तियाँ) थे। जिनको हज़रत मुहम्मद

साहेब ने काबे पर क़ब्जा करने के बाद उठा कर फेंक दिया। परन्तु यह आश्चर्य है कि काबे का सम्मान पूर्ववत् वैसा ही बना रहा जैसे किसी देवालय का होता है। मूर्तियाँ निकाल दी गईं। परन्तु काबे की हर ईंट देवता बन गई। मूर्तिपूजा न सही भवन-पूजा सही। अल्लाह की पूजा में मकान की पूजा भी ऐसी ही बाधक है जैसी मूर्ति-पूजा। शायद हज़रत इब्राहीम का कदापि यह आशय न था कि उनकी उम्मत असली तालीम को बिगाड़ कर तमाशा बना लेगी। परन्तु हम देखते हैं कि जैसे हिन्दू लोग काशी के मन्दिरों के दर्शन के लिये जाते हैं और मन्दिरों की परिक्रमा करते हैं इसी प्रकार मुसल्मान भी करता है। काबे की परिक्रमा की जाती है। हज की बहुत सी सहायक क्रियायें मूर्ति-पूजन के समान हैं। यों कहिये कि बिल्कुल एक सी हैं। हज़रत मुहम्मद साहेब ने भी काबे पर कब्जा करने की कोशिश में उन क्रियाओं को जारी रक्खा। शायद इसका कारण यह हो कि हज़रत मुहम्मद साहेब के उस युग के साथी उन रस्मों को बिल्कुल छोड़ न सकते होंगे और हज़रत मुहम्मद साहेब ने अवसरोचित समझकर उनको रहने दिया हो। परन्तु वर्तमान स्थिति क्या है ? दुनियाँ भर के मुसल्मान काबे की ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ते हैं। ऐसी मूर्तिपूजा तो मूर्तिपूजक भी नहीं करते। क़ुरान शरीफ़ में आया है :—

'यह कोई नेकी नहीं है कि नमाज़ के वक्त अपने मुंह को पूर्व की ओर करो या पश्चिम की ओर।'* (बक़र १७७)

यह एक-ईश्वर-वाद की सच्ची शिक्षा है। हर दिशा ईश्वर की है। हर परमाणु ईश्वर का घर है। हर मनुष्य का हृदय बैतुल्लाह है।

---

* लैसल् बिर्र अन् तवल्लू वुजूहकुं क़ब्लिल् मशरक़ि वल् मग़्रिबि। (बक़र १७७)

एक कवि ने मुसल्मानों की प्रचलित प्रथा पर विनोद करते हुये लिखा है :—

जाहिद ! शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर।
या वह जगह बता कि जहाँ पर ख़ुदा नहीं।

मेरा इस शेर पर यह प्रत्युत्तर है :—

ए रिंद, पी शराब जहाँ चाहें बे धड़क।
दिल में ख़ुदा नहीं तो कहीं भी ख़ुदा नहीं।

काबे की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ना या काबे को 'क़िबला' या बैतुल्लाह (ख़ुदा का घर) कहना तौहीद परस्ती के बिल्कुल विरुद्ध हैं और इब्राहीमी शरीअत के भी विरुद्ध है। मैं यह नहीं कहता कि मानवी संस्कृति में ईंटों के मकान का कोई मूल्य नहीं। मनुष्य की रक्षा के लिये मकान चाहिये। सुदृढ़ विशाल और सुन्दर मकान चाहिये। सुख-प्रद मकान चाहिये। परन्तु सबसे बड़ी शर्त यह है कि मानवी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हों। मूर्तिपूजकों के देवालयों को देखिये। केवल जड़ मूर्तियों के लिये तो विशाल भवन हैं और मनुष्यों के लिये तंग कोठरियाँ। काबे में भी वही बुत-परस्ती है। संग-असवद (काले पत्थर) का चुम्बन कीजिये। परिक्रमा कीजिये। मुजाविरों को भेंट दीजिये। और जो विचारा दरिद्र मुसल्मान काबे तक नहीं पहुँच सकता उसके लिये यह आज्ञा है कि कम से कम काबे की ओर मुँह ही कर लिया कर।* इसको दीनदारी कहें या कुफ्र ?

चु कुफ्र अज़् काबा। बरख़ेज़द् कुजा मानद मुसल्मानी।
(जब काबे से ही कुफ्र या अधर्म खड़ा हो जाय तो मुसल्मानी कहाँ रहे ?)

---

* व मिन् हैसु ख़रज्त फ़ वल्लि वज्हक शतरल् मस्जिदिल् हरामि (बक़र १५०)

यदि काबे का कोई ऐसा विशाल भवन होता जहाँ देश विदेश के मुसल्मान आकर विश्व के कल्याण की बात सोचते या अन्तर्जातीय पार्लीमेण्ट होती तो भवन का होना भी उचित था। डाक्टर गुलाम जैलानी बर्क ने अपनी किताब 'दो कुराना' में कुछ अनुचित नहीं कहा :—

'आज हज एक रस्म बनकर रह गया हैं। वहाँ इन्सानों की एक भीड़ जमा हो जाती है जो चन्द हरकात (कृत्य) तोई ब करही सरंजाम देने के बाद वापिस आ जाती है। कोई नई भावना या जीवन के लिये कोई नई शिक्षा सीख कर नहीं आती। काबे के यह कर्तव्य किसी सीमा तक आक्सफर्ड और कैम्ब्रिज की यूनीवर्सिटियाँ सरंजाम दे रही हैं जहाँ दुनियाँ के हर कोने से विद्यार्थी जगत्-ग्रन्थ का पाठ पढ़ते हैं। (देखो 'दो कुरान' पृष्ठ २३)।

इससे पहले बर्क महोदय सूरत मायिदा की ९७ वीं आयत का प्रमाण देते हैं :—जअल अल्लाहोल् काबल् बैतुल् हराम।' इत्यादि इत्यादि।

इसके अनुवाद में विद्वान् लेखक ने लिखा है :—'अल्लाह ने संमान के घर काबे का पवित्र धार्मिक महीनों (जिनमें युद्ध बन्द करके जीवन की समस्याओं पर विचार करने का हुक्म दिया गया है। और क़लायद और तहायिफ़ की उम्मत के लिये संरक्षण का साधन बनाया है। (काबे के निर्माण का उद्देश्य यह है) कि तुम यह मालूम कर सको कि अल्लाह का ज्ञान पृथ्वी और आसमान को घेरे हैं और वह हर चीज को जानता है। लेकिन आज काबे में कोई ऐसा विद्यालय विद्यमान् नहीं जो अल्लाह के बेपनाह और हैबतनाक इल्म (औज़ान और मक़ादीर) की तरफ़ राहनुमाई कर सके।' (देखो 'दो कुरान' पृष्ठ २२)

बात तो स्पष्ट है। परन्तु मौलवी मुल्लाने तो बर्क साहब से

बहुत नाराज़ होंगे। क्योंकि जैसे मन्दिरों के पुजारी यह पसन्द नहीं कर सकते कि मूर्तियों की पूजा को त्यागने से उनकी जीविका में बाधा पड़े। इसी प्रकार काबे के मुजाविर लोग भी यह गवारा नहीं कर सकते कि भूमण्डल के मुसल्मानों की जो दौलत उनकी जीविका का साधन हो रही है उसकी ओर से मुसल्मानों का ध्यान हट सके।

काबा अल्लाह ने तो नहीं बनाया। खुदा इन्सानों के मकान नहीं बनाता। यह और बात है कि 'काबा' शब्द का प्रयोग आप सारी दुनियाँ के लिये करने लगें और इस शब्द का अर्थ अधिक व्यापी कर दिया जाय। परन्तु यदि सब मुसल्मान विद्वान सहमत हो जायं कि काबे का आशय है सारी दुनिया से तो 'हज' करना निरर्थक हो जायगा और मुजाविरों की जीविका फिर भी न रह सकेगी। संभव है कि हज़रत इब्राहीम ने काबे की नीव इसीलिये डाली हो और यदि आज 'बर्क' महोदय के प्रस्ताव को स्वीकार करके काबे को दर्शनालय न बना कर विद्यालय बना दिया जाय तो संसार का कल्याण होगा। लेकिन यह अंधेर गरदी कैसे दूर हो? क़ुरान शरीफ़ ने लिखा था कि 'सच आया झूठ भागा'। परन्तु काबे का इतिहास हज़रत मुहम्मद साहेब से लेकर आज तक अपनी आकृति से यही कह रहा है कि 'न सच आया न झूठ गया'। हज़रत मुहम्मद के समय में भी काबे के ऊपर लड़ाइयाँ होती रहीं। कभी मुसल्मान जीते, कभी उनके शत्रु जीते। मित्रों के आक्रमण हुये तो उन्होने काबे की ईंट से ईंट बजादी और जब शत्रु का बल बढ़ा तो उन्होंने भी काबे की पवित्रता को अपमानित किया। और जब मक्के पर मुसल्मानों को पूरा स्वत्व प्राप्त हो गया तो किसी न किसी रूप में मूर्तिपूजा का ही बोल बाला रहा। बर्क साहेब ने केवल एक इशारा किया है लेकिन इलाज आसान नहीं है।

'यह वह नशा नहीं जिसे तुर्शी उतार दे।'

हमने यहाँ इब्राहीमी संविधान के कुछ प्रथाओं को नमूने के रूप में दिया है। यदि मुसल्मान विद्वान् अपनी घरेलू रस्मों का निरीक्षण करेंगे तो उनको अन्य प्रथायें भी मिलेंगी जिनको उनकी मान्यताओं के भी विरोधी कहा जा सकता है और जिन का रोकना दीनदारों के लिये आवश्यक हैं। हज़रत इब्राहीम की प्रशंसा में एक मुसल्मान लेखक गर्व के साथ लिखता है :—

'इस प्रकार स्वयं हज़रत इब्राहीम का क़िस्सा जिनको अरब न केवल अपना बाप बल्कि दीन का पैग़म्बर आज़म समझते थे कई तरह से दुहराया उनकी तौहीद ख़ालिस, बुतों से नफ़रत, बुतशिकनी और बुतपरस्तों से अलहदगी, यहाँ तक कि बाप और ख़ानदान से बवजह उनके मुशरिक होने के सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने का हाल विस्तार के साथ वर्णन किया गया है (यहाँ इशारा कुरान शरीफ़ की ओर है) तथा दूसरे प्राचीन पैगम्बरों और उनकी उम्मतों की मिसालें दे देकर तौहीद का नफ़ा और मिथ्या पूजा की हानि को हृदयाङ्कित किया। बुतों के ऊपर पशुबलि चढ़ाई जाती थी उनको रोका। और जिस *पशु-बध पर अल्लाह का नाम न लिया जाय* उसको खाना हराम किया। यहाँ तक कि शरीयत ने हर एक काम में चाहे वह छोटे से छोटा क्यों न हो बिस्मिल्ला करने का हुक्म दिया जिससे मिथ्या उपास्य देवों का खयाल ही दिल में न आवे और शिर्क (कुफ्र) बिल्कुल मिट जाये।' (देखो सीरतुर्रसूल पृष्ठ ८९)

हज़रत इब्राहीम की जो प्रशंसा ऊपर दी गई है वह समुचित है परन्तु मुसल्मानों ने कुछ ऐसी प्रथायें अपने लिये बचा रक्खीं जिनसे हज़रत इब्राहीम के मौलिक उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती। जैसे यदि मूर्तियों के सामने चढ़ाये जाने वाले पशु-बध रोके गये तो ख़ुदा के नाम पर मारे जाने वाले पशु बध क्यों धर्म-विहित

समझे गये ? ऐसा करने से खुदा भी मूर्ति (देवतों) के समान मांसाहारी या रुधिर-प्रिय उपास्य देव सिद्ध हो गया। अपने लिये एक नियम और दूसरों के लिये दूसरा। यह न न्याय है न सचाई। पशुओं की कुर्बानी केवल नामों के आश्रित नहीं है कि काली माई के नाम पर चढ़ा वह अनुचित और खुदा के नाम पर चढ़ा वह उचित। कार्य तो वही रहा। केवल नाम का भेद हो गया। मनोवृत्ति भी वही रही अर्थात् ऐसा करने से स्वर्ग मिलेगा। इसको मुसल्मान लोग 'तकबीर' कहते हैं। लेकिन 'बिस्मिल्ला' का पवित्र वाक्य जिन कर्मों के साथ जोड़ दिया जाता है उनसे तो 'तकबीर' नहीं अपितु 'तसग़ीर' या 'तहक़ीर'* प्रकट होती है। कोई बुरा कर्म 'बिस्मिल्ला' कहने से शुभ नहीं हो सकता। क्या 'बिस्मिल्ला' कहने से चोरी अच्छा कर्म हो सकती है ? क्या बिस्मिल्लाह कहकर मारने से पशु को कष्ट न होगा। हत्या तो हत्या ही है। यहाँ शिर्क (ईश्वर के सिवाय दूसरे को पूजना) तो वैसा ही बना है। मिथ्या उपास्य देवी देवताओं का भाव मन से तो दूर नहीं हुआ। अपितु सत्य ईश्वर को असत्य देवतों में शामिल कर लिया गया। उचित तो यह था कि हज़रत मुहम्मद साहेब और क़ुरान शरीफ़ उसकी पूर्ति करते जिसको हज़रत इब्राहीम ने आरम्भ किया था और कई कारणों से उनमें त्रुटियाँ रह गई थीं। इनसे तो ईसाई अच्छे जिन्होंने कुर्बानी की प्रथा को निरर्थक समझ कर बन्द कर दिया। वह भी तो हज़रत इब्राहीम को अपना आदि-पुरुष या पैगम्बरों का पिता मानते हैं।

---

* जब पशु को मारते हैं तो 'बिस्मिल्ला' कह कर मारते हैं। इस कृत्य का नाम है 'तक्बीर।' तक्बीर का अर्थ है किसी कृत्य के महत्व को बढ़ा देना। परन्तु इससे महत्व कम होता है। 'तसग़ीर' का अर्थ है छोटा करना। 'तहक़ीर' का अर्थ है निन्दनीय घोषित करना।

अध्याय ३१

अरब का संगठन

हज़रत मुहम्मद साहेब के जीवन का सब से महत्त्वपूर्ण काम है अरब का संगठन। इसमें उनको दूसरे उद्देशों की अपेक्षा सब से अधिक सफलता प्राप्त हुई? यह काम सुगम न था। अत्यन्त कठिन था। इससे हज़रत मुहम्मद साहेब की बुद्धिमत्ता, धैर्य, साहस, वीरता, और नीति-नैपुण्य का पर्याप्त परिचय मिलता है। जब हज़रत मुहम्मद साहेब पैदा हुये तब अरब की दशा अत्यन्त बिगड़ी हुई थी। धर्म के विषय में लोग मिथ्यावाद में फंसे हुये थे। मूर्तिपूजा कोई परिमित या नियमित वस्तु नहीं है। यदि समस्त संसार के मूर्तिपूजक केवल एक ही देवता या एक ही मूर्ति के पूजने वाले होते तो भेद-भाव न होता। परन्तु हर सम्प्रदाय का एक विशेष देवता होता है और एक विशेष मूर्ति। एक देवता के पूजने वाले दूसरे देवते या दूसरी मूर्ति को द्वेष की दृष्टि से देखते हैं। इसलिये मूर्तिपूजा से सबसे अधिक लौकिक हानि यह होती है कि उनमें सदा लड़ाई झगड़े रहते हैं। सब देशों की मूर्ति-पूजा का यही परिणाम हुआ है। अरब का भी यही हाल था। यह बात नहीं कि मूर्ति-पूजकों में विद्वानों की कमी हो। या कारीगर न हों। मूर्तियों के बनाने में भी तो विद्या, बुद्धि कारीगरी की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु उपास्य देवों का बहुसंख्यक होना उपासकों को संगठित करने में सदैव असफल रहा है। फलतः अरब बहुत से सम्प्रदायों में विभक्त था। ईश्वर की एकता का दावा करने वाले युहूदी और ईसाई भी अरब में

विद्यमान् थे। परन्तु उनमें भी मूर्ति पूजा किसी न किसी मार्ग से घुस आई थीं। मरियम, ईसा तथा अन्यान्य सन्तों (शहीदों) की मूर्तियों से गिरजे भरे पड़े थे। काबे की मूर्तियों पर इनका क्या प्रभाव था ज्ञात नहीं। हज़रत मुहम्मद साहेब ने '*तौहीद*' (एक ईश्वर वाद) के नारे को उठाकर सब विभक्त दलों को एक कर दिया। अरब को यह एक ऐहिक लाभ हुआ और वह भ्रष्ट मार्ग से निकलकर उन्नत-मस्तक हो गया।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने किन-किन साधनों का प्रयोग किया यह अरब के इतिहास का एक लाभदायक अध्ययन है और इससे दूसरे देश भी लाभान्वित हो सकते हैं।

मक्का तथा अरब के दूसरे नगरों में यद्यपि विद्वान थे परन्तु उनको संख्या बहुत कम थी। और उनकी मनोवृत्ति सौफ़िस्तायी अर्थात् कुतर्कमयी थी। वह बाल की खाल तो निकाला करते थे परन्तु घटनाओं पर व्यावहारिक दृष्टि नहीं डाल सकते थे। काशी के पण्डितों की भी बहुत दिनों से यही दशा रही है। विद्या का कोई विभाग ऐसा न होगा जिसमें काशी के पण्डितों ने बुद्धि-वैचित्र्य का परिचय न दिया हो। परन्तु भारतवर्ष दिन प्रति दिन अधोगति को प्राप्त होता रहा। क्योंकि पण्डितों को बौद्धिक-व्यायाम से अवकाश न था। अरब के विद्वानों की भी यही अवस्था थी। वह अरब की सामूहिक प्रशासन पद्धति पर विचार नहीं कर सकते थे। शेष अरब प्रायः अशिक्षित था। उन्हीं की संख्या अधिक थी। अतः हज़रत मुहम्मद साहेब ने उनकी मानसिक प्रवृत्तियों का भली भाँति अध्ययन किया और इस्लामी धर्म को ऐसी दिशा में मोड़ दिया कि साधारण जनता को उनके साथ सहानुभूति हो गई।

प्रथम तो पैगम्बरी, *वही* फ़रिश्तों का आगमन तथा इलहाम को इस रूप में प्रस्तुत किया गया कि जनता उनकी श्रद्धालु हो

गई। और यदि तीव्र-बुद्धि लोगों ने संदेह भी किया तो वह जनाधिक्य की शक्ति के समक्ष चुप रह गये। या बलात् चुप कर दिये गये।

धार्मिक दृष्टि से अरब के दो स्थूल दृष्टिकोण थे। एक मूर्तिपूजक, जो किसी विषय में भी एक मत न थे। और न हो सकते थे। अतः हज़रत मुहम्मद साहेब ने उनको तो पूर्णतया त्याग दिया। दूसरा था *इब्राहीमी दृष्टिकोण* जिसके प्रतिनिधि थे युहूदी और ईसाई। यद्यपि उनमें भी कोई मतैक्य न था परन्तु हज़रत मुहम्मद साहेब की दूर-दृष्टिता ने यह ताड़ लिया कि विरोधी होते हुये भी इनके एकीकरण का काम सुगम है। इसलिये कुरान में अधिकतर दो कोटियों के कथानकों की भरमार है एक तो नबियों के सफलता के। और दूसरे बुतपरस्तों के विनाश के।

सीरतुर्रसूल के पृष्ठ ८८ पर लिखा है :—

'सबसे अधिक हज़रत मूसा और फ़िरऔन के किस्से का ज़िक्र कुरान में है। मुश्किल से कोई मक्की सूरत ऐसी मिलेगी जो इससे ख़ाली हो। क्योंकि बनी इस्राईल (इस्राईल वंश के लोग) भी जाहिल और अरब वालों के समान बुतपरस्ती और शिर्क के शैदाई थे। और फ़िरऔन जिसने ख़ुदाई का दावा किया था तौहीद इलाही का सबसे बड़ा शत्रु था।'

यह दृष्टान्त चूँकि मुहम्मद साहेब और उनकी जाति के समान था इसलिये कुरान ने इसको बार-बार भिन्न-भिन्न रूपों में समझाया।' (पृ० ८९)

हम लेखक के इस मत से सहमत हैं। इससे कुरान का '*इलहामीपन*' तो सर्वथा मिथ्या ठहरता हैं क्योंकि ईश्वर के अनादि और अनन्त (दिक्-कालानन्त) नियमों का इन ऐतिहासिक

कहानियों से क्या सम्बन्ध ? और न लौहि-महफ़ूज (अमर-पट्टिका) से इसका कोई सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। परन्तु यह कहानियाँ मुहम्मद साहेब और उनकी जाति की परिस्थिति के सर्वथा समान थीं। और उनकी आवश्यकता को पूरा करती थीं। हज़रत मूसा '*नबी*' थे। हज़रत मुहम्मद भी '*नबी*' थे। फ़िरऔन 'नबी' का शत्रु था अतः उसका नाश हो गया। अरब के काफ़िर लोग भी हज़रत मुहम्मद के शत्रु थे अतः उनके विनाश की भविष्य वाणी की गई या धमकी दी गई। साधारण जनता में ऐसी धमकियाँ तुरन्त काम करती हैं। दूसरे देशों में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं। अरब की जनता ने मुहम्मद साहब का नेतृत्व स्वीकार किया। जिन्होंने विरोध किया उनके विषय में कई बार आया है कि देखो पहले नबियों के साथ भी लोगों ने यही बर्ताव किया था। और चूँकि वह झूठे थे इसलिये यह भी झूठें हैं। यह न्याय शास्त्र की युक्ति तो नहीं है परन्तु नैतिक तर्क तो है ही। यह कहानियाँ लगभग वही हैं जो युहूदियों और ईसाइयों में प्रचलित थीं। यदि कहीं आंशिक भेद है और यदि इस ओर किसी ने सन्देह प्रकट किया तो उसके लिये कुरान शरीफ़ का यह बार-बार कहा हुआ वाक्य पर्याप्त था कि 'तुम अधिक जानते हो या अल्लाह।' इससे भी हज़रत मुहम्मद साहेब की नीति-निपुणता का परिचय मिलता है।

यह तो एक मानी हुई बात है कि अरब के लोग अधिकतर अनपढ़ और मूर्ख थे। यह भिन्न-भिन्न दलों और जातियों में बटे हुये थे। और निरन्तर एक दूसरे से लड़ते रहते थे। कोई नियंत्रित शासन न था। शस्त्र ही उनका शास्त्र था। ऐसे कलह-प्रिय लोगों के लिये कुछ प्रलोभन भी चाहिये। धन, धरा और स्त्री (ज़र, ज़मीन और ज़न) यह तीन चीजें सदा ही युद्ध-प्रिय लोगों के लिये लालच की वस्तु रही हैं। सूरत 'अनफ़ाल' में

लूट के माल का उल्लेख है। हज़रत मुहम्मद अपने देश वालों को रग रग से वाक़िफ़ थे। उनकी नब्ज़ पर हर वक्त उनका हाथ रहता था। इसलिये उन्होंने ऐसे नियम बनाये कि लूट के माल का एक नियत भाग तो केन्द्रीय कोष में रक्खा जाय परन्तु अधिकांश सिपाहियों में बाँट दिया जाय। इससे सिपाहियों को आगे बढ़ने के लिये अवसर मिलता है। परन्तु ऐसी कोई लड़ाई नहीं होती जिस में कोई न कोई मारा न जावे। जो जीवित बचे उन को तो लूट का माल मिला। जो मर गये वह विचारे कैसे सन्तोष करते? अतः हज़रत मुहम्मद साहेब ने कुरान शरीफ़ में ऐसे शहीदों के लिये पर्याप्त प्रबन्ध किया है। जो अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं वह भी कुछ टोटे में नहीं हैं। उनके लिये स्वर्ग है। इस स्वर्ग का चित्र भी स्थान-स्थान पर बड़ी मनमोहक भाषा में खींचा गया है। संभवतः हर युद्ध के आरंभ में सैनिकों को यह समझाया गया है कि यदि बच गये तो गाज़ी (यशस्वी) होगे और लूट के माल में तुम्हारा भाग होगा और यदि मारे गये तो उससे भी अधिक लाभ होगा। जो मजे तुम को संसार में मिल नहीं सकते वह स्वर्ग में प्राप्त होंगे। बिना कांटों के बेर (सिद्रे मख़ज़ूद), तर-ऊपर लटकते हुये केले (तलह मंज़ूद), लम्बे लम्बे छाया वाले स्थान, पानी के झरने, फलों के बाग, ऊँचे-ऊँचे पलंग, अप्सरायें (हूरें) और कुंवारी लड़कियाँ, प्यारी और अपनी ही आयु वाली डेरों में बैठी हुई ललनायें, मोती की लड़ियों जैसी बड़ी-बड़ी आँखों वाली प्रमदायें। युवा सैनिकों के लिये इस से अधिक लोभायमान और क्या चाहिये। सुनने मात्र से मन में गुदगदी उत्पन्न हो जाती होगी। और प्राण देने में भी रस आ जाता होगा।

पस अज़ मुर्दन बनाये जायंगे प्याले मिरी गिल के।
लबे जां बख्श के बोसे मिलेंगे खाक में मिलकर।

'जब मैं मर जाऊँगा तो मेरे शरीर की मिट्टी से प्याले बनेंगे। जब मेरी प्रिया उस प्याले से कुछ पियेगी तो मुझे उसके होंठों का चुम्बन करके आनन्द मिलेगा।'

स्वर्ग का यह प्रलोभन अधिकतर 'सूरत रहमन', 'सूरत वाकिआ' आदि मक्की आयतों में है क्योंकि नये रंगरूटों को भरती करने का तो यही समय था। मुहम्मद साहेब के विरोधी अधिक थे और साथी कम थे। जब शक्ति बढ़ गई और मदीने के विजयी अधिक हो गये तो आयतों का रूप भी अवसरोचित बदलता गया।

परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि हज़रत मुहम्मद कोरे नीतिज्ञ न थे। योग्य सेनापति और वीर भी थे। उस युग के युद्ध ईसा की वर्तमान बीसवीं शताब्दी की भाँति हवाई जहाजों और बमों के युद्ध न थे। केवल महलों में बैठ कर दाव पेच सोचते रहने से काम नहीं चलता था। उस युग में तो वही सेनापति सफल हो सकता था जो अपनी जान पहले जोखों में डाल सकता हो। इस बात में हज़रत मुहम्मद साहेब कभी पीछे नहीं हटे। 'अहद' के युद्ध में बहुत से भारी घाव आये। दाँत टूट गये, गालों में तीर घुस गये। परन्तु वह घबराये नहीं। इस बात ने उनके साथियों के हृदय में उनका मान बढ़ा दिया।

हज़रत मुहम्मद साहेब ने एक और रण-परक नियम को खोज निकाला। कोई नया विजेता पुराने प्रतिष्ठा-सम्पन्न लोगों पर भरोसा नहीं कर सकता। जो पहले से ही शक्तिशाली और गौरव-प्राप्त है वह दूसरे को अपनी रक्षा का साधन तो बना सकते हैं परन्तु उसको उभरने देना पसन्द नहीं कर सकते। मुहम्मद साहेब थे नये विजेता। कुरैश-वंश के लोग थे उनके सम्बन्धी। परन्तु बन्धुवर्ग ही तो प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। और

घातक प्रतिद्वन्द्वी भी।* वह देख चुके थे कि क़ुरैश-वंशी उनसे बड़ी शत्रुता रखने लगे थे। इसलिये उन्होंने निचले वर्गों से सहायता लेनी आरम्भ कर दी। ऊँच-नीच का भाव मिटा दिया गया। जो इस्लाम धर्म स्वीकार करे वही ऊँचा है। चाहे कितने ही नीच परिवार में क्यों न जन्मा हो। वही नीच है जो इस्लाम धर्म का विरोधी है चाहे वह कितने ही ऊँचे परिवार में क्यों न जन्मा हो। यदि मुहम्मद साहेब हिजरत न करते (मक्का छोड़कर मदीने न भाग जाते) तो उनको मदीने के साधारण वर्ग और निचले परिवारों की सहायता न मिल सकती। और वह मक्के वाले प्रतिष्ठत परिवारों के साथ ही लड़ते भिड़ते रहते। मदीने वालों ने उनकी समग्र योजनाओं का रंग बदल दिया। और आठ वर्ष के घोर तथा निरन्तर युद्ध के पश्चात् वह मक्के पर आधिपत्य प्राप्त कर सके।

एक योग्य सेनापति अपने साथियों की छोटी संख्या से भी बड़े-बड़े युद्धों में विजय प्राप्त कर लेता है। और पराजित होने पर भी कोई ऐसी बात खोज निकालता है कि उसका विरोधी अपनी विजय का अधिक लाभ न उठा सके। इसके लिये हज़रत मुहम्मद साहेब के पास दो साधन थे। प्रथम तो जब उनके थोड़े सिपाही बड़ी भीड़ के समक्ष आते तो उनको कहा जाता था कि मत डरो। अल्लाह ने फ़रिश्ते तुम्हारी सहायता के लिये भेज दिये हैं इसलिये शत्रु को तुम्हारी संख्या जितनी है उससे कई गुनी दिखाई पड़ती है। फ़रिश्तों की सहायता का शुभ संदेश सुनकर उनके साथियों का हौसला बढ़ जाता था। दूसरे, यदि कभी हार हो जाती तो झट कोई न कोई ऐसी आयत उतर

---

* संस्कृत भाषा का भ्रातव्य शब्द स्वर भेद से बन्धु और शत्रु का पर्याय हो जाता है।

आती जिससे प्रकट होता कि यह हार तुम्हारी किसी त्रुटि या अभिमान का परिणाम है। और अल्लाह तुम्हारी परीक्षा लेता है। भविष्य में तुम अवश्य जीतोगे क्योंकि अल्लाह को तुमसे प्रेम है।

कई वर्षों के रणसम्बन्धी उतार चढ़ाव के पीछे जब मक्का मुहम्मद साहेब के हाथ में आ गया तो स्वभावतः सम्पूर्ण अरब देश में उनकी धाक बैठ गई। और उन्होंने अपने जीवन का शेष भाग अरब की भीतरी त्रुटियों को दूर करने और संगठन को सुदृढ़ बनाने में व्यतीत किया। नये-नये सामाजिक नियम निर्धारित किये गये। पुरुषों और स्त्रियों के अधिकारों का संशोधन किया गया। दासों (गुलामों) के साथ नरम व्यवहार किया गया। मदनी सूरतों में पदे-पदे इन संशोधनों का विस्तार से वर्णन है। मुसल्मानों से अनुरोध किया गया कि जन्म, रंग, देश अथवा अन्य प्रकार के भेद भाव छोड़कर परस्पर प्रेम करें। 'अहद' का युद्ध ही शायद एक सब से बड़ा युद्ध था जिसमें मुसल्मानों की सब से बड़ी हार हुई। उनके चुने हुये वीर पुरुष मारे गये। परन्तु मुहम्मद साहेब ने बड़े भारी चातुर्य्य से सन्धि करली। और ऐसी शर्तों के साथ कि शत्रु को विजय से कुछ अधिक लाभ नहीं हुआ। न वह उनके मार्ग में भविष्य में कुछ रुकावट उत्पन्न कर सका। यदि हम मुहम्मद साहेब को केवल अरब के शासन तक ही परिमित रक्खें तो हम कह सकते हैं कि 'सिकन्दर आज़म' के समान मुहम्मद साहेब भी 'मुहम्मद आज़म' के पद के अधिकारी हैं। उन्होंने न केवल शत्रुओं पर ही विजय पाई अपितु अपने मित्रों को इतना शक्तिशाली कर दिया कि उनकी मृत्यु के उपरान्त वह दूसरे देशों पर भी विजय प्राप्त कर सके। यह बहुत बड़ी बात है। एक नीतिज्ञ नेता की योग्यता का अनुमान केवल उसके जीवन की चमक दमक से ही नहीं लगता। अपितु उसके मरने के पीछे भी उसका प्रभाव रहता है।

अध्याय ३२

नीति-चतुष्टय

भारतवर्ष की प्राचीन नीति की पुस्तकों में चार विशेष नीतियों का वर्णन मिलता है, जिनका संसार के विजेताओं ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रयोग किया है। इनको लोक भाषा में कहते हैं साम, दाम, दण्ड, भेद। संस्कृत में इनका नाम था साम, दान, दण्ड, भेद। हिन्दी वालों ने 'दान' के स्थान में 'दाम' बना लिया। क्योंकि हिन्दी में 'दाम' का अर्थ है 'पैसा'। 'छदाम' शब्द में 'दाम' यही अर्थ देता है। (छः दामों के सिक्के को छदाम कहते थे)।

स्वत्व की प्राप्ति का सब से पहला साधन है 'साम'। साम का अर्थ है 'मित्रतामय वार्तालाप' जिसको अंग्रेजी में आजकल कहते हैं निगोसियेशन (negotiation)। अर्थात् आरम्भ में इस प्रकार बातचीत की जाय और ऐसे माधुर्य के साथ कि शत्रु को विश्वास हो जाय कि आप उसके हितैषी हैं। और उसका कल्याण इसी में है कि वह आपकी बात स्वीकार करले और आपके अनुकूल हो जाय।

दूसरी नीति है 'दाम' या 'दान' की। अर्थात् उसको कुछ रुपया पैसा दे दिया जाय। लालच बुरी बला है। इसके कारण तो शहद की मक्खी शहद में पड़कर प्राण भी दे डालती है। संसार में अधिकतर लोग इसी धन के आधीन होते हैं। कोई नौकर अपने स्वामी का आज्ञा पालन नहीं करता अपितु उसकी थैली का दास होता है।

तीसरी नीति है 'दण्ड' या 'सजा'। कुछ लोग न मूर्ख होते हैं न लालची। वह मीठी बातों में भी गूढ़ रहस्य को ताड़ लेते हैं। और लालच न होने के कारण आप उनको धन देकर वश में नहीं कर सकते। इन पर स्वत्व प्राप्त करने के लिये दण्ड, सजा या कठोरता की आवश्यकता होती है। युद्ध इसीलिये किया जाता है। जो युद्ध में हार जाता है वह चाहे या न चाहे वश में तो हो ही जाता हैं। हृदय से न भी हो फिर भी शरीर से तो अधीनता माननी ही पड़ती है।

चौथी नीति है 'भेद'। अर्थात् कोई ऐसा उपाय ढूंढ़ना कि शत्रु के दल में अनबन हो जाय। जब किसी देश, जाति या वंश के लोग आपस में लड़ने लगते हैं तो शत्रु को सुगमता से विजय मिल जाती है :—

इस घर को आग लग गई घर के चिराग से।
झंझा प्रेरित गेह-दीप-शिखया गेहं गतं भस्मताम्।

हज़रत मुहम्मद साहेब जन्मना विजेता थे। उन्होंने इन चारों नीतियों का बड़ी दत्तता से प्रयोग किया। हम यहाँ उदाहरण रूप में उनके जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन करते हैं :—

अपनी पैगम्बरी के पहले तीन साल तक वह छिपे छिपाये ईश्वर की एकता और अपनी पैगम्बरी का अत्यन्त शान्ति और माधुर्य से प्रचार करते रहे। न किसी से लड़ाई, न शास्त्रार्थ, न झगड़ा। हम गत अध्यायों में 'साबिकीन अव्वलीन' अर्थात् मुहम्मद साहेब के चार पहले शिष्यों का वर्णन लिख चुके हैं अर्थात् हज़रत खुदैजा, हज़रत अली, हज़रत अबूबकर सिद्दीक़ तथा हज़रत जैद-बिन हारिस।

'हज़रत अबूबक्र ईमान लाने के बाद अपने साथियों को भी इस नये धर्म की प्रेरणा करते रहे। फलतः इनके परिश्रम से

हजरत उसमान बिन अफ़ान, जुबैर बिन् अवाम, अब्दुल रहमान बिन् औफ़, साद बिन् अबी वक़ास, तलह बिन् अब्दुल्ला, अबू उबैदा बिन् जर्राह, अबूसलमा, अरक़म मखजूमी, उबैदा बिन् हारिस, सईद बिन् जैद अपनी पत्नी फ़ातिमा बिन्त खि़ताब के साथ इस्लाम धर्म में प्रविष्ट हुये। (रजा अल्लाह······ईश्वर इन पर कृपा करे)। हज़रत मुहम्मद साहेब इनके साथ अरक़म मखज़ूमी के घर में जमा होते थे और वहाँ कुरान की तालीम देते थे।' (देखो सीरतुर्रसूल पृ० ६८)

इतने दिनों तक जनता को कुछ भी ज्ञात न था कि मुहम्मद साहेब चुपके-चुपके किसी बहुत बड़ी चीज की नींव डाल रहे हैं। एक बहुत बड़े इस्लामी बरगद का यह एक छोटा सा बीज था। जब मैं बर्मा की प्राचीन राजधानी मांडले की गलियों की मस्जिदों में कुरान की आयतों का पाठ सुनता था तो मुझको इस्लामी बरगद के उस विशाल वृक्ष पर आश्चर्य होता था कि कहाँ बर्मी और कहाँ अरबी-कुरान! परन्तु यह सब परिणाम था उस छोटे से बीज का जो अरक़म मखजूमी के छोटे से घर में बोया गया था। यह थी पहली नीति अर्थात् '*साम*'। इनके शिष्ट व्यवहार और सत्य प्रियता के सभी साथी तथा शिष्य प्रशंसक थे। न वह किसी को छेड़ते थे, न कोई उनको छेड़ता था। इस युग में कुरान की जो आयतें उतरी हैं उनमें ईश्वर की महत्ता को छोड़कर किसी अन्य सुधार का उल्लेख नहीं है। न किसी मिथ्या सिद्धान्त का। कुरान तो थी ही नहीं। केवल उसका आरम्भिक अंश था। क्योंकि सूरत 'अलक़' के पीछे बहुत दिनों तक कोई *वही* नहीं उतरी। और सूरत अलक में कोई ऐसी बात नहीं है कि किसी को कोई आपत्ति हो सके। सूरत अलक़ के बाद जो दूसरी आयत उतरी वह सूरत मुद्दस्सर है। 'दसर' का अर्थ है 'कम्बल' या 'पुराना कम्बल'। 'मुद्दस्सर' का अर्थ हुआ

'कम्बल ओढ़े हुये पुरुष' (कम्बल वाला)। तीन साल के अज्ञात प्रचार के पश्चात् जब हजरत मुहम्मद साहेब की शक्ति बढ़ गई तो उनको अपनी गुमनामी और कमजोरी पर खेद हुआ। और उनके हृदय ने उनको धिक्कारा। 'क्यों कम्बल ओढ़े पड़ा है ? इसे छोड़ और बाहर निकल। यदि कुछ काम करना है तो दुनियाँ का मुक़ाबिला कर।' समस्त सूरत मुद्दस्सर का यही सारांश है। उसको आप 'वही' कह सकते हैं अथवा एक साहसी पुरुष के हृदय की आवाज़। कोई सत्यनिष्ठ पुरुष इसको 'लौहे मह-फूज' (अमर-पट्टिका) का अंग तो कह नहीं सकता। न हज़रत जिब्राईल का पैगाम। 'वही' वही है जो हज़रत मुहम्मद साहेब की चिकीर्षा है। और हज़रत मुहम्मद साहेब की चिकीर्षा वही है जो 'वही' है। किसको पहला कहें किसको दूसरा ? जिस अवसर पर मुहम्मद साहेब को जो आवश्यकता अनुभूत होती है उसी के अनुकूल 'वही' (इलहाम) आ जाती है। यही नहीं कि 'वही' केवल पैगम्बर की चिकीर्षा के ही अनुकूल उतरे। उनके साथी लोगों की प्रस्तावनाओं के अनुकूल भी आयतें उतर आया करती थीं। तारीखुल कुरान के पृष्ठ ४१ को हम यहाँ शब्दशः नक़ल करते हैं जिससे हमारे कथन की संपुष्टि एक मुसल्मान विद्वान् की लेखनी से हो सके :—

'असबाबे—नजूल की एक क़िस्म मुवाफ़िक़ात सहाबा हैं। यानी कुरान में बाज़ आयतें ऐसी हैं जो सहाबा के क़ौल या ख़याल के मुताबिक़ नाज़िल हुई हैं। इनमें ज्यादातर 'मुवाफ़ि-क़ात उमर' हैं। बाज़ लोगों ने तो इसको इस क़दर वुसअत दी है कि इस पर जुदागाना किताब लिखी है। लेकिन खुद हज़रत उमर का बयान है कि तीन मआमलों में कुरान मेरी मंशा के मुताबिक़ नाजिल हुआ। और मैं और मेरा रब मुवाफ़िक़

हो गये ।'*

मैं कहा करता था कि काश मुकाम इब्राहीम हमारे लिये मसल्ला (प्रार्थना का स्थान) करार पाता । आं हज़रत इसका जवाब नहीं देते थे । यहाँ तक कि मेरी आरज़ू के मुताबिक़ यह आयत नाज़िल हुई :—

'और मुक़ाम इब्राहीम को नमाज़ की जगह बनाओ ।' (बक़र १२५)

'यह भी बारबार कहा करता था कि पवित्र बीबियों (हज़रत मुहम्मद की पत्नियों) को यदि परदे में रहने का हुक्म दें तो बहतर है । आ हज़रत खामोशी के सिवाय कुछ जवाब नहीं देते थे यहाँ तक कि आयत हिजाब नाज़िल हुई और मुसल्मानों की मातायें (रसूल की स्त्रियाँ) परदे में रहने लगीं ।

'इसी तरह जब रसूलल्लाह (सल्ल ल्लाह अलेहि व सल्लम) अपनी बीवियों से नाराज हो गये तो मैंने उन बीबियों से जाकर कहा था—'अगर नबी तुमको तलाक़ देदे तो उमीद है कि उसका रब उसको तुमसे बहतर बीबियाँ बदले में दे देगा' अल्लाह ताला ने यही आयत नाज़िल फरमाई ।'† (सूरत तहरीम आयत ५)

'इन तीन के अतिरिक्त 'बदर' के कैदियों आदि के विषय से सम्बन्ध रखने वाली और भी ऐसी आयतें हैं जिनको 'मवाफ़िक़ात-उम्र' कहते हैं अर्थात् वह हज़रत उमर की अभिलाषाओं

---

* तात्पर्य यह है कि आयतें 'उमर' की इच्छा पर भी उतर आती थीं । उमर ने चाहा कि काबा पूजा-मन्दिर हो जाय । सूरत बक़र की १२५ वीं आयत उतरी जिसमें काबे को नमाज़ का स्थान नियत किया गया :—'वत्तखिज_मिन्_मकामे इब्राहीम मइल्ला ।'

† 'असा रब्बहु इन्_ तल्लक़कुन्न अय्यंब्दलहु अज़वाजन्_ खैरन्_ मिन्_कुन्न' (सूरत तहरीम आयत ५)

की पूर्ति के लिये उतरी हैं। इसी प्रकार कुछ और भी सहाबा अर्थात् मुहम्मद साहेब के साथी थे जिनके विचार अथवा कथन के अनुसार आयतों का अवतरण हुआ है। इस मुवाफ़िकत (आनुकूल्य) की वजह यह है कि क़ुरान फ़ितरत इन्सानी (मनुष्य की प्रकृति) के बिल्कुल मुताबिक़ है। इसलिये इन ख़ास-ख़ास मौकों पर जो ख़यालात इन्सान के दिल में फ़ितरतन् पैदा हो सकते थे हुये। और क़ुरान की आयतों से मुताबिक़त् खा गये।'

इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि यदि क़ुरान शरीफ़ '*लौहि महफ़ूज़*' (अमर पट्टिका) अथवा विश्वव्यापी प्राकृतिक नियमों का संग्रह होती तो उसमें हज़रत मुहम्मद साहेब की सार्वजनिक या वैयक्तिक आवश्यकताओं का उल्लेख न होता या उपाय न होता। इस से जहाँ क़ुरान शरीफ़ के इलहामी (ईश्वर-वचन) होने का खण्डन होता है वहाँ मुहम्मद साहेब और उनके विश्वास-पात्र साथियों, उमर आदि, की बुद्धिमत्ता का भी परिचय मिलता है। हज़रत उमर ने काबे को प्रतिष्ठा का केन्द्र बनाया। हज़रत उमर ने मुहम्मद साहेब की पत्नियों की बेपरदगी को शंका की दृष्टि से देखा और परदे की प्रथा के प्रवर्तक हुये। मुहम्मद साहेब के घरेलू झगड़े को धमकी देकर शान्त किया। मुहम्मद साहेब की चार नीतियाँ अर्थात् साम, दाम, दण्ड और भेद यहाँ काम आ गईं। यदि मुसल्मानों के अन्ध-विश्वास को जो उन्होंने क़ुरानी इलहाम, फ़रिश्ते जिब्राईल के देव-दूतत्व, या लौहिमहफ़ूज़ के विषय में बना रक्खा है महत्व न दिया जाय तो मुहम्मद साहेब की बुद्धिमत्ता, नीति-निपुणता और व्यवहार कौशल्य इस प्रकार प्रकट हो जाती है जैसे राख के ढेर के नीचे छिपी हुई चिनगारी राख के ढेर को हटा देने से प्रकट हो जाती है। अन्ध-विश्वास का सब से बड़ा दोष यह है

कि लोग दो स्थलों पर दो ऐसी बातें कह जाते हैं जो परस्पर विरुद्ध होती हैं। उनको यह ध्यान भी नहीं रहता कि हज़रत उमर की प्रशंसा करने में कुरान के इलहामी होने का खण्डन होता है और कुरान को इलहामी मान लेने में हज़रत उमर की व्यवहार कुशलता का मूल्य घट जाता है। अस्तु। हम तो मुहम्मद साहेब और उनके साथियों के नीति-नैपुण्य को मानने वाले हैं। व्यवधान के रूप में हमने यहाँ हज़रत उमर की नीतिज्ञता का वर्णन कर दिया। वस्तुतः यह भी तो मुहम्मद साहेब की ही प्रवृत्तियों के अनुज थे।

जब हज़रत मुहम्मद साहेब अरक़म मख़्ज़ूमी के घर से बाहर निकले और इस्लाम को दुनियाँ के सामने ला खड़ा किया तो बहुत दिनों तक लोगों ने परवाह ही न की। हज़रत साहेब के परिवार वालों को भी न ज्ञान था, न अनुमान और न शंका। मुहम्मद साहेब ने अपने काम में पारिवारिक महत्ता का विशेष लाभ उठाया। हज़रत मुहम्मद साहेब के चाचा अबूतालिब उनसे स्नेह रखते थे। वह मुसल्मान नहीं हुये न उनको अपने भतीजे के पैगम्बर होने का विश्वास हुआ। परन्तु अन्ततोगत्वा थे तो वह मुहम्मद साहेब के चाचा ही। प्रिय चाचा, माननीय चाचा तथा रक्षक चाचा। चाचा की प्रतिष्ठा पर उनको भरोसा था। घर में भीतर-भीतर क्या बातें होती रहीं इनका ब्यौरा जानना संभव नहीं है। परन्तु जनता के समक्ष हम उनके चाचा को यह कहते पाते हैं कि मुहम्मद हमारा भतीजा है, हमारा खून है, हमारे हृदय का टुकड़ा है। यदि नबी हो तो अच्छा, यदि नबी न भी हो तो अच्छा! हमारे जीते जो कौन है जो मुहम्मद को हानि पहुँचा सके? या उनकी तरफ़ उँगली उठा सके? यदि मुहम्मद साहेब में कोई खोट भी होती तो भी उनके

परिवार वाले दूसरे विरोधी सम्प्रदायों को उनके विरुद्ध कार्यावाही न करने देते। यहाँ भी मुहम्मद साहेब नीतिज्ञता से काम लेते रहे। कभी-कभी जोश का प्रदर्शन भी कर देते थे। सिवाय अबूलहब और उसकी बीबी के जो शायद खब्ती थे समस्त परिवार वालों ने उनका पक्ष लिया। अबूलहब को मुहम्मद साहेब ने धमकी दी वह सूरत लहब से प्रकट है। और यह भी संभव है कि इनके मित्रों ने इन दोनों को नष्ट करने में कोई कसर उठा न रक्खी हो। यह मुहम्मद साहेब के 'दण्ड' का उदाहरण है जिसने दूसरों को काफ़ी भयभीत कर दिया होगा।

हज़रत मुहम्मद साहेब की नीति-निपुणता का एक सबसे बड़ा नमूना नीचे लिखा जाता है :—

जब मुहम्मद साहेब ने मूर्तियों पर आक्रमण किया और उनके विरोधी इतने अधिक बढ़ गये कि उनको अपनी और अपने साथियों की रक्षा विपत्ति में दिखाई पड़ी तो उन्होंने मक्का छोड़ने का निश्चय किया। सबसे पहले उसका ध्यान हबश की ओर गया। वहाँ का ईसाई राजा 'नजाशी' उदारता और न्याय के लिये प्रसिद्ध था। उन्होंने दस मर्द और चार औरतों की टोली हबश को भेजी। वहाँ उनको मक्के वालों के अत्याचार से संरक्षण मिल गया। धीरे-धीरे और लोग भी जाने लगे। मुहम्मद साहेब ने पहले ही से सोच रक्खा था कि प्रथम तो ईसाई लोग मूर्ति पूजन के विरोधी हैं, इसलिये मूर्ति पूजा के विरोधियों की सहायता करेंगे, दूसरे उन्होंने अत्यन्त दूरदर्शिता से 'मरियम की सूरत' को पहले ही से 'वही' बताकर उनके हवाले कर दिया। जब 'नजाशी' से लोगों ने मुसल्मानों की शिकायत की तो हज़रत जाफ़र ने जो इस टोली के अगुआ थे सूरत मरियम का आरम्भ का भाग सुना दिया जिसमें ज़करिया आदि की कहानी

थीं। 'नजाशो' ने कहा कि 'यह तो इंजीलही है। कुरान और इंजील में कोई भेद नहीं' इस प्रकार बला टल गई।

परन्तु उन्हीं दिनों हज़रत मुहम्मद साहेब के समक्ष एक और परिस्थिति आ खड़ी हुई जिससे लाभ उठाने का उन्होंने पक्का इरादा कर लिया। मदीने में इनके कुछ सम्बन्धी तथा सहायक रहते थे। इनके पिता जो की क़ब्र मदीने में ही थी। सौभाग्य से उन दिनों मदीने के दो सम्प्रदाय 'ओस' और 'खज़रज' शक्तिशाली तथा एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे। निरन्तर लड़ाइयाँ होती रहती थीं। मुहम्मद साहेब ने इन शत्रुताओं को गनीमत समझा और भेद की नीति से काम लिया। जब इन क़बीलों के लोग मक्के जाते तो मुहम्मद साहेब और उनके मित्र उनसे बातचीत करते थे। 'ओस' का दल कमजोर था। परन्तु 'बआस' के युद्ध में उनकी जीत हो गई। 'खज़रज़' हार गये। अब मुहम्मद साहेब ने 'खजरज' वालों से बातचीत शुरू की। दोनों क़बलों के कुछ लोगों को जो मक्के में गये हज़रत मुहम्मद ने यह समझाया कि 'तुम दोनों लड़ाइयाँ समाप्त कर दो, मुसल्मान हो जाओ! हमको बुला लो और हमारे झण्डे के नीचे काम करो।' उनकी समझ में यह बात आ गई। कुछ दिनों बातचीत चलती रही। दोनों कबीलों की आपस की लड़ाई ने मदीने वालों को कठिनाई में डाल रक्खा था। मदीने में यहूदी भी थे।

इधर मुहम्मद साहेब के प्रति भी मक्के में बहुत शत्रुता थी। मक्के में रह सकना असंभव सा हो गया था। अतः जब एक वर्ष की निरन्तर बातचीत के पश्चात् कुछ लोग हज करने के लिये मक्के गये तो मुहम्मद साहेब ने एक वफ़ादार साथी 'मसअब' को हाजियों के साथ मदीने भेज दिया। 'मसअब' बहुत बुद्धिमान और व्यवहार कुशल थे। उन्होंने मुहम्मद साहेब की ओर

लोगों का ध्यान आकर्षित किया और पहले तो 'असीद बिन् ज़ुज़ीर' और 'सअद बिन् मआज़' मुसलमान हुये और फिर शनैः-शनैः मदीने में मुहम्मद साहेब के भक्त बढ़ने लगे। पैगम्बरी के १३ वें वर्ष मदीने से बहुत से लोग हज के लिये आये। इनमें कुछ मुसल्मान भी थे और अधिकतर गैर-मुसल्मान। हज़रत मुहम्मद साहेब ने मदीने जाने का संकल्प किया। और इन हाजियों ने जिनकी संख्या शायद ७५ थी उनकी वफ़ादारी की शपथ खाई। और हज़रत मुहम्मद साहेब छिपे-छिपे मक्का छोड़कर कई मरहले पार करते हुये २० सितम्बर ६२२ ईसवी को 'क़िबा' में पहुँच गये जो मदीने के निकट है। तथा चार दिन वहाँ ठहरकर २४ सितम्बर को मदीने में दाख़िल हो गये। सम्वत् हिजरी इसी तारीख़ से शुरू होता है। अर्थात् ६२२ ईसवी और हज़रत मुहम्मद साहेब के जन्म के ५१वें वर्ष में।

मदीना पहुँचना तो सुगम था परन्तु वहाँ जम जाना कठिन था। वहाँ भी हज़रत मुहम्मद साहेब ने नीतिज्ञता से काम लिया वही चार नियम, साम, दाम, दण्ड, भेद, उनकी नीति के मूलाधार थे। मदीने के यहूदी एक ऐसा वर्ग था जिससे हज़रत मुहम्मद साहेब को शंका थी। इसलिये सबसे पहले उनसे सन्धि करने का यत्न किया गया। और सन्धि की यह धारायें निश्चित हुईं कि विरोधियों के विरुद्ध दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे। और मक्के के कुरैशियों का पक्ष न लेंगे और यदि युहूदियों और इतर लोगों के बीच में कुछ झगड़ा हो जाय तो उसका निर्णय मुहम्मद साहेब के हाथ में होगा।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि मदीना मक्के से बौद्धिक तथा विद्या सम्बन्धी योग्यता में बहुत पीछे था। नीच और ऊँच, छोटे और बड़े का झगड़ा भी रहता ही था। मुहम्मद साहेब ने जहाँ

ऊँचे घरानों से मित्रता की वहाँ जनता के निम्न वर्ग को भी अपनी ओर मिलाया जिससे कि मक्के के शत्रुओं से लोहा ले सकें। इसमें मुहम्मद साहेब को बहुत बड़ी सफलता मिली। मदीना श्रीमान् की राजधानी बन गया। यहाँ से बैठे-बैठे वह मक्का-विजय की योजनायें सोचने लगे। परन्तु मक्के को जीतना सुगम न था। मक्के वालों की ही शत्रुता ने उनके पैर उखाड़ दिये थे। इस खींचातानी में आठ वर्ष लग गये। लगातार बड़ी-बड़ी और छोटी-छोटी लड़ाइयाँ होती रहीं। यदि 'बद्र' के युद्ध में मुसल्मान जीत गये तो 'अहद' के युद्ध में मक्के वालों ने मुसल्मानों को पछाड़ दिया। कहते हैं कि 'अहद' की लड़ाई में मुहम्मद साहेब के बड़े पराक्रमी योद्धा मारे गये। और यदि मुहम्मद साहेब का धैर्य साथ न देता तो मुसल्मानों का नाम निशान भी शेष न रहता। हम यहाँ इन युद्धों का विस्तृत वृतान्त देना नहीं चाहते। इतिहास इन वृतान्तों से भरे पड़े हैं। और यद्यपि मुसल्मान इतिहास-लेखकों ने धार्मिक रंग भी मिलाया है फिर भी ऊपरी घटनाओं से पता चल जाता है कि वास्तविकता क्या है? मुहम्मद साहेब का जासूसी विभाग बहुत प्रबल था। उनके गुप्तचर उनको सब खबरें पहुँचाते रहते थे। मक्के वाले थे तो लड़ाके। परन्तु मुहम्मद साहेब के दमाग़ को नहीं पहुँच सकते थे। मदीना वालों की शक्ति बढ़ती जाती थी। हर लड़ाई में कुछ लूट का माल हाथ आ जाता था। लड़ाइयों के द्वारा मक्के की दौलत धीरे-धीरे मदीने में आ रही थी। सन् ६ हिजरी के शअबान मास में जब बनो मुस्तलक़ को हराया गया तो उनका माल, उनके बाल बच्चे और उनकी स्त्रियाँ सब मुसल्मानों को लूट में मिलीं और उन्हीं को बाँट दी गईं। उनका रईस था हारिस। उसकी बेटी 'जवैरिया' से मुहम्मद साहेब ने स्वयं निकाह किया। और जवैरिया के सम्बन्धियों के साथ

अच्छा व्यवहार किया। हुनीन की लड़ाई में जो मक्का-विजय के एक साल पीछे हुई मुसल्मानों को लूट में छः हजार औरतें और बच्चे, चौबीस हजार ऊँट, चालीस हजार बकरियाँ और चार हजार औक़ियाँ* चाँदी मिलीं। मुसल्मान सिपाही इससे अधिक क्या चाहते थे? परन्तु मुहम्मद साहेब की नीति-निपुणता का सब से बड़ा रहस्य यह था कि वह अपने आदमियों को भी इतना बढ़ाना नहीं चाहते थे कि वह उनके वश से बाहर हो जायं और यह समझने लगें कि जो विजय मुहम्मद साहेब को प्राप्त हुई वह हमारी बदौलत है। अतः जय के पश्चात् भी और पराजय के समय भी वह कोई ने कोई दैवी संदेश (आयत) सुना देते थे जिससे हार की दशा में उत्साह कम न हो और विजय के अवसर पर अभिमान न आ जाये। फलतः हुनीन की लड़ाई के ठीक पीछे यह आयत उतरी :—

'हुनीन की लड़ाई के दिन अब तुमको अपनी सेना की बड़ी संख्या पर गर्व था तो कोई चीज तुम्हारे काम न आई।'† (सूरत तोबा आयत २५)

फिर विजय कैसे हुई? अगली आयत पढ़िये :—

'तब अल्लाह ने अपने रसूल और मुसल्मानों को सान्त्वना भेजी और (फरिश्तों की) वह सेनायें उतार दीं जिनको तुम न

* औकिया एक सोने का सिक्का जो तोल में ४० दिरम का होता है और एक दिरम ३½ मारो का। कहीं कहीं १० दिरम भी लिखा है। परन्तु हदीसों में ४० दिरम ही लिखा है।

† व योम हुनीनिं इज़् आजबतकुं कसूरतुकुं फ़लंयुगिन् अन्कुं शैयन्। (तोबा २५)

देख सको ।"* (सूरत तोबा आयत २६)

एक पत्थर से दो चिड़ियाँ मर गईं । सेना को अपनी कमजोरी का भी पता चल गया और पैगम्बरी का प्रचार भी हो गया ।

मुहम्मद साहेब की नीतिज्ञता का एक और उदाहरण वर्णन योग्य है :—

जब मुहम्मद साहेब ने दस हज़ार साथियों को लेकर मक्के पर चढ़ाई की तो उनके चाचा अब्बास किसो प्रकार अबूसफ़ियाँ को मुहम्मद साहेब के डेरे में ले आये । अबूसफ़ियाँ शत्रुओं का सबसे प्रबल सेनापति था । इसने 'अहद' के युद्ध तथा अन्य लड़ाइयों में बड़ी वीरता दिखाई थी । मुहम्मद साहेब के साथियों और विशेष कर हज़रत उमर ने यह परामर्श दिया कि अबूसफ़ियाँ हाथ में आ गया है । इसको मार डाला जाय । प्रायः सबका यही मत था । परन्तु हज़रत मुहम्मद साहेब को तो व्यावहारिक बुद्धि थी । वह अबूसफ़ियाँ की शक्ति को जानते थे । यदि अबूसफ़ियाँ मार डाला जाता तो मुहम्मद साहेब को दग़ा और चालाकी का दोष दिया जाता और एक अबूसफ़ियाँ की हत्या पर सैकड़ों अबूसफ़ियां उत्पन्न हो जाते । अतः उन्होंने सोच विचार कर यह निश्चय किया कि यदि अबूसफ़ियां मुसल्मान हो जाय तो न केवल उसी को क्षमा कर दिया जाय अधिकन्तु जो कोई शत्रु अबूसफ़ियां के घर में जाकर पनाह ले उस पर कोई मुसल्मान हाथ न उठावे । और जो शत्रु लड़ने के बजाय अपने घरों में दरवाजा बन्द करके चुपचाप बैठ जावेंगे उनसे कोई मुसल्मान छेड़ छाड़ न करेगा । अबूसफ़ियां खुश हो गये कि मुहम्मद साहेब ने अबूसफ़ियां के घर का दर्जा बढ़ाकर

---

* सुम्म अन्ज़ल अल्लाहो सकीनततू अला रसूलिहि व अलल् मोमिनीन व अन्ज़ल जुनूदन् लं तरौहा । (तोबा २६)

काबे के सम-कक्ष कर दिया। क्योंकि काबे को इतना गौरव (मान) प्राप्त था कि जो कोई काबे में जाकर पनाह लेता था उसको काबे की पवित्रता सुरक्षित रखने की भावना से कोई मारता न था। अबू सफ़ियां के घर को भी वही पवित्रता प्राप्त हो गई। वह फूले न समाये। मुसल्मान तो हो ही जाना था। जान बची लाखों पाये। अबू सफ़ियां के मुसल्मान होते ही फिर किस में शक्ति थी कि मुसल्मानों का सामना कर सकता। मक्का मुहम्मद साहेब के पैरों पर आ पड़ा। उस दिन लगभग सभी कुरैशी लोग मुसल्मान हो गये। कुछ काफ़िर जो विशेष अपराधी थे मार डाले गये। काबे की कुंजी मुहम्मद साहेब ने हज़रत उस्मान के हवाले कर दी।

यह है संक्षिप्त सा वृत्तान्त मुहम्मद साहेब की नीतिज्ञता, बुद्धिमत्ता तथा व्यावहारिक चातुर्य का।

दुर्भाग्य है कि अरब का यह साम्राज्य मुहम्मद साहेब की छत्र-छाया को अधिक समय तक सुरक्षित न रख सका। परन्तु मुहम्मद साहेब के लिये यह क्या कम था कि उन्होंने अरब के संगठन को अपनी आँखों से पूर्ण देख लिया। सन् ९ हिजरी में मुसल्मानों ने अपने प्रबन्ध से मक्के का हज किया और सन् १० हिजरी में मुहम्मद साहब एक लाख साथियों के साथ हज करने में सफल हो गये। सूरत 'नसर' में यह आयत धन्यवाद के रूप में वर्णन करने योग्य है :—

'जब खुदा की मदद आ पहुँची और विजय प्राप्त हो गई। और हे लोगों, तुमने देख लिया कि मनुष्य फौज की फौज खुदा के दीन में दाखिल होते हैं तो अपने ईश्वर की स्तुति के साथ माला फेर। और उससे आशीर्वाद मांग। वह निस्सन्देह क्षमा

करने वाला है।* (नसर १-२-३)

इससे सूचित होता है कि हजरत मुहम्मद साहेब का विश्वास ईश्वर पर पक्का था। उनके धार्मिक सिद्धान्त कुछ भी क्यों न हों उनको ईश्वर पर विश्वास था और घोर से घोर विपत्ति में भी वह उसको भूलते न थे।

---

* इजा जाअ नसरुल्लाहे वल् फतहो व रयेतल् नास यद्खलून फी दीनिल्लाहे अफ़वाजन्। फ़ सब्बिह् बि हमूदि रब्बिक वस्तग्फ़िहुं। इन्नहू कान तव्वावन्।

अध्याय ३३

धर्म प्रचार के रूप तथा साधन

हज़रत मुहम्मद साहेब ने अपने धर्म (अपने पैगम्बर होने आदि) का प्रचार लगभग २३ वर्ष तक जारी रक्खा। कुरान—अवतरण का आरम्भ ६ अगस्त ६१० ई० को हुआ। और उनकी मृत्यु ८ जून सन् ६३२ ई० (तदनुसार १२ रबीअ, ११ हिजरी) को सोमवार के दिन ६३ चांद्र वर्ष की आयु में हुई। २३ वर्ष बहुत बड़ा समय नहीं है। इतने अल्प काल में अरब के पूरे देश में इस्लाम को फैला देना कोई छोटी बात नहीं है। यहाँ हम उन रूपों और साधकों की मीमांसा करेंगे जिनका प्रयोग मुहम्मद साहेब ने धर्म प्रचार में किया।

यह तो स्पष्ट है कि यह २३ वर्ष मुहम्मद साहेब को घोर लड़ाई झगड़ों में व्यतीत करने पड़े। धर्म प्रचार की जो प्रणाली भारतवर्ष में चालू रही वह इससे सर्वथा विपरीत थी। महात्मा बुद्ध ने जब बौद्ध धर्म का प्रचार किया तो अन्यान्य धर्मों के विद्वानों के साथ मित्रता से वार्तालाप करते और अपनी बात को सिद्ध करने के लिये शास्त्रार्थ तथा युक्तियों से काम लेते थे। उन्होंने न तो कभी दूसरे धर्मावलम्बियों के मन्दिरों पर धावा बोला न अधिकार जमाया। न उनसे लड़ाई करने के लिये किसी को उभारा। उनके उपदेश ही उनके अस्त्र-शस्त्र थे। उनकी युक्तियाँ ही उन की तलवारें थीं। जब स्वामी शंकराचार्य ने बौद्ध धर्म का विरोध किया और वैदिक धर्म अथवा वेदान्त का प्रचार किया तो किसी बौद्ध मन्दिर पर धावा नहीं बोला। राजों को

यह तो प्रेरणा की कि अपने विद्वानों को इकट्ठा करके हमसे शास्त्रार्थ करा लो। परन्तु यह कभी नहीं कहा कि उन पर चढ़ाई कर दो। हम अपने समय में देखते हैं कि स्वामी दयानन्द ने मूर्ति-पूजन का प्रबल खण्डन किया। मूर्ति पूजा के विरुद्ध जितनी प्रबल युक्तियाँ स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में दी हैं उतनी किसी धर्म की किसी किताब में पाई नहीं जातीं। कुरान शरीफ़ में मूर्ति-पूजा की घोर निन्दा की गई है परन्तु कहीं दार्शनिक या वैज्ञानिक हेतु नहीं दिये गये। स्वामी दयानन्द ने वाराणसी के राजा को काशी के पण्डितों से शास्त्रार्थ कराने लिये उद्यत किया। परन्तु विश्वनाथ के मन्दिर पर चढ़ाई नहीं की। और न अपने शिष्यों को ऐसी शिक्षा दी कि किसी मूर्ति को तोड़ दो या मूर्तियों के मन्दिर को ढा दो। उनकी शत्रुता पत्थरों से न थी। पत्थर भी तो ईश्वर रचित है। उनका विरोध था उस मिथ्या भावना से जिसके प्रभाव में लोग एक उपास्य देव को भूल कर भिन्न भिन्न आकृतियों की प्रतिमाओं के आगे मस्तक झुकाते थे।

हज़रत मुहम्मद साहेब के प्रचार का रूप निराला था। इस तेईस वर्ष के काल में हमको कहीं कोई एक भी उदाहरण नहीं मिलता जब मूर्तिपूजा के पोषकों और मुहम्मद साहब का विचार-विनिमय (शास्त्रार्थ) हुआ हो। फिर समस्त अरब कैसे मुसल्मान हो गया? एक सूची बनाइये और उस पर दृष्टि डालिये। वर्तमान संसार में यद्यपि मुसल्मान बहुत हैं। परन्तु गैर-मुस्लिमों की संख्या भी बहुत अधिक है। मुसल्मानों की ओर से धर्म-प्रचारक संघ विद्यमान हैं। वे खुल्लम खुल्ला उन लोगों को जो मुसल्मान नहीं हैं मुसल्मान होने के लिये बुलाते हैं। अतः गैर-मुस्लिमों का भी यह कर्तव्य हो जाता है कि हज़रत मुहम्मद साहेब के प्रचार के रूपों और साधनों पर विचार करें।

हज़रत मुहम्मद साहेब के समय में जो लोग मुहम्मद साहेब की पैगम्बरी पर ईमान लाये उनकी तीन कोटियाँ हैं :—

(१) एक तो कुछ भोले-भाले लोग जैसे हज़रत खुदैजा, हज़रत अली, हजरत अबूबकर या हज़रत जैद। और इसी कोटि के बहुत से और लोग! नबूअत (पैगम्बरी) क्या है? इलहाम क्या है? ईश्वर क्या है? और कैसा है? मनुष्य क्या है? और क्यों बनाया गया? इन विषयों पर इन भोले-भाले लोगों ने कभी विचार नहीं किया। न कर सकते थे। आज किसी देश या जाति में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो बिना बिचारे किसी साधु के चेले बन जाते हैं और यह साधु किसी न किसी प्रकार से अपना नाता ईश्वर या किसी देवी-देवता के साथ जोड़ लेता है।

(२) दूसरी कोटि उन लोगों की है जो किसी कुरानी वचन की लच्छेदार रचना पर मोहित हो गये और बिना उन सिद्धान्तों की मीमांसा के जहाँ मतभेद के लिये स्थल था हज़रत मुहम्मद साहेब से प्रभावित हो गये। हम हबश देश के ईसाई राजा निजाशी का वर्णन कर चुके हैं। जिसने सूरत मरियम की केवल पहली आयत सुनकर अपना सन्तोष कर लिया था। उन आयतों में सिवाय कुछ पुरानी कहानियों के और था ही क्या? हज़रत उमर अपनी बहन के घर कुरान के कुछ पृष्ठ देखकर ही मुहम्मद साहेब की ओर आकर्षित हो गये। हज़रत उमर शास्त्रज्ञ न थे शस्त्रधारी थे। हज़रत ज़ुबैर बिन मौतम ने जो कुरेश के रईस थे सुना कि मुहम्मद साहेब सूरत तूर पढ़ रहे हैं। जब यह आयत सुनी :—

'क्या यह किसी के पैदा किये बगैर पैदा हो गये हैं या यह अपने आपको पैदा करने वाले हैं?'* (सूरत 'तूर' आयत ३५)

---

*उम् खुलिकू मिन् गैरिशैयिन्। अम् कुमुल् खालिकून। (तूर ३५)

तो हज़रत ज़ुबैर ऐसे मोहित हुये कि इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। आज यदि किसी हिन्दू के सामने यह आयत रक्खी जाय तो वह कहेगा कि मैं कब कहता हूँ कि हमको किसी ने नहीं बनाया। मैं कब कहता हूँ कि हम स्वयं उत्पन्न हो गये हैं। प्रश्न इतना ही नहीं है। मुसल्मान होने के लिये दूसरे मंतव्यों पर भी तो विचार करना है। आज संसार में सैकड़ों मतमतान्तर हैं। वह सबके सब सूरत 'तूर' की इस आयत की सचाई को स्वीकार करते हैं। परन्तु वह इस्लाम पर ईमान लाने को तैयार नहीं, क्योंकि यह मन्तव्य वह नहीं है जो इस्लाम और दूसरे मतों के बीच में निर्णायक हो। यह इस्लाम की विशेषता (भेदक-भित्ति) नहीं है।

इसी प्रकार इस्लाम स्वीकार करने वालों में से कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जो किसी एक विशेष बात पर लट्टू हो गये हों।

(३) परन्तु इन दोनों प्रकार के लोगों की संख्या अति अल्प है। अधिकांश (९९ प्रतिशतक) लोग तीसरी कोटि के हैं। अर्थात् वे सीधे स्वयं या किसी कारण वश किसी बड़े युद्ध में फँस गये और या तो पराजित होकर इस्लाम धर्म स्वीकार किया या ऐसी राजनैतिक उलझनें उत्पन्न हो गई थीं कि उनको इस्लाम धर्म स्वीकार किये बिना कोई चारा ही शेष न रह गया था।

हमारे इन शब्दों को पढ़कर बहुत से मुसल्मान बिगड़ेंगे और न जाने किन शब्दों में हमको याद करें। वह कहेंगे कि कुरान शरीफ़ पूरा का पूरा शिक्षा और उपदेश से भरा है। इसकी आयतों में वह चमत्कार है कि जो सुनता है मुग्ध हो जाता है। हम यह नहीं कहते कि कुरान शरीफ़ में शिक्षा-प्रद बातें नहीं हैं। कोई धर्म इतने दिनों स्थित नहीं रह सकता जब तक उसमें कोई आन्तरिक गुण न हों। कुरान शरीफ़ से सैकड़ों ऐसे उद्धरण

दिये जा सकते हैं जो मनुष्य का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं। परन्तु उनका रूप 'उपदेश का रूप' नहीं है। मुख्य 'उपदेश' वह है कि उपदेशक को कोई निज प्रयोजन न हो। उसके सुनने वाले बिना दबाव, धमकी या लालच के उपदेश को सुनें। और उनको पूरी स्वतन्त्रता कि वह उस पर विचार करें, जो ठीक जचे उसे स्वीकार करें। जो अनुचित समझें उसका परित्याग करें। अस्वीकार करने की दशा में कोई दण्ड न हो। स्वीकार करने की दशा में कोई ऐहिक लालच न हो। हम को यह बात कुरान शरीफ़ में आदि से अन्त तक दिखाई नहीं पड़ती। उपदेश तो है परन्तु उपदेश के लक्षण नहीं हैं। उपदेशक 'उपदेश' देता है। शासक 'आज्ञा' देता है। उपदेशक के उपदेश में कोई धमकी नहीं होती। राजा की आज्ञा (अनुशासन) में धमकी होती है। चोरी करोगे तो छः महीने का कारागार होगा। उपदेशक परिणाम को ईश्वर पर छोड़ता है। राजा दण्ड को स्वयं देता है चाहे उसका ऐसा करना अन्याय ही क्यों न हो।

हम मानते हैं कि कुरान शरीफ़ एक बड़ा ग्रन्थ है :—

कुरान की कुल सूरतों की संख्या ११४ है। और कुल आयतों की छः हज़ार। वाक्य है ७७९३४ और अक्षर ३२३०१५। (देखो तारीखुल कुरान पृ० ४७)

इतना बड़ा ग्रन्थ व्यर्थ कैसे हो सकता है? परन्तु कुरान शरीफ़ से भी अधिक बड़े ग्रन्थ विद्यमान् हैं। महाभारत में एक लाख श्लोक हैं। १८ पुराणों की दीर्घ-कायता का तो कहना ही क्या है? जगत् का एक बड़ा भाग इन ग्रन्थों को पवित्र (धार्मिक) मानता है। इसलिये किसी ग्रन्थ का मूल्य उसके कलेवर की दीर्घता से आंका नहीं जा सकता।

सागरे जर्रीं हो या मिट्टी का हो इक ठीकरा।
तू नज़र कर उस पै जो कुछ उसके अन्दर है भरा।

आइये। केवल 'उपदेश' को दृष्टि में रखकर हम कुरान शरीफ़ का उल्लेख करें। यतः प्रचार के रूपों और साधनों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सके।

रिसालत (पैगम्बरी का दावा) के आरम्भ से 'क़िवा' पहुँचने तक का कुल समय १२ वर्ष ५ महीने २१ दिन है। यह सब हज़रत मुहम्मद साहेब के मक्का-निवास का काल कहलाता है। इसमें ९३ सूरतें उतरीं। जो लगभग कुरान का दो तिहाई है। और इसके पश्चात् १० वर्ष के मदीना-निवास के समय में २१ सूरतें उतरीं जो लगभग कुरान का एक तिहाई भाग है।'

मक्की और मदनी आयतों में अक्सर मदनी आयतें मक्की आयतों से दो बातों में विशेषता रखती हैं :—

(१) मक्की आयतों में अधिकतर पुराने नबियों और उनकी उम्मतों की कहानियाँ हैं। इससे विपरीत मदनी आयतों में स्वयं मुसल्मानों की अपनी समस्याओं और लड़ाइयों का वर्णन है।

(२) मक्की आयतों में अधिकांश में ईश्वर-ध्यान और मन की पवित्रता की शिक्षा है। और मदनी आयतों में अधिकांश में कर्तव्य और अकर्तव्य का वर्णन है। इसका कारण यह है कि मक्के में कुरान के श्रोता काफ़िर लोग थे। वह इनको इस्लाम की ओर बुलाता रहा। और मदीने में चूँकि मुसल्मानों की एक जमाअत तैयार हो चुकी थी इसलिये अधिकतर इन्हीं को सम्बोधित करके धर्म के कर्तव्याकर्तव्य की शिक्षा दी गई।' (देखो तारीखुल् कुरान पृष्ठ ४३-४४)

यह शब्द है एक मुसल्मान लेखक के। और हमारे विचार से यह परिस्थिति का यथा तथ्य वर्णन है। शायद कोई मुसल्मान विद्वान् इसको अस्वीकार न करेगा। *मक्की आयतों में से* जिन्होंने कुरान शरीफ़ के कलेवर का दो तिहाई भाग घेर रक्खा

है। यदि नबियों और उनकी उम्मतों के किस्से निकाल दिये जांय तो बहुत कम भाग शेष रह जाता है। एक-एक किस्से को बार-बार दुहराया गया है। यदि बहुत से किस्से होते तो शायद कुछ ऐतिहासिक जानकारी में ही आधिक्य होता। परन्तु मूसा, फ़िरऔन, आद, समूद आदि की कहानियों को बहुत सी 'सूरतों' में इतनी बार दुहराया गया है कि सिवाय धमकियाँ देने के और कोई नई बात नहीं है कि यदि तुम मुहम्मद साहेब की बात न मानोगे तो फ़िरऔन का सा हाल होगा। इसको न तो 'उपदेश' कह सकते हैं न 'प्रचार।' पुराने युगों के काफ़िरों (नास्तिकों) और मोमिनों (आस्तिकों) का कुछ इतिहास है। परन्तु केवल ऊपरी। इतिहास भी नहीं। केवल कहानी मात्र। जिनकी सत्यता का परम्परा के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं। कहानियाँ भी केवल समीपवर्ती देशों और निकटस्थ काल को, जो उस समय अरब वालों में कहे सुने जाते होंगे। उसी काल में भारतवर्ष की क्या दशा थी ? उसमें काफ़िर या मौमिन थे या नहीं ? या अल्लाह ताला की लौह-महफ़ूज़ में इन जातियों के विषय में कुछ ज्ञात था या नहीं ? यह कहना कठिन है। यदि यह कहा जाय कि कुरान शरीफ का सम्बन्ध केवल अरब के संगठन से है और तथ्य तो यही है तो फिर प्रश्न होता है कि दीन इस्लाम का प्रकाशन दूसरे देशों के लिये क्यों आवश्यक समझा गया ?

मदनी सूरतें २१ हैं। वह लम्बी हैं और केवल मुसल्मानों के संगठन और उनके आचार-व्यवहार से सम्बन्धित हैं। इसलिये इनका तबलीग (प्रचार) से कोई सम्बन्ध नहीं। प्रचार तो गैर-मुसल्मानों में किया जाता है। इन सूरतों में बहुत सी बहुमूल्य शिक्षायें हैं जिनसे गैर-मुसलिम जातियों को भी लाभ पहुँच सकता है। और विशेष कर उन जातियों को जिनकी ऐहिक अवस्था ठीक नहीं है।

इसलिये हमारा दावा कि इस्लाम की तबलीग (प्रचार) के रूप और साधन वह नहीं हैं जो 'वाज़' अर्थात् उपदेश के होने चाहिये ठीक है। जो उपदेशक उपदेश करते समय तलवार हाथ में ले लेता है जिससे उपदेश के प्रभाव की कमी तलवार के प्रदर्शन से पूरी कर दी जावे उसको 'उपदेशक' तो नहीं कह सकते। हज़रत मुहम्मद साहेब सदैव ऐसा ही करते रहें।

आप शायद यह कहें कि अरब के लोग अनपढ़ थे। अनपढ़ लोगों में उपदेश के वही तरीके नहीं वर्ते जा सकते जो एक सभ्य देश में हो सकते हैं। यह उत्तर निराधार नहीं है। हज़रत मुहम्मद साहेब की कार्य-प्रणाली की इससे सफाई हो जाती है। परन्तु जब हम मुहम्मद साहेब की इस कार्य प्रणाली का अनुकरण उनके पीछे आने वाले प्रचारकों में भी पाते हैं तो ऊपर कही सफाई का मूल्य बहुत कम रह जाता है। इसका वर्णन हम 'इस्लामी विजय' के अन्तर्गत करेंगे।

———

अध्याय ३४

पति और पत्नी

जब ईश्वर ने प्राणी बनाये तो उनको जोड़ों में उत्पन्न किया। एक पुरुष या नर, दूसरा नारी (स्त्री)। जैसे आदमी और औरत, बैल गाय, बकरा और बकरी, ऊंट और ऊंटनी इत्यादि। एक जाति के नर और नारी के मूल में कुछ भेद न था। भेद था केवल शरीर की रचना में। और वह भी केवल इतना कि उत्पत्ति के लिये आवश्यक हो। और यतः सन्तान को उत्पन्न करना एक सहयुक्त कार्य था अतः नर और नारी का स्तर भी समान था। सेवक और सेव्य (नौकर और मालिक) का कोई प्रश्न न था। न बड़े और छोटे का। पशुओं में नर और नारी केवल प्राकृतिक प्रेरणा से एक दूसरे की ओर आकर्षित हो जाते हैं और गर्भाधान की क्रिया के पीछे अलग हो जाते हैं नर तो बिल्कुल ही अलग हो जाता है परन्तु नारी को अपने बच्चे का कुछ दिनों पालन करना होता है अतः माता का नैसर्गिक आकर्षण कुछ दिनों काम करता है। उसके पीछे मा बाप और सन्तान के मध्य में कोई सम्बन्ध नहीं रहता।

मनुष्य सृष्टि में श्रेष्ठतम रचना है। अतः उसके कर्तव्य भी अधिक विस्तृत हैं। वह एक बड़ा समाज बनाता है। समाज-निर्माण के लिये हर व्यक्ति को कुछ न कुछ त्याग करना पड़ता है। यहाँ एक बात याद रखनी चाहिये। जब हम कहते हैं कि मनुष्य श्रेष्ठतम रचना है तो इसका यह आशय नहीं कि हर मनुष्य की पशु से उच्चता है। बहुत से ऐसे मनुष्य मिलेंगे जिनका

रूप तो मनुष्यों का सा है परन्तु सिंह और भेड़िये से अधिक पशुता उनमें विद्यमान हैं। जीवित शत्रु की खाल खिंचवा लेना, जीवित वैरी को आग में जला देना, जीवित विरोधी को किसी दीवार में चिनवा देना जिससे वह कई दिनों तक दम घुट जाने से मर जाये, आंखें निकलवाकर नीबू निचोड़ देना यह दानवता किसी हत्यारे पशु में नहीं मिलेगी। प्रेम और धैर्य की शिक्षा मनुष्य चींटी और मधु-मक्षिका से ले सकता है। कुत्ता और घोड़ा जितना निस्वार्थ स्वामि-भक्त होता है उतना मनुष्य नहीं। परन्तु जब हम कहते हैं कि मनुष्य ईश्वर की श्रेष्ठतम रचना है तो इसका यह अभिप्राय है कि उसमें श्रेष्ठतम होने की बीज शक्ति हैं। शर्त यह है कि वह इस बीज शक्ति का लाभ उठावे।

मनुष्य को श्रेष्ठतम बनाने के प्रयोजन से पुरुष और स्त्री के परस्पर सम्बन्ध के लिये भी नियम निर्धारित किये गये।

केवल पाशविक प्रवृत्तियों तक ही सीमित नहीं रक्खा गया। इसी का नाम है '*विवाह*'। मानवी समाजों ने अपनी अपनी योग्यता के अनुसार विवाह के नियम बनाये। और उनको भिन्न भिन्न प्रकार से प्रचरित किया। हरदेश या जाति में विवाह एक प्रमुख संस्कार समझा जाता है। क्योंकि उसके ऊपर गृहस्थ धर्म का आधार है और गृहस्थ मूला धार है समाज का।

कुरान शरीफ़ के कथनानुसार पहला पति था आदम और पहली पत्नी थी हव्वा। आदम के विषय में तो स्पष्ट लेख है कि मिट्टी से एक पुतला बनाया और उस में रूह (आत्मा या जीव) फूंक दी। वह जीवित आदम बन गया। हव्वा की उत्पत्ति का कोई क्रमिक वृत्त नहीं है कि क्या वह उसी प्रकार की मिट्टी से बनाई गई थी और क्या उसमें भी ईश्वर ने अपनी रूह फूंकी थीं। बाइबिल में लिखा है कि ईश्वर ने आदम पर नींद ला दी और जब वह बेहोश हो गया तो उसकी एक पसली निकाली

और पसली के स्थान में मांस भर दिया। और पसली से हव्वा को बना दिया। हज़रत आदम ने कहा कि यह तो मेरे ही शरीर से उत्पन्न हुई है अतः मेरे खून का खून और मेरी हड्डी की हड्डी है।

बाइबिल के ही कथानकों को कुरान ने स्वीकार कर लिया है। कहीं कहीं आंशिक भेद है। जो समस्यायें यहूदियों के समय से उलझी चली आती हैं उनको सुलझाने की कुरान शरीफ़ ने कोशिश नहीं की। अठारह शताब्दियों तक ईसाई विद्वान् इस उलझन में पड़े रहे कि हव्वा के उपर्युक्त उत्पत्ति-विधान को बुद्धिमान् और विद्वान पुरुषों के स्वीकार करने योग्य कैसे बनाया जाय? परन्तु उनको किसी प्रकार की सफलता नहीं मिली। कुछ ईसाई विद्वानों ने कभी-कभी जो टीका टिप्पणियाँ दी उनसे तो अवस्था और भी बिगड़ गई और स्त्री का पद जनता की दृष्टि में बहुत गिर गया। कौरंथियनों को लिखे हुये पत्रों में तो यहाँ तक कह दिया गया कि आदमी औरत से नहीं बना। औरत आदमी से पैदा हुई है। आदमी औरत के लिये नहीं बना था। औरत आदमी के लिये बनी है। (देखो कौरंथियन, भाग १, अध्याय ११, आयत ८, ९)

यह एक छोटा सा वाक्य है जो केवल एक पत्र में बिना सोचे समझे लिखा गया था। परन्तु इस विष के बीज ने समस्त भ्रांति-आहत ईसाई घरों में विष फैला दिया। कुछ पादरी लोग तो यहाँ तक बढ़ गये कि उन्होंने बाइबिल से पूरी संगति संपुष्ट करनेके लिये यहाँ तक कह डाला कि स्त्रियों में जीव नहीं है क्योंकि ईश्वर ने रूह को आदम के पुतले में फूंका था न कि हव्वा के पुतले में। हव्वा तो केवल आदम के शरीर की एक पसली है। यूरोप में जब विज्ञान का प्राबल्य हुआ तो घोर विरोध होते हुये भी पादरी लोग इस उलझन की उपेक्षा नहीं कर सके। कुछ न कुछ

तो सोचना ही पड़ गया। इन्हीं दिनों में भारतवर्ष की प्राचीन भाषा संस्कृत की ओर लोगों का ध्यान गया। यूरोप वालों ने भारत की ओर दृष्टि दौड़ाई। और उस पर शासन करने के लिये आवश्यक समझा गया कि भारतीय लोगों की प्राचीन पुस्तकों का अवलोकन किया जाय! इसी काल में भिन्न-भिन्न भाषाओं का अनुसन्धान और मूल्यांकन होने लगा। १९वीं शताब्दी के जर्मनी के एक प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ मैक्समूलर को यह यश प्राप्त है कि उसने हव्वा की उत्पत्ति के विषय में जो उलझन थी उसको सुलझा दिया। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सायंस आफ रिलीजन्स (धर्म-विज्ञान), की भूमिका में वह लिखते हैं:—

"Bone seemed a telling expression for what we should call the innermost essence."

उन्होंने यूनानी भाषा को किसी धातु से यह सिद्ध किया है कि यूनानी भाषा में 'हड्डी' शब्द का प्रयोग भीतरी प्रकृति के लिये होता था।

फिर वह लिखते हैं :—

In the ancient hymns of the Veda, too, a poet asks, "Who has seen the first, when, he who had no bones, i. e., no form, bore him that has bones, i. e., when which was formless, assumed form, or it may be, when that which had no essence, received an essence."

अंग्रेजी के इस वाक्य से गुत्थी सुलझ जाती है, परन्तु जब तक हम ऋग्वेद को उठाकर न देखें या थोड़ा सा संस्कृत का अध्ययन न करें यह व्याख्या सब की समझ में नहीं आ सकती। सार तो इतना ही है कि जिसको हम हड्डी कहते हैं उसका अभिप्राय है 'निज प्रकृति।'

इसको मैक्समूलर ने ईसेंस (Essence) कहा है। मैक्स-मूलर ने 'वेद' का उल्लेख किया है परन्तु प्रमाण नहीं दिया। वस्तुतः यहाँ ऋग्वेद के पहले मंडल के १६४ वें सूक्त की ओर संकेत है। इसमें सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है और 'अस्थि' शब्द का प्रयोग हुआ है। लोक भाषा में 'अस्थि' का अर्थ है 'हड्डी'। परन्तु यदि धात्वर्थ पर विचार किया जाय तो रहस्य खुल जाता है। 'स्था' का अर्थ है 'खड़ा होना' या स्थित होना। मनुष्य के शरीर में यदि हड्डी न हो तो वह खड़ा नहीं हो सकता इसलिये उपचार की भाषा में हड्डी का नाम 'अस्थि' पड़ गया। वस्तुतः 'अस्थि', 'स्थिति' आदि शब्दों का सम्बन्ध है किसी वस्तु की नैसर्गिक वास्तविकता से। क्योंकि प्रत्येक वस्तु अपनी निज नैसर्गिक प्रकृति के आधार पर स्थिति रहती हैं। इसी वास्तविक प्रकृति के लिये वेद में एक और शब्द आया है 'तनु'। इसका अर्थ है 'तानना'। सूत अपनी नैसर्गिक प्रकृति के कारण ही ताना जाता है। एक और वेद मंत्र में हमको मिलता है कि परमात्मा ने जो निराकार और शरीर रहित है मनुष्य के माता पिता को एक ही प्रकृति से उत्पन्न किया और एक साथ उत्पन्न किया।

क उ नु ते महिमनः समस्याऽस्मत् पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः।
यन् मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः॥

(ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ५४ मंत्र ३)

सूरत नसा' की पहली आयत यह है :—

'जिसने तुमको एक ही नफ़स से बनाया। और उसी नफ़स से उसका जोड़ा बनाया।'*

क्या हम इस आयत का यह अर्थ नहीं ले सकते कि यहाँ

---

* अल्लज़ी खलक़कुं मिन् नफ़्सिन् वाहिदतिन् व खलक़ मिन्हा जौजहा। (नसा १)

'नफ़स' का आशय नैसर्गिक प्रकृति या ईसेंस से है। जैसा कि संस्कृति के शब्दों 'अस्थि' या 'तनु' से प्रकट होता है। यदि वेद के मंत्र और कुरान की आयत की संगति सिद्ध हो जाय तो सारी उलझन दूर हो जाय। लेकिन इसके साथ समग्र इस्लामी जगत् की मनोवृत्ति में परिवर्तन हो जायगा।

ऋग्वेद के वर्णन और उन प्रचलित दन्त कथाओं में जो तौरेत से लेकर कुरान तक चली आती है व्यवहार की दृष्टि से बड़ा अन्तर है :—

(१) वेद यह नहीं मानता कि आरम्भ में केवल एक नर उत्पन्न हुआ और उसकी पसली से नारी बनाई गई। या एक बैल बनाया और उसकी पसली से गाय बनाई गई। या एक ऊँट बनाया गया और उसकी पसली से ऊटनी बनाई गई जिससे आदमी और औरत, बैल और गाय, ऊँट और ऊटनी में परस्पर प्रेम हो सके। और गृहस्थ धर्म (सन्तानोत्पत्ति) का कार्य सम्पादित हो सके। वेद का सिद्धान्त कि जब सृष्टि रची गई तो बहुत से पुरुष और स्त्रियाँ उत्पन्न हुये। उनका मूल तत्व एक था अर्थात् सब जीव या आत्मा थे। उत्पत्ति की विधि भी एक थी। शरीर का उपादान भी एक था। पत्नी के लिये यह आवश्यक न था कि वह अपने पति के शरीर का ही अंश हो। व्यवहार रूप से तो इस प्रतिपत्ति को ईसाई और मुसल्मान भी नहीं मानते। कोई मर्द अपनी पुत्री से इसलिये विवाह न करेगा कि वह उसके शरीर का अंश है। और न कोई माता अपने पुत्र से विवाह करेगी क्योंकि वह उसी के शरीर से उत्पन्न हुआ है। कुदरत ने पति और पत्नी के सम्बन्ध का आधार इन कारणों को नहीं बनाया था।

(२) जब नारी को नर के शरीर से उत्पन्न नहीं किया तो यह प्रश्न नहीं उठता कि नारी नर के लिये बनाई गई और नर के

पीछे बनाई गई और अतः नारी का व्यक्तित्व नर के व्यक्तित्व के दूसरे दर्जे पर है। तौरेत की दन्त-कथाओं ने औरत को यहाँ तक निचली श्रेणी में रक्खा कि कुछ पादरियों ने इस बात पर आग्रह किया कि स्त्रियों को गिरजों में चुपचाप बैठना चाहिये। वह जुबान नहीं खोल सकती (देखो पितरस के पत्र, भाग १, अध्याय १, आयत ३)।

वेद में 'पति' और 'पत्नी' शब्द का प्रयोग विवाहित पुरुष और स्त्री के लिये होता है। 'पति' का धात्वर्थ है रक्षा करने वाला पुरुष। 'पत्नी' का धात्वर्थ है 'रक्षा करने वाली स्त्री।' मानवी जातीयता की अपेक्षा से दोनों का दर्जा बराबर है। पति और पत्नी में केवल लैङ्गिक भेद है अर्थात् पति शब्द में स्त्री-प्रत्यय लगा देने से 'पत्नी' शब्द बन जाता है। वस्तुतः गृहस्थ धर्म के लिये पति को पत्नी की उतनी ही आवश्यकता है जितनी पत्नी को पति की। भारतवर्ष में तो इनकी गाड़ी के दो पहियों से उपमा दी गई है जो हर अंश में सम होने चाहिये। कुरान शरीफ़ के कथनानुसार जब आदम और हव्वा को साथ रक्खा गया तो उनको गृहस्थ कार्यों के सम्बन्ध में क्या शिक्षायें दी गईं इनका ब्यौरा न तौरेत में है न कुरान में। ऋग्वेद में पति पत्नी को यह शिक्षा दी गई है :—

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वेगृहे॥

(ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त ८५, मंत्र ४२)

'हे पति और पत्नी। तुम दोनों एक साथ रहो। तुम में किसी प्रकार का वियोग या भेद-भाव न हो। पूर्ण आयु प्राप्त करो। अपने घर में नाती और पोतों के साथ खेलते हुये अर्थात् सुख का जीवन व्यतीत करो।'

यहाँ द्विवचन का प्रयोग हुआ है। सर्वनाम भी द्विवचनान्त है और क्रिया भी द्विवचनान्त। इससे एक पति और एक ही पत्नी की सिद्धि होती है। जब वैदिक काल का ह्रास हुआ तो भारतवर्ष में भी अन्धेर गर्दी हो गई। और एक पति तथा एक पत्नी से जो गृहस्थ की व्यवस्था हो सकती थी वह भी नष्ट-भ्रष्ट हो गई। इस अन्धेर गर्दी का प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ा। मनुस्मृति में लिखा है कि पहले भारत के लोग दूसरे देशों को आचार व्यवहार की शिक्षा देते थे। यह क्रम पीछे भी बहुत दिनों तक जारी रहा। जब वैदिक संस्कृति थी तो यहाँ के लोगों ने वैदिक आदर्श दूसरे के समक्ष रक्खा। जब उनकी संस्कृति में गदलापन आ गया तो दूसरी जातियों में भी वही गन्दगी फैल गई। इस गन्दगी को दूर करने के लिये दूसरे देशों में भी समय-समय पर सुधारक नेता उत्पन्न होते रहे।

हज़रत मुहम्मद साहेब की गणना भी उन्हीं सुधारकों में है। विवाह के सम्बन्ध में उन्होंने क्या सुधार किये यह एक प्रश्न है। इस पर हम अगले अध्याय में प्रकाश डालेंगे।

———

अध्याय ३५

विवाह के सम्बन्ध में हज़रत मुहम्मद साहेब का वर्तन तथा शिक्षा

हम लिख चुके हैं कि वेदों में एक पति और एक पत्नी के सम्बन्ध को ही गृहस्थ का सर्वोत्कृष्ट विधान माना गया है। भारतवर्ष के इतिहास में जब-जब इस सुनहरे नियम को भंग किया गया तो इस का परिणाम बुरा हुआ। राजा दशरथ यदि तीन विवाह न करते तो उनकी वह बुरी गति न होती। यह तो अवध-साम्राज्य का सौभाग्य था कि उनके चारों पुत्रों ने अपनी कार्य कुशलता से अपने पिता की भूल का निराकरण कर दिया।

आदम एक थे और हव्वा भी एक! यहाँ भी ज्ञात होता है कि इस कथा का आधार एक पति और एक पत्नी का सिद्धान्त था। पता नहीं कि हज़रत मूसा के कितनी पत्नियाँ थीं? हज़रत इब्राहीम ने दो स्त्रियाँ की तो इसका परिणाम कुछ अच्छा न निकला। हज़रत ईसा ने तो कोई विवाह ही नहीं किया। कम से कम इस अपेक्षा से तो वह बाल-ब्रह्मचारी ही रहे। भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों का सब से अधिक बल ब्रह्मचर्य पर था। वह ब्रह्मचर्य और ईश्वर पूजा को एक समझते थे। उनका विचार यह था कि मनुष्य जितना अधिक शारीरिक इच्छाओं पर अपना प्रभुत्व रख सकेगा उतनी ही उस की आत्मिक उन्नति होगी। और जो दैहिक विषयों में फंस जायगा वह ईश्वर से दूर होता जायगा। इसलिये गृहस्थ धर्म तथा सन्तानोत्पत्ति के प्रयोजन की

सिद्धि के लिये विवाह करते हुये भी वह ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। हज़रत ईसा ने एक श्रेष्ठ आदर्श स्थापित किया। इसका प्रभाव उनके अनुयायियों पर भी पड़ा। लोगों ने ब्रह्मचर्य को अच्छा समझा। बहुत से पादरियों ने विवाह नहीं किये। परन्तु बहुत सी दूसरी त्रुटियों के कारण उनके आन्तरिक जीवन में कुछ विघ्न पड़ गये जिनके कारण से ब्रह्मचर्य के मान में कुछ कमी आ गई। हज़रत मुहम्मद साहेब के समय का अरब विषय भोग तथा स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के विषय में बहुत पिछड़ा हुआ था। ब्रह्मचर्य जैसी उत्कृष्ट भावना से वह सर्वथा अपरिचित थे। यद्यपि उच्च आदर्श कठिन होते हैं और हर मनुष्य उनका पालन नहीं कर सकता। परन्तु जब किसी उच्च आदर्श को अपमान की दृष्टि से देखा जाता है तो अधम सिद्धान्तों का बोल बाला हो जाता है। ईसा की छठी और सातवीं शताब्दी के अरब की दशा भी ऐसी ही थी।

हम महान् पुरुषों के अन्तःपुर की ओर झांकना धृष्टता समझते हैं। और इस गर्हित प्रथा के दोषी होना नहीं चाहते। तो भी इस्लामी जातियों के रवय्ये को देखकर हम पत्नियों की संख्या के विषय में कुछ छान बीन करना चाहते हैं।

विवाह के विषय में इतनी प्रथायें प्रचलित हैं :—

(१) एक पति तथा एक पत्नी।

(२) एक पति तथा अनेक पत्नियां।

(३) एक पत्नी और अनेक पति।

(४) पति और पत्नी का सामयिक सम्बन्ध। न विवाह न निकाह।

चौथी प्रथा पशुओं से मिलती है। किसी सभ्य देश में यह प्रथा वैध नहीं है। कभी-कभी कुछ मन चले व्यक्तियों ने इस प्रथा को अपनाया। परन्तु अन्त में छोड़ना पड़ा।

तीसरी प्रथा कहीं-कहीं है परन्तु बहुत कम ! और सफलता नहीं हुई ।

दूसरी प्रथा कई देशों में प्रचलित है और विशेष कर इस्लामी देशों में । और बहुत से मुसल्मान विद्वानों ने बड़े गर्व के साथ हज़रत मुहम्मद साहेब की पत्नियों के बहुसंख्यक होने की प्रशंसा की है ।

हज़रत मुहम्मद साहेब का पहला जीवन पहले सुनहरी सिद्धान्त से आरम्भ होता है । अर्थात् एक पति और एक पत्नी । जब तक हज़रत खुदैजा जीवित रहीं मुहम्मद साहेब ने किसी दूसरी स्त्री की ओर आँख नहीं उठाई । हज़रत खुदैजा अत्यन्त पति-भक्त बुद्धिमती तथा प्रभावशालिनी थीं । वह हज़रत मुहम्मद साहेब की शारीरिक तथा मानसिक रक्षा करती थीं । और हज़रत मुहम्मद साहेब न केवल उनके कृतज्ञ ही थे अपितु उनसे प्रभावित भी थे । परन्तु जब हज़रत खुदैजा की कृपा का हाथ उनके सिर से उठ गया तो मुहम्मद साहेब के जीवन में विशेष परिवर्तन आ गया । उन्होंने एक दूसरे के बाद दस विवाह किये । और उनकी मृत्यु पर नौ पत्नियों को पति-वियोग सहना पड़ा । इस्लाम के विरोधियों ने इस व्यवहार पर बहुत कड़ी आलोचना की है । और मुसल्मान विद्वानों ने इसकी सफाई में बहुत सी विचित्र व्याख्यायें की हैं । ईश्वरीय दूतत्व (हज़रत मुहम्मद साहेब ईश्वर के भेजे पैगम्बर थे । इस सिद्धान्त) पर विश्वास रखने वाले यह मानने के लिये तैयार नहीं हैं कि हज़रत मुहम्मद एक भी गलती कर सकते थे । उनका एक-एक कार्य ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल था । यहाँ तक कि इन अनेक विवाहों के विषय में भी ईश्वर की ओर से आयतें उतरती रहीं । जो लोग मुहम्मद साहेब को एक देश या जाति का सुधारक मानते हैं वह उनके सामान्य जीवन के सद्गुणों को एक गलती के कारण

उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकते। उनका कहना है कि कोई मनुष्य ऐसा नहीं जो कोई न कोई भूल कर ही न सके। और अपने बड़ों का मान इस बात में नहीं है कि हम उनको हर गलती या भूल से मुक्त मानें। अपितु अपने बड़ों के सद्‌गुणों और त्रुटियों पर दृष्टि डालते हुये सद्‌गुणों का अनुकरण करें और भूलों की उपेक्षा करें। उपनिषदों में आचार्य अपने शिष्य से कहता है। 'हमारे सुचरित्रों का अनुकरण करना। अन्य का नहीं।' यह एक अच्छा सिद्धान्त है। इसलिये जब हम हज़रत मुहम्मद साहेब की पारिवारिक बातों का उल्लेख करते हैं तो केवल संसार के कल्याण के लिये। और विशेष कर उन मुसल्मानों के लाभ के लिये जिन्होंने मुहम्मद साहेब के किसी आचरण का अनुकरण करने में उनके मुख्य अभिप्राय पर विचार नहीं किया।

'सीरतुर्रसूल' का लेखक लिखता है :—

'हज़रत ख़ुदैजा की मृत्यु के पश्चात् *नबी सल्ल अल्लाह अलेहि सल्लम्* (हज़रत मुहम्मद ने) कई निकाह किये। ऊपरी दृष्टि से इसका सबब यह मालूम होता है कि अरब के लोगों में निकाह का सम्बन्ध क़बीलों की हमदर्दी का एक बड़ा ज़रिया (साधन) था। मक्के में हज़रत ख़ुदैजा का निकाह फ़ायदेमन्द साबित हुआ था। और आँ हज़रत बहुत सी अज़ीयतों और तकलीफ़ों से इसकी बदौलत महफ़ूज़ (सुरक्षित) रहते थे। चुनांचि मदीने में आकर कुरैश और नोज़ बनी इस्राईल के बाज़ कवीतरीन (बल शाली) क़बीलों में आपने शादियाँ कीं।'

'बाज़ बाज़ निकाहों मसलन् हज़रत *जवैरिया*, जैनब बिन्त हज़श और सफ़िया वगैरः के ख़ास वजूहात (विशेष कारण) थे।

'इसके अतिरिक्त इस वक़्त तक निकाह की कोई ख़ास हद बियत नहीं की गई थी। और जिस समय यह नया विधान

निकला कि चार से अधिक पत्नियाँ न हों इस समय चूँकि यह निर्णय हो चुका था कि पैगम्बर की स्त्रियाँ उम्मत की मातायें हैं और किसी (मुसल्मान) के साथ उनका निकाह हलाल (वैधानिक) नहीं हो सकता था इस लिये हज़रत मुहम्मद साहेब को विशेष रूप से आज्ञा दी गई कि वह उन बीवियों को अपने निकाह में रख सकते हैं। और आगे को निकाह करने की मनाई की गई।'

'इन उम्मत की माताओं में से हज़रत खुदैजा और 'जैनेब उम्मुल मसाकीन' आपके जीवन में ही मर चुकी थीं। और नौ बीवियों को छोड़कर खुद आपने इन्तक़ाल फरमाया।' (देखो सीरतुर्रसूल पृ० १९४-१९५)

हमको भी विद्वान् लेखक की इस स्पष्ट वक्तृता से लगभग सहमति है। मुहम्मद साहेब की सभी शादियां कामवासना के कारण नहीं हुई। इनमें से बहुतों में राज-नीति हेतु थी। मुहम्मद साहेब की मृत्यु के पश्चात् जो चार खलीफे हुये उनमें दो अर्थात् अबूबकर और उमर मुहम्मद साहेब के ससुर थे। अबूबकर हज़रत आयिशा के बाप थे। हज़रत हफ़सा उमर की लड़की थीं। हज़रत उसमान मुहम्मद साहेब के दामाद थे। हज़रत खुदैजा की दो लड़कियाँ 'रक़िया' और 'उम्मे कलसूम' उनको ब्याही गई थीं। हज़रत अली की बीबी हज़रत फातिमा खुदैजा की लड़की थी। इन रिश्तेदारियों ने हज़रत मुहम्मद साहेब की शक्ति में बहुत बड़ी वृद्धि की। अरब के संगठन में इतने कबीलों के आपस के रिश्ते विशेष अर्थ रखते हैं।

हमारा अनुमान है कि मुहम्मद साहेब ने अनुभव से जान लिया होगा कि कई बीवियाँ चाहे देश पर स्वत्व जमाने के लिये लाभदायक भी सिद्ध हो जायँ फिर भी गृहस्थ का शीराजा तो बिखरा ही रहता है। और पति को जो आन्तरिक हर्ष या शान्ति

होनी चाहिये वह प्राप्त नहीं होती। इसलिये यद्यपि अपनी गलती का निराकरण असम्भव था तो भी उन्होंने सुधार की ओर एक ज़बरदस्त क़दम उठाया। और पत्नियों की संख्या चार कर दी गई। और चार के लिये भी कुछ कड़े नियंत्रण लगा दिये गये। (देखो सूरत 'नसा' आयत ३)। यद्यपि मुसल्मानी उम्मत ने कभी इस सुधार के महत्व पर ध्यान नहीं दिया और उन नियंत्रणों को भी अपनी इच्छानुसार तोड़ना ही वैध समझा। इस विषय में हम एक रोचक घटना का उल्लेख करते हैं जिसका वर्णन हमने अरबी की एक प्रसिद्ध पुस्तक 'नफ्‌हतुल्‌ यमन' में पढ़ा था :—

'खालिद बिन्‌ सफ़वान कहते हैं कि एक दिन मैं सफ्‌-फ़ाह (अब्बासी वंश का पहला खलीफा) के पास गया। और कहा :—'ऐ अमीरुल्‌ मोमिनीन्‌ (मुसल्मानों के सरदार) आप इतने बड़े हैं। आपके लिये सैकड़ों सुन्दर युवतियाँ मिल सकती थीं फिर भी आपने एक ही स्त्री पर क्यों संतोष किया है ?' खलीफा ने उत्तर दिया 'ऐसी बात तो पहले कान में नहीं पड़ी।' जब मैं चलने लगा तो खलीफा की बीबी 'उम्मि सलमा' ने सुन लिया। उसने मुझे गाली दी और अपने गुलामों को हुक्म दिया कि खालिद की बोटी बोटी उड़ा दो। मैं भागा-भागा फिरा। अन्त में पकड़ा आया। उस समय खलीफा अपनी बैठक में था। और मुझे ऐसा लगा कि दरवाजे की दूसरी ओर परदे में उम्मि-सलमा भी है। मेरी जान सूख गई। खलीफा ने कहा, 'खालिद! तुमने उस दिन मुझसे क्या बात कही थी?' मैंने बात बनाई और कहा। 'श्रीमान्‌ जी! अरब की भाषा में 'जरर' शब्द पर्याय है 'हानि' का। 'जरर' को 'जरर' इस लिये कहते हैं कि मूलतः 'जर्रतैन' शब्द का अर्थ है दो स्त्रियाँ जो एक ही समय एक पति की पत्नियाँ हों। दो बीबियों का होना अत्यन्त कष्टप्रद होता

है। इससे घर में नित्य कलह रहती हैं। दो पत्नियों का पति दो नरकों के बोच में जलता रहता है। एक तरफ़ नरक की आग उस को जलाती है। और दूसरे नरक की आग की लपटें उसकी ओर लपकती है'।

खलीफ़ा ने कहा, 'नहीं! नहीं! तुमने ऐसा नहीं कहा था'।

मैंने कहा, 'अच्छा याद करलूं कि मैंने क्या कहा था?' फिर कुछ ठहर कर मैं बोला :—

'मैंने आप से कहा था कि चार बीबियों से वैर भाव बढ़ जाता है। और वह अपना धैर्य खो बैठती हैं।'

खलीफ़ा ने कहा, 'यह भी नहीं कहा था।'

मैंने फिर कहा :—

'शायद मैंने यह कहा था कि जिसके चार बीबियाँ हों उस को ऐसा समझना चाहिये कि एक है 'हम्म' (शोक), दूसरी है 'नसब' (अशान्ति), तीसरी है जजर (कष्ट), और चाथी है 'सखब' (विलाप), यदि उनका पति अपनी इच्छा पूर्ति के लिये एक को बुलाता है तो शेष तीन सौतिया डाह रखती हैं। और जब वह उनमें से एक के साथ सहवास करता है तो उसे अपनी तीन बीबियों की ओर से भय बना रहता है। और उसका जीवन बवाल हो जाता है।'

'मैंने साथ ही यह भी कहा था कि बनी मखज़ूम अरब का एक बहुत ही प्रसिद्ध और सम्मानित परिवार है और उम्मि-सलमा उस परिवार का सब से बढ़िया इत्र है। आप ने ऐसी बीबी से शादी करके बहुत अच्छा किया।'

खलीफा ने कहा, 'तू झूठा है। तूने यह कुछ नहीं कहा था।'

मैंने उत्तर दिया, 'मैं सच बोलूं और उम्मि सलमा के हुक्म

से मेरी गर्दन उड़ा दी जाय इस से तो झूठ बोलना ही अच्छा है।'

खलीफ़ा हँस पड़े और भीतर से उम्मि सलमा भी कहकहा मारती हुई सुनाई दी। मेरी जान बच गई।'

हमने यह किस्सा इसलिये दिया है कि अरबी भाषा में भी सौत अर्थात् दूसरी बीबी के लिये अच्छे शब्द (पर्याय) नहीं है और हज़रत मुहम्मद साहेब के पैगम्बरी परिवार में भी बहुत सी उलझनें उत्पन्न होती रहीं। हमारी धारणा है कि हज़रत मुहम्मद साहेब ने जिस सुधार की ओर पहला पग बढ़ाया उस को पूरा करना उनके अनुयायियों और भक्तों का कर्तव्य है, आजकल बहुत से मुसल्मान केवल कई विवाह करने में ही मुहम्मद साहेब का अनुकरण करना चाहते हैं और जब कभी मुसल्मान महिलायें इस दूषित प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ करती हैं तो मौलवी मुल्लाने सर पर आ टूटते हैं। बुद्धिमान मुसल्मानों के लिये यह एक सोचने योग्य बात है। यह इस्लाम का दुर्भाग्य था कि हज़रत खुदैजा का निधन इतने दिनों पहले हो गया और समस्त मुसल्मान उम्मत को उसका दुष्परिणाम उठाना पड़ा।

———

अध्याय ३६

दुष्परिणाम

कुदरत किसी को क्षमा नहीं करती ऋषि हो या मुनि, नबी हो या वली। बुद्धिमान् हो या बलवान्। जो सृष्टि-क्रम का क्षणभर भी उल्लंघन करता है वह अपनी करनी का दण्ड पाता है। हज़रत मुहम्मद साहेब के साथ भी वैसा ही हुआ होगा। सत्यार्थ में तो उनकी पत्नी केवल हज़रत खुदैजा थीं क्योंकि हज़रत के हृदय पर उनको पूर्ण अधिकार प्राप्त था। तत्पश्चात् यदि दो बीबियाँ होतीं तो खालिद् बिन सफ़वान के कथनानुसार हम उनको अरब की भाषा में ज़रतैन (दो सौतें) अर्थात् 'जरर' (हानि) के दो बड़े मूल स्रोत कहते। यदि चार होती तो एक को 'हम्म' (आने वाली विपत्ति का आदि सूत्र), दूसरी को को नसब (चक्की का पाट या ऊपर आई हुई बला), तीसरी को जजर (शोक), चौथी को सख़्व (अन्देशा या फ़रियाद) कहते। हमको अरबी भाषा पर अधिकार प्राप्त नहीं। अतः उनकी दस बीबियों को किन नामों से अभिहित करें। परन्तु ऐतिहासिक घटनायें बताती हैं कि यद्यपि कुछ सांसारिक लाभ प्राप्त हो गये फिर भी बीबियों की इस लम्बी संख्या ने उनके लिये विपत्ति उत्पन्न कर दी। परन्तु थे मुहम्मद साहेब एक महान् पुरुष। और बड़े लोग प्रतिकूल परिस्थितियों पर भी प्रभुत्व पा लेते हैं इसलिये उनके जीवन काल में यह आग दबी रही। परन्तु ज्यों ही वह चल दिये पारिवारिक झगड़ों की ज्वाला भड़क उठी। हज़रत आयिशा और हज़रत फातिमा (अर्थात्

सौतेली माँ और सौतीली बेटी) के झगड़े जो मुहम्मद साहेब के जीवन काल में दूबे पड़े थे उभर पड़े। हज़रत अबूबकर (हज़रत आयिशा के पूज्य पिता जी) और हज़रत अली (हज़रत फातिमा के आदरणीय पति) जो दोनों रसूल-अल्लाह (मुहम्मद) के सब से बड़े भक्तों में थे एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी हो गये। और यह विरोध व्यक्तित्व तक सीमित न रहकर पूरी उम्मत में फैल गया। और आज चौदह सौ साल में उसकी जड़ें पाताल तक पहुँच गई हैं और किसी के उखाड़े नहीं उखड़तीं। ऐशिया और अफ्रीका दोनों महाद्वीपों में जहाँ कहीं इस्लाम गया है या जाता है इस विरोध को साथ ले जाता है। कभी इस्लाम के प्रेमियों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि कमजोरी कहाँ है जिसके कारण पहले चार प्रसिद्ध खलीफों में से तीन को हत्या की गई। क़ाफ़िरों के हाथों नहीं। काफ़िर और उनका कुफ्र तो पहले ही समाप्त हो चुका था। इन हत्याओं के करने वाले तो मुसलमान और उनका ईमान ही था। करबले की शोक-जनक दुर्घटना के बाद कूफ़ा के राज भवन में थोड़े ही दिनों के भीतर कम से कम चार मशहूर मुसलमान लीडरों के सिर जो विरोधी दलों से सम्बन्ध रखते थे एक के बाद दूसरे, काट कर पेश किये गये। इमाम हुसैन का सिर इब्न जयाद के सामने, इब्न जयाद का सिर मुख्तार के सामने, मुख्तार का सिर मसअब के सामने और मसअब का सिर अब्दुलमलिक के सामने। इनके लिये कोई अबूसफ़ियाँ के खानदान को बधाई देंगे और कोई हज़रत अली और उनकी सन्तान की प्रशंसा करेंगे। हर नया साल मुहर्रम के पवित्र मास से आरम्भ होता है और मुहर्रम का पहला अशरा (दस दिन) बहुपत्नी प्रथा के एक विस्पष्ट दुष्परिणाम की व्याख्या करता है।

मेरा यह अभिप्राय नहीं कि दूसरे मजहबों में दलबन्दी या

पार्टी बन्दी नहीं है। परन्तु यह भेद धर्म-प्रवर्तक के किसी व्यक्तिगत विशेष आचार के कारण उत्पन्न नहीं हुये। यह असम्भव नहीं था कि मुहम्मद साहेब के अनुयायी अपनी निज त्रुटियों के कारण दो दलों में विभक्त हो जाते। परन्तु जब जमल के युद्ध में हज़रत आयशा स्वयं ऊँट पर सवार होकर आ गईं तो उसका स्पष्ट अर्थ तो यह हुआ कि हज़रत मुहम्मद साहेब के व्यक्तित्व को येन केन प्रकारेण कीचड़ में घसीट लिया गया। समय घावों को भर देता है परन्तु घावों के चिह्नों को मिटा देना काल के लिये भी कठिन है। जमल का युद्ध व्यतीत हुये शताब्दियाँ गुज़र गईं परन्तु उसका उदाहरण तो अब भी शेष है। जब लखनऊ या इलाहाबाद में मुहर्रम के दिनों में मर्सिया गोई शुरू होती है तो सूखे चिह्न भी हरे घाव बन जाते हैं। हम इस अनिष्ट प्रसंग को लम्बा करना नहीं चाहते। अकलमंदों के लिये इशारा काफ़ी है।

अध्याय ३७

मुसल्मानों की विजयें

इस अध्याय का शीर्षक हमने पहले 'इस्लाम की विजयें' रक्खा था परन्तु जब हम लिखने लगे तो हमको भान हुआ कि यह शीर्षक हमारे आशय को यथार्थ रूप में व्यक्त नहीं करता। इसलिये हमने बदल कर इसको 'मुसल्मानों की विजयें' कर दिया। वस्तुतः 'इस्लाम' और मुसल्मानों में भेद है। इस्लाम एक *मनोवृत्ति* है जिसका फैलाना हज़रत मुहम्मद साहेब के जीवन का केन्द्र था। मुसल्मान वह व्यक्ति है नर या नारी जो अपने को मुसल्मान कहता है चाहे वह उस '*मनोवृत्ति*' को रखता हो चाहे उससे सर्वथा अनभिज्ञ हो। जब हम कहते हैं कि दुनियाँ में आज इतने मुसल्मान हैं या इतने मुसल्मानी देश हैं अथवा इतने मुसल्मानी राज्य हैं तो वह अभिप्राय मनुष्यों से है उनकी मनो-वृत्ति से नहीं। जब हम कहते हैं कि इस कैदखाने में दो सौ कैदी मुसल्मान हैं तो वहाँ इस्लाम की *मनोवृत्ति* से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अपितु उन मनुष्यों से होता है जिनको '*इस्लामी मनोवृत्ति का अनुयायी*' कोई न कहेगा। 'मुसल्मान' एक क़ौम, गिरोह या उम्मत का नाम है। इस्लाम एक मनोवृत्ति या जीवन-विधान है। यदि कुछ मुसल्मान किसी देश को जीत कर अपने अधिकार में कर लें तो उसको 'मुसल्मानों की विजय' कहेंगे। और यदि वह लोग '*इस्लामी धर्म*' को यथार्थतः स्वीकार कर लें, चाहे वह स्वतन्त्र हों चाहे किसी मुसल्मान बादशाह के शासन में, तो उसको हम 'इस्लाम की विजय' कहेंगे। यदि मैं *इस्लामी सिद्धान्तों*

का विश्वासी हो जाऊँ तो यह है '*इस्लाम की विजय*'। इसलिये जो कुछ इस अध्याय में लिखा जायगा उसको 'मुसल्मानों की विजय' कहना ही ठीक होगा।

मुसल्मानों को यह अभिमान है कि मुसल्मानों को थोड़े ही दिनों में दुनियाँ के प्रसिद्ध और शक्तिशाली देशों पर विजय प्राप्त हो गई। यह अभिमान निराधार नहीं है। जिस वेग से अरब और अरब के आस पास के देश मुसल्मान हो गये इसको पढ़ने से आश्चर्य होता है। जन्म के समय मुहम्मद साहेब एक लगभग अकिंचन व्यक्ति थे। न सम्पत्ति न समृद्धि, न सेना न शस्त्र, न प्रभाव न सम्मान। परन्तु जब मरे तो पूरा अरब हज़रत मुहम्मद साहेब के पैरों के नीचे आ गिरा। वह उस समय के सम्राट् हो गये। जब नबूअत (पैगम्बरी) आरम्भ की तो एक छोटे से अज्ञात 'पीर' थे। उनके शिष्यों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती थी। शनैः शनैः पीरी के साथ-साथ मीरी (शासकता) भी आ गई। मृत्यु के समय 'अरब के पीर' तो थे ही, 'अरब के मीर' भी हो गये। 'पीरी' धीरे-धीरे 'मीरी' में विलीन हो गई।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि हज़रत मुहम्मद में नेतृत्व की योग्यता विचित्र थी। 'अहद' की लड़ाई से इसका पूरा प्रमाण मिलता है। 'अहद' के युद्ध में मुसल्मानों की घोर पराजय हुई थी। उनके बड़े-बड़े सेनापति खेत रहे। उस समय मदीना और मदीने वालों की दशा बड़ी खेदजनक थी। शत्रुओं का साहस बढ़ रहा था। मुसल्मानों में निराशा छाई हुई थी। सच्चे नेता की योग्यता का परिचय ऐसे ही कठिन समय में होता है। यह मुहम्मद साहेब की ही योग्यता थी कि लगभग बुझी हुई आग की एक मुट्ठी भर राख को सौन्दर्य के साथ ऐसा प्रज्वल्यमान कर दिया कि उसकी ज्वाला दिन प्रतिदिन बढ़ती रही और किसी

विकट से विकट आँधी में उसके बुझाने का साहस न हुआ।

आरम्भ में मुहम्मद साहेब का ध्यान केवल अरब तक सीमित था। इसलिये कुरान शरीफ़ की आरम्भ की आयतों में इसी का वर्णन है कि हमने कुरान को अरबी भाषा में उतारा है जिससे अरब वाले और मक्का के पार्श्ववर्त्ती लोग उसको समझ सकें। परन्तु जब मदीना वालों की शक्ति बढ़ गई और मुसल्मानों के पास पर्याप्त सेना हो गई तो हज़रत मुहम्मद साहेब ने केवल परीक्षण के रूप में अरब के बाहर भी दृष्टि डाली। सन् ८ हिजरी में मक्का जीत लिया गया तो समस्त अरब की शक्ति मुहम्मद साहेब की शक्ति हो गई। अरब के लोग युद्ध-प्रिय तो पहले से ही विख्यात थे। अरब का हर एक भाग रण क्षेत्र रहा करता था। अन्यान्य क़बीले एक दूसरे से लड़ते रहते थे। युद्ध इनका भोजन था। अतः अरब के इन क़बीलों को संलग्न रखने के लिये भी तो कोई काम चाहिये। साधारणतया देखा जाता है कि जब किसी देश में किसी भारी युद्ध को लड़ने के लिये बड़ी-बड़ी सेनायें रक्खी जाती हैं तो यही सैनिक जो युद्ध की विजय के साधन होते हैं युद्ध की समाप्ति पर अपने ही देश के लिये संकट बन जाते हैं। अतः मुहम्मद साहेब ने यह उचित समझा कि इन लड़ाका लोगों को किसी काम पर लगाते रहो। इस प्रयोजन से उन्होंने सन् ९ हिजरी में निकटस्थ देशों में दूत भेजे कि तुम हमारे धर्म को स्वीकार कर लो अन्यथा हम तुमको देख लेंगे। इसीलिये सन् ९ हिजरी दूत-वर्ष (आमुल वफ़ूद) कहलाता है यह मुसल्मानों की विजय की अथश्री है।

हर विजय के दो हेतु होते हैं। एक विजेता की शक्ति। दूसरी पराजित की निर्बलता। अरब वाले लड़ाके थे परन्तु विभक्त थे। अतः चूल्हे पर ही तलवार चलाते रहते थे। उनका जीवन एक गुमनाम जीवन था। हज़रत मुहम्मद साहेब के झंडे के नीचे

आकर उनकी शक्ति एकत्रित हो गई। एक और एक ग्यारह हो गये। नया धर्म, नया जोश, नये रणक्षेत्र, और नई उत्तेजना, अरब के बाहर के राज्यों में चमक दमक तो थी परन्तु केवल ऊपरी खोल था। वास्तविकता मुद्दत से लोप हो चुकी थी। सीरिया (शाम), इराक़ (मैसोपोटामिया) आदि तो बहुत छोटे देश थे। यहूदी, ईसाई और मूर्ति पूजक आपस में लड़ते रहते थे। परन्तु दो प्रबल शक्तियाँ थी ईरान और रूम की। यह दो बड़े साम्राज्य थे। संसार भर में इनकी धाक थी। परन्तु गत आठ सौ वर्ष के निरन्तर युद्धों ने उनकी शक्ति को विनष्ट कर दिया था। ईसा के जन्म से कुछ पहले ईरान (पर्शिया) का साम्राज्य, उस की श्री, उसकी विलासता और उसका अभिमान इतना बढ़ गया था कि मक़दूनिया के शासक 'महान् सिकन्दर' ने थोड़े से पहाड़ी योद्धाओं को लेकर दारा जैसे ईरान के सम्राट को बात की बात में पराजित कर दिया था। उस युद्ध के बाद ईरान फिर उभरने को नहीं आया। 'फिर्दौसी' (फारसी का प्रसिद्ध कवि) ने शाहनामें में तातारियों और ईरानियों की आपस की लड़ाइयों का वर्णन किया है। आठ सौ साल के क्षयी रोग के रोगी ईरान का शरीर तो विशालकाय था परन्तु उसकी शक्ति सर्वथा क्षीण हो चुकी थी। रहा रूम का साम्राज्य! उसकी राजधानी थी इटली का प्रसिद्ध नगर 'रोम'। एशिया के पश्चिमी भाग को 'रूम' इसी लिये कहते थे कि 'रोम साम्राज्य' की विशालकाय विभूति का यह एक सीमान्त भाग था। रोम नगर बहुत दूर था। ईसा की पहली शताब्दी में रोम के विजेता समस्त यूरोप को जीत कर पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका पर आधिपत्य प्राप्त कर चुके थे। इनकी ओर से इन दूरस्त प्रदेशों के शासन के लिये प्रशासक (गवर्नर) नियत हुआ करते थे। हज़रत ईसा को सूली भी रोम साम्राज्य के एक अधिकारी पोण्टियस

पाइलेट (Pontius Pilate) ने दी थी। केन्द्रीय शक्ति के चढ़ाव उतार पर सीमान्त प्रदेशों का भी आश्रय था। हज़रत ईसा की चौथी शताब्दी में महाराज कौन्स्टेन्टायन (Constantine) ने 'कुस्तुन्तुनिया' नगर बसाया। और कुस्तुन्तुनियाँ ईसाई धर्म का केन्द्र बन गया। इसके पश्चात् रूम और ईरान में निरन्तर युद्ध होते रहे। और एक दूसरे की शक्ति को क्षीण करते रहे। इस बात की सूचनायें मुहम्मद साहेब को भी मिलती रहती थीं।

ईरान में मूर्ति पूजा थी। रूमी एशिया में ईसाइयों और युहूदियों का ज़ोर था। हज़रत मुहम्मद साहेब की ऐसी प्रवृत्ति थी कि जब ईरान वाले जीत जाते थे तो वह युहूदियों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते थे और जब युहूदी जीत जाते तो हर्ष मनाया जाता था।

'हज़रत मुहम्मद साहेब के समय में ईरानियों ने रूमियों पर बहुत बड़ी विजय पाई। बैतुल् मुक़द्दस (जरूसलम) पर स्वत्व जमा लिया और ६१६ ई० में मिश्र पर चढ़ाई कर दी। और सिकन्दरिया ले लिया। यतः ईरानी मूर्तिपूजक थे अतः मक्के के मूर्तिपूजक बहुत प्रसन्न हुये। रूमी युहूदी थे अतः मुसल्मानों को शोक हुआ। इस पर सूरत 'रूम' की यह आयतें उतरीं :—

'रूम वाले निकटस्थ प्रदेश में पराजित हो गये। और वह पराजित होने के पश्चात् फिर विजयी हो जायँगे। थोड़े ही सालों में।'* (सूरत रूम आयत १-३)

हज़रत मुहम्मद साहेब की इस भविष्यवाणी की पीठ पर उनका अनुभव था। उनको न ईरान से मित्रता थी न रूम से।

---

* गुलिबरू'मो। फ़ी अदनल् अर्ज़ि। व हुं मिं ब़ादि ग़लबिहिम। स यग्लिबून फी बिज़ए सिनीन। (सूरत रूम आयत १-३)

वह अपनी ही उन्नति की बात सोच रहे थे। वह जानते थे कि रूम की पराजय एक सीमान्त कोने की पराजय है। जब केन्द्र को सूचना मिलेगी तो वह सीमान्त की सहायता करेगा। दूसरी बात उनको यह भी ज्ञात थी कि ईरान एक घुन-खाया हुआ देश है। ईरान की गद्दी पर नित्य नये बादशाह आते रहते हैं। इनकी विजय स्थायी कैसे हो सकती है? कुरान में एक विशेष अरबी शब्द का प्रयोग हुआ है 'विजये सिन्नीन'। 'बिजये सिन्नीन' का अर्थ है 'कुछ सालों में'। मुहम्मद साहेब से लोगों ने पूछा कि 'बिजये सिन्नीन' (कुछ सालों) से क्या आशय है? कब तक प्रतीक्षा की जाय? हजरत मुहम्मद साहेब विद्वान् थे और बात को समझते थे। उन्होंने कहा कि अरबी भाषा में 'बिज्अ' का शब्द 'तीन' से लेकर 'नौ' संख्या तक का द्योतक है। कभी न कभी भविष्यवाणी पूरी होकर रहेगी।

फलतः जब मुहम्मद साहेब ने 'अब्दुल्ला बिन् हजाफ़ा' को ईरान के सम्राट ख़ुसरो परवेज के दरबार में भेजा तो उसने क्रोध में पत्र फाड़ डाला। और दो आदमियों को भेजा कि मुहम्मद साहेब को पकड़ कर हमारे दरबार में हाजिर करो। परन्तु उसी रात को ख़ुसरो परवेज के लड़के 'शेरोया' ने अपने बाप को क़त्ल कर डाला और बला टल गई।

मुहम्मद साहेब की मृत्यु के पश्चात् महान् ख़लीफ़ों की शक्ति इतनी बढ़ गई थी और उनकी सेनायें इतनी अधिक हो गई थीं कि उन्होंने लगातार इराक़, शाम, ईरान, तूरान, रूम आदि प्रदेशों पर अपनी चढ़ाइयाँ जारी रक्खीं, और लगभग एक सौ वर्षों के भीतर यूरोप में जिब्राल्टर, अफ्रीका में मिश्र और उत्तरी अफ्रीका, एशिया में सिन्ध की सीमा तक सब देश मुसल्मान हो गये। शायद इतने अल्प काल में किसी जाति ने इतने बड़े भूभाग को अपने आधीन नहीं किया। मुसल्मान लोग आज भी इस पर

अभिमान करते हैं और इसको 'इस्लामी मौजिज़ा' (दीन का चमत्कार) समझते हैं।

परन्तु हमको इसमें चमत्कार (अलौकिकता) की कोई बात दिखाई नहीं देती। सिकन्दर की सेना ने कतिपय वर्षों में ही पश्चिमी एशिया पर स्वत्व प्राप्त कर लिया था। उन दिनों भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त सम्राट था। यह इतना शक्तिशाली था कि सिकन्दर के सैनिक भयभीत होकर आगे बढ़ने से कतरा गये। और जब सिकन्दर की मृत्यु पर सिल्यूकस ने भारत पर चढ़ाई की तो बुरी तरह से हार गया और अपनी पुत्री देकर चन्द्रगुप्त से सन्धि करली। ईसा की पहली शताब्दी में जब जूलियस सीज़र आदि रोम के सेनापति थे तो एक ही धावे में समग्र पश्चिमी एशिया, अखिल यूरोप तथा पूरा उत्तरी अफ्रीका रोम साम्राज्य में आ मिला था। इन आठ नौ शताब्दियों में जहाँ ईरान, रोम आदि बड़े साम्राज्य होने पर भी निर्बल हो चुके थे वहाँ भारतवर्ष पर भी तबाही आ गई थी। चन्द्रगुप्त जैसा कोई सम्राट नहीं रह गया था। भारतवर्ष सैकड़ों छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था। यह सैकड़ों राजे आपस में लड़ते रहते थे। ईसा की ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में उत्तरी भारत के दो बड़े राज्य थे। एक कन्नौज जिसका राजा था जयचन्द्र, दूसरा दिल्ली जिसका राजा था पृथ्वीराज। यह दोनों बड़े शक्तिशाली थे। और अपस में थे बड़े शत्रु। नियम यह है कि यदि १० इकाइयों की शक्ति वाला पुरुष किसी दूसरे १० इकाई शक्ति वाले पुरुष के साथ मिल जाय तो दोनों की शक्तियाँ मिलकर बीस हो जाती हैं परन्तु यदि वे एक दूसरे के विरुद्ध हो जांय तो उनकी शक्ति शून्य रह जाती है। यदि १० इकाइयाँ की शक्ति वाले मनुष्य का कोई ऐसा प्रतिद्वन्द्वी हो जिसकी शक्ति केवल १ इकाई हो तो दोनों की मित्रता की अवस्था में शक्ति की मात्रा

११ इकाइयाँ होगी। परन्तु शत्रुता की अवस्था में (१० ऋण १) केवल ९ इकाइयाँ रह जायगी। इसी प्रकार यदि किसी देश में दो समकक्ष (सम-शक्ति) दल एक दूसरे के शत्रु हो जायं तो उनकी शक्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है।

ईरान और रूम से जब मुसल्मानों का सामना हुआ तो उसमें मुसल्मानों की विजय का यही रहस्य था। कहने को तो दो महती शक्तियाँ थीं। परन्तु उनका शेष परिमाण तो शून्य था। भारतवर्ष में भी मुसल्मानों के सौभाग्य से ऐसा ही हुआ। भारतवर्ष में उस युग में मूर्ति-पूजा का प्राबल्य था। मूर्ति-पूजकों के समान बल के तीन दल थे। एक हिन्दू, दूसरे जैनी, तीसरे बौद्ध। इन तीनों के विशालकाय मन्दिर थे। और उनमें परस्पर द्वेष था। हर दल अपनी मूर्तियों की कल्याणकारिता तथा पवित्रता को दूसरी मूर्तियों की अपेक्षा उत्कृष्ठ बताता था। समस्त भारतवर्ष की गाढ़ी कमाई का धन इन्हीं मन्दिरों के बनाने और सजाने में खर्च हो गया था। और उसी अनुपात से शिक्षा दीक्षा में कमी आ गई थी। अतः जब गज़नी से महमूद की सेनायें पूर्व की ओर बढ़ीं तो मुसल्मान विद्वानों ने महमूद को इस्लामी धर्म का संरक्षक और प्रतिनिधि घोषित कर दिया? और उसने सोमनाथ के मन्दिर को तोड़कर करोड़ों रुपया की सम्पत्ति लूट ली। इसमें उसको और उसके सिपाहियों को धन भी मिला और एक बड़ी मूर्ति के तोड़ने का पुण्य भी मिला। हिन्दुओं के इस मन्दिर के तोड़ने पर दूसरे मूर्ति पूजक दलों में हर्ष मनाया गया कि इस देवता में कुछ शक्ति न थी कि जल्दी टूट गया। परन्तु महमूद ने बारीबारी से उनके मन्दिर भी तोड़ डाले।

अगली शताब्दी में जब ग़ोर से वहाँ के सेनापति मुहम्मद ग़ोरी ने भारत पर चढ़ाई की तो यद्यपि पृथ्वीराज ने उसको हरा

दिया परन्तु जयचन्द की सहायता से वह दिल्ली पर अधिकार जमाने में सफल हो गया। और जब तक कि जयचन्द को अपनी भूल की अनुभूति हो सकती, जयचन्द को भी अपने देश-विद्रोह का दण्ड मिल गया। इस प्रकार मुसल्मानों का पश्चिम, पूर्व, उत्तर, दक्षिण समस्त भारत पर अधिकार जम गया। इस सौभाग्य पर गर्व करना अनुचित या अकारण नहीं है परन्तु भारत की विजय और ईरान तथा रूम की विजय में बहुत अंतर है। ईरान में जरतुश्त की धार्मिक शिक्षा बहुत जीर्ण हो चुकी थी। भारतवर्ष में मतमतान्तर के भेद होते हुये भी यहाँ की शिक्षा दीक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था। भारतवर्ष की देह पराजित हुई थी। आत्मा पराजित नहीं हुआ था। भारतवर्ष के लोगों ने घोर विपत्तियों के आक्रमणों पर भी कभी दिल से बाहर वालों की दासता स्वीकार नहीं की और स्वतन्त्रता के लिये बराबर हाथ पैर मारते रहे। एक बार हार खाकर भी फिर खड़े हो जाते थे। मुसल्मान विजेताओं की जितनी क़बरें उत्तरी भारत में मिलेंगी जो कि हिन्दुओं के मुकाबिले में मारे गये उतनी शायद अन्यत्र न हों। जो मुसल्मान बने वह भी नाम मात्र। और वह भी इस कारण से कि हिन्दुओं में एक ऐसी मिथ्या भावना आ गई थी कि यदि कोई मनुष्य हिन्दुओं के धर्म से बाहर चला जाता था तो उसे कभी किसी दशा में भी वापिस आने की आज्ञा न थी। ऐसी परिस्थिति में करोड़ों हिन्दू ऐसे थे जिन्होंने हार कर इस्लाम स्वीकार कर लिया परन्तु न तो मूर्ति पूजा छोड़ी न घर के पुराने रस्मो रिवाज त्यागे। उनका एक नया नाम पड़ गया अर्थात् नौ-मुस्लिम (नवीन मुसल्मान)। यह सैकड़ों वर्ष पुराने होते हुये भी नौ-मुस्लिम ही रहे। ईरान, इराक़, शाम आदि हार मानते ही धर्म परिवर्तन कर दिया करते थे। हिन्दू हार कर भी दिल से मुसल्मान नहीं होता था। इसी

पर तो हाली साहब (उर्दू के प्रसिद्ध कवि) ने लिखा है :—

'जहाजे हजाजी का बेबाक बोड़ा।
न जेहूँ में अटका न सेहूँ में ठठका,
किये पार थे जिसने सातों समन्दर।
गिरा वह दहाने में गंगा के आकर।'

परन्तु कुछ भी क्यों न हो। मुसल्मानों की विजयों में कोई सन्देह न था। इन विजयों ने कई शताब्दियों तक मुसल्मानों को धनवान् प्रतिष्ठावान् और उदात्त-मस्तक बनाये रक्खा।

परन्तु विजय मुसल्मानों की थी। इस्लाम की नहीं। मुहम्मद साहेब या इनके खलीफों ने किसी मुल्क में किसी राजा या किसी प्रजा के पास धर्म प्रचारक नहीं भेजे थे जो यह समझाते कि मुहम्मद साहेब की शिक्षा दीक्षा और उनकी शिक्षा-दीक्षा में क्या अन्तर है और उनको अपना पैतृक धर्म छोड़कर क्यों नया धर्म ग्रहण करना चाहिये। उन्होंने भेजे राज-दूत या एलची जिनके साथ युद्ध का चैलेंज था। 'हमारा दीन मानो या लड़ो।' ईरान के बुतपरस्तों, जरूसलम के ईसाइयों और शाम के युहूदियों के साथ एक सा ही सुलूक था, निमंत्रण दीन का न था अपितु राजाधिकार का था, जिस पर 'मजहब' की चाशनी चढ़ी थी।

इसके विपरीत कुछ धार्मिक प्रचार पर भी दृष्टि डालिये। हजरत ईसा ने जब धर्म-दीक्षा के लिये अपने चेलों को भेजा तो उनके साथ कोई सेना न थी, न माल, न दौलत! दरिद्र, निर्धन, सरल और त्यागी लोग युहूदियों को दुराचार से बचने और कुप्रथाओं को त्यागने का उपदेश करते थे। उस समय ईसाईयत ने सम्प्रदाय या विशेष मत का रूप धारण नहीं किया था। ईसा न तो खुदा के इकलौते बेटे थे न पैगम्बर। यह सब कुछ तो हजरत ईसा के बहुत दिनों के पश्चात् हुआ। महात्मा बुद्ध और

उनके शिष्य तो आत्म-रक्षा के लये भी शस्त्र नहीं रखते थे। सेनाओं का तो प्रश्न ही क्या था? यहाँ तक कि जब सम्राट् अशोक ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और अपने पुत्र और पुत्री को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये भेजा तो साथ कोई सेना न थी। राजकुमार और राजकुमारी ने समस्त राज-चिह्न त्याग दिये थे जिससे धर्म (दीन) का प्रचार बिना किसी दबाव, धमकी या प्रलोभन के केवल विचार-स्वातंत्र्य के आधार पर हो सके। महात्मा बुद्ध ने कोई देश नहीं जीता। यद्यपि जहाँ वह गये वहाँ के लोगों ने स्वयं उनकी शिक्षा को स्वीकार किया। किसी दबाव से नहीं। महात्मा बुद्ध तो दबाव सहने के लिये बनाये गये थे न कि दूसरों पर दबाव डालने के लिये। भारतवर्ष में सैकड़ों साधु महात्मा समय-समय पर होते रहे हैं। उन्होंने कभी किसी पर सेना लेकर चढ़ाई नहीं की। स्वयं हमारे समय में महात्मा गाँधी का उदाहरण है। गाँधी जी उपदेशक थे विजेता न थे।

हमको हज़रत मुहम्मद साहब के समस्त जीवन में या उनके 'महान् ख़लीफ़ों' के जीवन में एक उदाहरण भी नहीं मिलता जहाँ कि इसलाम की दावत देने वाले के हाथ में साथ-साथ तलवार न रही हो।

हज़रत अबूबकर, हज़रत उमर, हज़रत उसमान और हज़रत अली, सब ने बड़े-बड़े सेनापति भेजे कि वह मुसल्मानों की विजयों को पूर्ण कर सकें। यदि किसी स्थान पर विरोध हुआ तो उसका युद्ध के रूप में उत्तर दिया गया। ईसाई या बौद्ध प्रचारकों में से बहुतों को अपने प्राण देने पड़े। कहीं-कहीं तो उन्होंने केवल दूसरों के मिथ्या विश्वासों से युद्ध करने के लिये अपनी जान को जोखों में डाला। कभी क़सास का प्रश्न पैदा नहीं हुआ। (मुसल्मानों में 'क़सास' एक पारिभाषिक शब्द है

कि जान के बदले में जान लेना)। मुसल्मानी विजयों की स्थिति भिन्न है।

इसका परिणाम क्या हुआ ? हज़रत अबूबकर के जीवन पर तनिक दृष्टि डालिये। मक्के की विजय के उपरान्त समस्त अरब मुसल्मान हो गया था। परन्तु शरीर से न कि मन से। और थोड़े दिनों के पीछे ही अरब भर में 'फ़ितनए इरतदाद' उत्पन्न हो गया। 'फ़ितनए इरतदाद' क्या था ? अर्थात् एक बार मुसल्मान हो जाने के बाद फिर अपने पुराने दीन की ओर लौट जाना। इस 'फ़ितनए इरतदाद' के मिटाने के लिये हज़रत अबूबकर और उनके उत्तराधिकारियों ने बराबर सेनाओं की टोलियाँ भेजीं। यह क्रम बराबर जारी रहा। हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि ६६० ई० से लेकर ६७० ई० तक दस साल के भीतर कूफा के दरबार में चार मुसल्मान लीडरों के सर काट कर उपस्थित किये गये थे। अर्थात् हज़रत हुसैन, इब्नज़याद, मुख्तार और मसअब। हज़रत अबूबकर केवल दो साल ख़लीफ़ा रहे। बाकी तीन ख़लीफ़ों को तो मुसल्मानों ने ही क़त्ल किया था।

जब नेताओं की जान हर समय संकट में थी तो कैसे कहा जा सकता है कि साधारण जनता की क्या अवस्था रही होगी ? प्रतिदिन नई बैअत (नये शासक के शासन की आधीनता को स्वीकार करने का नाम बैयत है) का प्रश्न खड़ा रहता था। और बैअत के साथ प्राणों का भी। जिसने आनाकानी की उसी सिर की ख़ैर न थी। इसीलिये हम कहते हैं कि यह विजयें मुसल्मानों की थीं इस्लाम की नहीं। असली इस्लाम जिसकी नींव तौहीद परस्ती (एक-ईश्वर-पूजन) तथा विश्ववन्धुत्व पर थी कभी का राज्य-लिप्सा के नीचे दब चुका था।

हम यह नहीं कहते कि इन विजयों से जगत् को कोई लाभ नहीं हुआ। अफ्रीका की जंगली जातियों ने तो मुसल्मान होकर

भी कुछ न कुछ सीखा ही। कुरान की शिक्षा ने उनके बहुत से दुर्गुण दूर कर दिये। परन्तु जहाँ वहीं लोगों का शिक्षा दीक्षा का स्तर ऊँचा था वहाँ लोगों को हानि ही रही। उदाहरण लीजिये। मुसल्मानों के आने से पूर्व भारतवर्ष में मूर्ति पूजा भी थी, नदी पूजा भी, पर्वत पूजा भी, नक्षत्र-पूजा भी, वृक्ष-पूजा भी। यह सब पूजायें ज्यों की त्यों रहीं। एक पूजा बढ़ गई। अर्थात् क़ब्र-पूजा और ताजियों की पूजा। अजमेर शरीफ़, अमरोहा शरीफ़ आदि आदि सैकड़ों मजार हैं जहाँ हिन्दू और मुसल्मान दोनों जाते हैं और तौहीद (एक-ईश्वर) को भूल जाते हैं। कहीं-कहीं सामयिक आवश्यकता को पूरा करने के लिये मुसल्मानों ने पुस्तकालय जला दिये जिससे कुरान शरीफ़ के मुकाबिले की कोई किताब बाक़ी न रहे। कहते हैं कि हज़रत उमर की अनुमति से मिश्र का पुस्तकालय जलाया गया था और यह युक्ति दी गई थी कि यदि इस पुस्तकालय की पुस्तकों में कोई ऐसी बात है जो कुरान शरीफ़ में नहीं तो ऐसे व्यर्थ पुस्तकालय को बाकी नहीं छोड़ना चाहिये। और यदि वही बातें हैं जो कुरान शरीफ़ में हैं तो कुरान शरीफ़ काफ़ी है। इस पुस्तकालय की आवश्यकता नहीं। मालूम नहीं कि यह किम्वदन्ती कहाँ तक ठीक है और हज़रत उमर इस के कहाँ तक उत्तरदाता हैं परन्तु तथ्य तो यह है कि मानवी ज्ञान को केवल कुरान शरीफ़ के थोड़े से पन्नों तक सीमित रख कर मुसल्मानों ने दुनियाँ के साथ न्याय नहीं किया। न ज्ञान के साथ। न ब्रह्म विद्या के साथ और न इस्लाम के साथ।

———

अध्याय ३८

जिहाद

इस्लाम के विरोधियों की प्रायः यह शिकायत रही है कि इस्लाम के पोषकों ने 'जिहाद' की शिक्षा देकर मुसल्मानों को गैर-मुस्लिमों पर अत्याचार की शिक्षा दी है। आरंभ में तो मुसल्मान विद्वानों ने इस शिकायत की कुछ विशेष परवाह नहीं की। परन्तु जब विज्ञान का युग आया और संसार में विचार-स्वातंत्र्य का विस्तार हुआ तो मुसल्मानों को भी यह आवश्यकता अनुभूत हुई कि इस दोषारोपण का खण्डन करें जिससे कि वह जगत् के इस नवीन-युग में संकुचित विचारों और अत्याचारों के दोषी न ठहराये जाँय। कुरान के भाष्यकार तो पदे-पदे यह दिखलाते रहे हैं कि कुरान शरीफ़ की शिक्षा के प्रचार में किसी प्रकार की सख्ती नहीं बरती गई। अभी थोड़े दिन हुये 'अब्बुल आला मौदूदी' की एक बड़ी पुस्तक प्रकाशित हुई है। 'अल् जिहाद फिल् इस्लाम' (इस्लाम में जिहाद)। इसमें मुसल्मानों की ओर से सफाई पेश की गई है। तथा तुलना करके यह दिखाया गया है कि मुसल्मानों से अधिक दूसरे धर्मावलम्बियों ने अत्याचार किये हैं। हम उचित समझते हैं कि इस पुस्तक से कुछ उद्धरण उद्धृत करें :—

(१) 'नये युग में यूरोप ने अपने राजनैतिक स्वार्थों के निमित्त मुसल्मान पर जो दोष घड़े हैं। उनमें सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि इस्लाम एक रुधिर-प्रिय धर्म है। और अपने अनुयायियों को मानव-हत्या की प्रेरणा करता है। इस आक्षेप की यदि कुछ

सत्यता होती तो स्वभावतः उसे उस समय प्रस्तुत करना चाहिये था जब कि इस्लाम के अनुयायियों के तलवार-कृत घावों ने भूमण्डल में एक तहलका मचा रक्खा था............अनोखी बात यह है कि इस आक्षेप की उत्पत्ति इस्लाम की उन्नति के सूर्य के अस्त होने के बाद बहुत दिनों पीछे हुई। और इस के ख़याली पुतले (कल्पित शरीर) में उन वक्त रूह फूंकी गई जब इस्लाम की तलवार जंग (मोर्चा) खा चुकी थी।

(२) लेकिन दिसम्बर १९२६ वीं आख़िरी तारीख़ों में एक ऐसा वाक़िआ (दुर्घटना) पेश आया जिसने मुझे कठिनाइयों की उपेक्षा करके कार्यान्वित होने के लिये मजबूर कर दिया। यह वाक़िआ शुद्धि की तहरीक के बानी स्वामी श्रद्धानन्द के क़त्ल का वाक़िआ था। जिससे जाहिलों और कम नज़र लोगों को इस्लामी जिहाद के सम्बन्ध में मिथ्या बातों के फैलाने का एक नया अवसर मिल गया क्योंकि दुर्भाग्य से एक मुसल्मान इस काम के अपराध के इल्ज़ाम में गिरफ्तार कर लिया गया और अख़बारात में इसकी ओर यह ख़यालात मंसूब किये गये कि इसने अपने मज़हब का दुश्मन समझकर स्वामी को क़त्ल किया है और यह कि इस नेक काम के करने से वह जिन्नत (स्वर्ग) का उम्मेदवार है। हक़ीक़त का इल्म तो ख़ुदा को है। परन्तु साधारण लोगों को जो नज़र पड़ा वह यही वाक़ियात थे। इनकी वजह से आम तौर पर इस्लाम के दुश्मनों में एक हीजान (परेशानी) पैदा न हो गया। उन्होंने मुसल्मान विद्वानों की घोषणाओं, इस्लामी अखबारों और मिल्लत के लीडरों के संयुक्त रीति से स्पष्टीकरणों के बावजूद भी इस घटना को इसकी स्वाभाविक सीमाओं तक सीमित रखने के बजाय तमाम इस्लामिया उम्मत को, बल्कि खुद इस्लामी तालीमात को इसका ज़िम्मेवर करार देना शुरू कर दिया। (देखो दीबचा या भूमिका)

(३) 'ऐ ईमान लाने वालो! क्या मैं तुम्हें ऐसी तिजारत बताऊँ जो तुम्हें दर्दनाक अज़ाब से बचाये? वह तिजारत यह है कि तुम अल्लाह पर ईमान लाओ और इसकी राह में अपने जान और माल से जिहाद करो।'* (देखो सूरत सफ़ आयत ११, पृष्ठ २२)

(४) 'अल्लाह उन लोगों से मुहब्बत करता है जो इसकी राह में सफ़ बाँधे हुये जम कर लड़ते हैं गोया वह एक सीसा पिलाई हुई दीवार हैं।'† (देखो सूरत सफ़ ४, पृ० २२)

(५) फिर जब इस '*जिहाद*' से दुनियाँ की दौलत और मुल्क गीरी मक़सूद नहीं है तो आखिर इस खून बहाने से अल्लाह को क्या मिलता।' (देखो पृ० २४)

(६) 'जिहाद फी सबीलिल्लाह की यही फ़ज़ीलत है जिसकी बिना पर इसे सब मानवी कर्मों में ईमान बिल्लाह के बाद सबसे बड़ा दर्जा दिया गया है और ग़ौर से देखा जाय तो मालूम होगा कि दर हक़ीक़त यही चीज तमाम फजायल और मकारिम अख़लाक़ की रूह है। इन्सान की यह स्पिरिट कि वह बदी को किसी हाल में बरदाश्त न करे।' (देखो पृ० २५)

(७) इसके बाद ही इस तरह मुसलमानों को 'क़िताल' (युद्ध) का हुक्म दिया गया है—'अल्लाह की राह में जंग करो और जान लो कि वह खूब सुनने वाला और जानने वाला है।'‡ (पृ० २९)

---

* या अइयुहल्लज़ीन आमनू हल् अदुल्लुकुं अला तिजारतिन् तन्जीकुं मिन् अज़ाबिन् अलीम्। तूमिनून बिल्लाहि। व तुज्जाहिदून फी सबीलिल्लाहि बि अमूवालिकुं व अनफ़ुसिकुं। (सफ़ ११)

† इन्नल्लाह युहिब्बु ल् लज़ीन युक़ातिलून फ़ी सबीलिहि सफ़्फ़न्। क अन्नहुँ बुन्यानुं मरसूसुन्। (सफ़ ४)

‡ व क़ातिलू फी सबीलिल्लाहि व आलिम् इन्नल्लाह समीऊँ अलीमुन्।

(८) 'जो लोग तुमसे लड़ते हैं उनसे खुदा की राह में जंग करो मगर लड़ने में हद से तजावुज न करो'* (मर्यादा के बाहर न जाओ)। (पृ० ३२)

(९) 'जिन लोगों ने कुफ्र अख्तियार किया और अल्लाह की राह से रोकने लगे उनके एमाल अल्लाह ने जाये कर दिये।'† (सूरत मुहम्मद आयत १)

(१०) 'इन तमाम आयतों से मालूम हुआ कि 'सद् अन् सबीलिल्लाहि' अर्थात् अल्लाह की राह से रोकना भी एक ऐसा जुर्म है जिसके ख़िलाफ़ जंग ज़रूरी है। (देखो पृ० ३९)

(११) अब गौर कीजिये कि इस्लाम से रोकने का क्या मतलब है ? इस्लाम को जब रास्ता कहा गया तो ज़रूर है कि उसके रोकने की भी वही सूरत होगी जो एक रहगुज़र से रोकने की होती है। किसी रास्ते को रोकने की क़ुदरतन तीन सूरतें हो सकती हैं। एक यह कि जो लोग दूसरे रास्ते पर चल रहे हैं उन्हें इस रास्ते पर न आने दिया जाय। दूसरे यह कि जो इस पर चल रहे हैं उससे हटाया जाय। और तीसरे यह कि इस पर चलने वालों के रास्ते में काँटे बिछा दिये जायँ।'......और 'सद् अन् सबीलिल्लाह' इन तीनों मानियों में बोला गया है।" (देखो पृ० ४०)

१२) 'जब इनसे कहा जाता है कि आओ। रसूल तुम्हारे लिये बख्शिश की दुआ करेगा तो वह अपने सर फेर लेते हैं। और तूने देखा कि वह दूसरों को भी रोकते हैं। और वह बड़े

---

* व क़ातिलू फी सबीलिल्लाहि अल्लज़ीन मुक़ातिलूकुं। व ला तअ तदू।

† अल्लज़ीन कफ़रू व सद्दू अन् सबीलिल्लाहि अज़ल्लु एमाल-हुम्। (मुहम्मद १)

मुतकब्बिर हैं।*' (देखो सूरत मुनाफ़िकून आयत ५, पृ० ४०)

(१३) यह तमाम आयतें साफ़-साफ़ बताती हैं कि अल्लाह की राह से रोकने की एक यह सूरत है कि जो मुसल्मान इस्लाम पर क़ायम हैं उन्हें मुरतिद किया जाय और सीधे रास्ते से हटा कर टेढ़े रास्ते पर डालने की कोशिश की जाय। (देखो पृष्ठ ४३)

(१४) 'दीन में कोई जबरदस्ती नहीं है।'† (पृष्ठ ११७)

(१५) हक़ीक़त यह है कि क़िताल की आयत या जज़िये की आयत का मज़मून इकराह फ़िद्दीन की मज़हबी आज़ादी से मुतआरिज़ (बाधक) नहीं है जैसा कुछ लोगों ने गलती से समझ लिया है बल्कि वह सिर्फ इस आज़ादी को जो आरम्भ में बिला शर्त अता की गई थी एक ज़ाब्ता और एक उसूल के मातहत ले आता है।' (पृ० १२४)

नोट—लेखक का आशय यह है कि पहले तो 'मज़हबी आज़ादी' बिना किसी शर्त के देदी गई थी। परन्तु पीछे से जो आयतें युद्ध करने या जजिया अर्थात् गैर-मुस्लिमों पर धर्म-कर लगा देने के विषय में उतरीं उन्होंने मज़हबी आज़ादी को छीना नहीं अपितु नियम-बद्ध कर दिया।

(१६) पहले जब मुसल्मान कमज़ोर थे और उनमें वह सेवा ठीक रूप से करने की शक्ति नहीं पैदा हुई थी जो उम्मति वुस्ता और खैर-उम्मत (मध्य-मार्ग तथा श्रेष्ठ मार्ग) होने की हैसियत से अल्लाह ताला इनसे लेना चाहता था तो मुसल्मान केवल

---

*व इज़ा! क़ील लहुँ तआलौ! यस्तग़्फ़िर लकुं रसूलुल्लाहि—लववू रूउ सुहुम्। व रयेतहुँ यसद्दून व हुँ मुस्तक्बरून। (सूरत मुनाफ़िकून आयत ५)

† ला इक्राह फ़िद्दीने।

इतना ही नहीं कहते थे कि 'तुमको तुम्हारा दीन और हमको हमारा दीन।'* अपितु यह भी कहते थे कि हमारे कर्म हमारे साथ और तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ।'† इनमें इतनी शक्ति न थी कि दुनिया को आचार सम्बन्धी बुराइयों से जबरन् पाक करदें। और फितना फ़िसाद का नाम मिटादें। अतः इष्ट की विधि और अनिष्ट का निषेध समान रूप से होता रहा।' (देखो पृ० १२४)

(१७) परन्तु जब मुसल्मान कमजोरी और बेबसी की हालत से निकल गये और इनमें अपने मिशन को असली जामा पहनाने (व्यावहारिक रूप देने) की शक्ति आ गई तो वह मज़हबी आज़ादी का उसूल तो बदस्तूर कायम रहा कि किसी शख़स को ज़बरदस्ती मुसल्मान न बनाया जायगा। लेकिन यह फैसला कर दिया गया कि लोगों को बदकारी व शरारत, व फितना-फ़िसाद और निषिद्ध कर्मों के करने की हरगिज़ इजाजत न दी जायगी। (पृष्ठ १२५)

(१८) बस, इस वक्त विधि के करने (कर्तव्य पालन) और निषेध के न करने (अकर्तव्य की रोक) के क्षेत्र बिल्कुल अलग हो गये। निषिद्ध के करने की रोक में तो निमंत्रण (दावत) और प्रचार (तबलीग) के साथ तलवार भी शामिल हो गई। और इसने तमाम दुनियाँ को फितना और फिसाद से पाक करने की बीड़ा उठा लिया। चाहे दुनियाँ इस पर राजी हो या न हो। परन्तु विधान के करने में (कर्तव्य के पालने में) तो वही नियम जारी रहे कि 'दीन के मामले में कोई रुकावट नहीं' और तुम पर कोई जबरदस्ती नहीं। पृष्ठ २२५)

---

* लकुं दीनुकं व ली दीन (काफ़िरून ६)

† लना अअमालुना व लकुं अअमालुकुम्। (बक़र १२, क़सस ५५)

(१९) इस्लाम के प्रचार का तलवार से एक प्रकार का लगाव जरूर है। इसमें शक नहीं कि जहाँ तक दीन-इलाही की हद है इसमें तलवार का कोई काम नहीं है। लेकिन इस तबलीग़ के साथ कुछ चीजें और भी हैं जिनकी सहायता से दुनियाँ में इस्लाम का प्रचार होता है और वह यक़ीनन् तलवार की इयानत से बेनयाज़ नहीं है। (अर्थात् उसके प्रचार में इस्लाम तलवार को उठा नहीं रखता)। (पृ० १३०)

(२०) अगर इस्लाम सिर्फ चन्द अक़ीदों (सिद्धान्तों) का मजमूआ (संग्रह) होता, और अल्लाह को एक कहने रिसालत को बरहक़ मानने (मुहम्मद साहेब को अल्लाह का पैगम्बर समझने), अन्तिम दिन अर्थात् क़यामत तथा फरिश्तों पर ईमान लाने के सिवाय वह इन्सान से कोई और माँग न करता, तो शायद शैतानी ताक़तों से उसे ज्यादा झगड़ने की नौबत न आती। लेकिन मुश्किल यह है कि वह केवल सिद्धान्त ही नहीं अपितु एक विधान (कानून) भी है और ऐसा कानून है जो मनुष्य के व्यावहारिक जीवन को कर्तव्य और अकर्तव्य के बन्धनों में जकड़ देता है। इसलिये इसका काम केवल उपदेश और व्याख्यानों से नहीं चल सकता और उसे जीभ की नोक के साथ तलवार की नोक से भी काम लेना पड़ता है। (पृ० १३२)

(२१) जब व्याख्यानों और उपदेशों की असफलता के पश्चात् इस्लाम के प्रवर्तक ने हाथ में तलवार ली…देश में एक संघटित और नियंत्रित शासन स्थापित कर दिया।

(२२) इस्लाम के फैलाने में प्रचार और तलवार दोनों का हिस्सा है। जिस तरह हर संस्कृति की स्थापना में होता है। प्रचार (तबलीग़) का काम बीज बोना है। और तलवार का काम हल चलाना है। पहले तलवार जमीन को नर्म करती है। ताकि उसमें बीज को परवरिश करने की काबिलियत पैदा हो

जाय और फिर तब्लीग़ (प्रचार) बीज डालकर सिंचन करती है। (पृ० १३४)

(२३) आपने (मुहम्मद साहेब ने) जवाब दिया जो शख्श अल्लाह का कल्मा बलन्द करने के लिये लड़ता है इसकी जंग खुदा की राह में है। (पृष्ठ १७२)

(२४) उस जान को जिसे अल्लाह ने मुहतरम (पाक) ठहराया है हिलाक न करो मगर यह कि हक़ का तक़ाज़ा हो।* (पृष्ठ ८)

यहाँ हमने 'अज् जिहाद फिल् इस्लाम' नामक लगभग ५०० पृ० की बड़ी किताब से २४ संदर्भ संक्षेप के साथ वर्णन किये हैं। मुसल्मानों की ओर से 'जहाद' की पुष्टि में जो हेतु प्रस्तुत किये जा सकते थे वह सब इन २४ सूत्रों में आगये हैं। शेष समस्त ग्रंथ या तो इन्हीं २४ सूत्रों का व्याख्यान या स्पष्टीकरण है या अधिकतर भाग इस्लाम से पहले की अरब वालों की बरबरताओं और दूसरे मुल्कों और धर्मों की लड़ाइयों के क़िस्सों और वर्तमान युग के पश्चिमी नीति विशारदों की चालों की मीमांसा मात्र है। इसका हमारे उपस्थित विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। मालूम नहीं कि दूसरे मुसलमान विद्वान् इस ग्रंथ की सभी बातों को स्वीकार करेंगे या नहीं। परन्तु जब हमने इन अन्यान्य संदर्भों को एक दूसरे से मिलाकर पढ़ा तो हमको ऐसा प्रतीत हुआ कि विद्वान् ग्रंथ रचयिता ने बड़ी योग्यता से अपराध को स्वीकार करते हुये भी अपराधी को निर्दोष सिद्ध करने की वकीलों के समान कोशिश की है।

'च दिलावरस्त दुज़्दे कि बकफ़ चिराग़दारद।' अपराध करना

---

* ला तक़्तलुन्नफ़्स अल्लती हर्रमल्लाहो इल्ला बिल् हक़्क़। (सूरत 'अनआम' आयत १५२)

तो स्वीकार है। अपराधी कहलाना पसन्द नहीं। बात लौट फेर के वहीं की वहीं रहती है। कि हर मुसलमान को 'जिहाद' और 'क़िताल' की खुली छुट्टी है। यदि वह (सबील-अल्लाह) अल्लाह की राह में हो और बरहक़ (सत्य के आधार पर) हो। यह निर्णय कौन करे कि अमुक युद्ध 'सबील-अल्लाह' और 'बरहक़' है? अर्थात् ईश्वर के मार्ग में है और सत्य पर आधारित है, ईश्वर तो यह कहने नहीं आता कि यह मेरी राह है। क़ुरान शरीफ़ कहता है या दीन के नेता कहते हैं। और वह भी भिन्न-भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न और परस्पर विरुद्ध बातें। संदर्भ सं० १६ में स्पष्ट स्वीकार है कि जब मुसल्मान कमज़ोर थे तो कहा करते थे कि 'तुम्हारा दीन तुम्हारे लिये और हमारा दीन हमारे लिये' परन्तु जब शक्तिशाली हो गये तो यह उदारता शक्ति के अभिमान में विलीन हो गई। जिस आयत में 'सबील-अल्लाह' और 'बिल् हक़' का उल्लेख है वह आयत गैर-मुस्लिमों के सम्बन्ध में नहीं है। अपितु दरिद्रता की दशा में औलाद के क़त्ल करने के प्रसङ्ग में है। फिर भी यदि इस विशेष नियम को व्यापक नियम मान लिया जाय तो भी 'सबील-अल्लाह' और 'बिल् हक़' का निर्णय तो जिहाद करने वाले लोगों और उनके लीडरों के हाथ में ही है।

हम यह नहीं कहते कि 'अल् जिहाद् फिल् इस्लाम' के लेखक ने 'जिहाद' के गलत अर्थ लगाये हैं। या क़ुरान शरीफ़ में जिहाद पर जो पाबन्दियाँ लगाई गई हैं वह निरर्थक या अव्यवहार्य हैं। जिहाद का सम्बन्ध जहाँ तक गैर-मुस्लिमों से है, गैर-मुस्लिम लोग यह नहीं जानना चाहते कि अरबी भाषा में 'जिहाद' शब्द का क्या अर्थ है? या क्या होना चाहिये? न वह यह जानना चाहते हैं कि क़ुरान शरीफ़ की भिन्न-भिन्न आयतों के अर्थ या भाव क्या हैं? यह काम तो भाष्यकारों का

है। गैर-मुस्लिम तो केवल इतना जानते हैं कि जब इनका मुसल्मानों के काम पड़ता है तो मुसल्मान लोग 'जिहाद' का क्या अर्थ लेते हैं। और इस अर्थ का उनके पारस्परिक सम्बन्धों या झगड़ों पर क्या प्रभाव पड़ता है। कल्पना कीजिये कि कोई आदमी हाथ में तलवार लेकर मेरा सिर काटता हो और अत्यन्त मधुरभाषा में यह कह रहा हो कि मैं तुम्हारा सबसे अधिक 'प्यारा हूँ' तो मैं यह समझूँगा कि 'प्यारे' शब्द का अर्थ है 'प्राणघातक शत्रु।' मैं इस शब्द के अर्थ के लिये कोष को न देखूँगा अपितु घातक के हाथ को। उसका कार्य ही उसके शब्द का अर्थ-द्योतक है। यदि मुसल्मानों का एक गिरोह चाहे मतान्धता से प्रेरित होकर अथवा स्वार्थवश 'अल्लाह-अकबर' का नारा लगाते हुये गैर-मुस्लिमों पर आ टूटे तो यह लोग 'अल्लाह अकबर' का क्या अर्थ लगायेंगे? क्या 'अल्लाह अकबर' का नारा उनके दिलों में ईश्वर की महत्वा की भावना उत्पन्न करेगा? वह तो यही समझेंगे कि इसका अर्थ है 'शैतान रजीम' (नरक वाला शैतान)। जिसने अपने अनुयायियों को रक्त-पात के लिये उभार दिया है।

अपराध के कई रूप हैं। कुछ अपराध व्यक्तिगत होते हैं। यदि एक मुसल्मान मेरे घर में चोरी कर ले और मेरा माल चुरा ले जाये तो मैं कभी इसका आक्षेप मुसल्मानी-धर्म या मुसल्मानी समुदाय पर न करूँगा। क्योंकि चोर मेरे घर में मुसल्मान बन कर नहीं आया अपितु चोर बनकर। उसका प्रयोजन था माल से। वह चोर था। इसी प्रकार अगर वह मुसल्मान मेरी गाय या बकरी चुरा कर ले जाये और उसे मारकर खाले तो यह भी उस मुसल्मान का व्यक्तिगत अपराध है। किसी इस्लामी समुदाय, मुसल्मान-धर्म या कुरान शरीफ़ से इसका कोई संबन्ध नहीं। वह गाय का मांस खाना चाहता था अतः उसने गाय चुरा ली।

परन्तु यदि यही मुसल्मान मुझे गैर-मुस्लिम या काफ़िर समझकर मेरी गाय लेकर ईद के दिन बलि चढ़ावे और ख़ुदा के नाम पर कुर्बानी करे तो इस अपराध का अर्थ और अपराधी की कोटि बदल जाती है। वह इसको अपराध नहीं अपितु धार्मिक कर्तव्य समझता है 'सबील-अल्लाह' और 'बिल् हक़' मानता है। चाहे उसकी पीठ पर कोई समुदाय हो या न हो और चाहे दीन के विद्वानों से उसने व्यवस्था ली हो या न ली हो। उसकी मनोवृत्ति की पीठ पर चौदह सौ सालों के पुराने इस्लामी इतिहास का प्रभाव होगा। और यदि उसके इस काम को मुसल्मानों के किसी फिरक़े ने प्रकट् या अप्रकट् रूप से इसको पुण्य का काम समझा या उसका वास्तविक प्रतिरोध न किया या उसकी तरफ़दारी की तो वह उस जुर्म के हिस्सेदार समझे जावेंगे। जब पंडित लेखराम या स्वामी श्रद्धानन्द का किसी एक मुसल्मान ने केवल इसलिये वध किया कि वह अपने धर्म का प्रचार मुसल्मानों में भी करते थे जैसे कि मुसल्मान अपने धर्म का प्रचार गैर-मुस्लिमों में करते हैं। और जिस तरह मुसल्मान लोग इस्लाम की दावत गैर-मुस्लिमों को देते हैं इसी प्रकार यह लोग अपने मजहब की दावत मुसल्मानों को देते थे। तो इस मुसल्मान को कोई वैयक्तिक स्वार्थ न था। उसकी हैसियत उस चोर की न थी जो मेरा माल चुराने के प्रयोजन से मेरे मकान में घुसा है। वह लेखराम या श्रद्धानन्द का वैयक्तिक शत्रु न था। वह यह समझकर उनको क़तल करने आया था कि यह 'ख़ुदा की राह' है और 'बिल् हक़' है। शुद्धि का आन्दोलन ऊपर दिये सं० ११ के संदर्भ के अंतरगत आता है। और स्वामी श्रद्धानन्द या पं० लेखराम को मृत्यु-दण्ड का अधिकारी करार देती है। उस बिचारे मुसल्मान का क्या अपराध था? और यदि समस्त मुसल्मान विद्वानों ने क़तल के बाद एक स्वर

से उसकी निन्दा की तो इसका कुछ अर्थ नहीं। यह तो केवल अपराधी का पक्ष लेना और अपराध की दिखावटी सफाई है जब कातिल को न्यायालय से सजा मिली तो उसको शहीद समझा गया और 'अल् जिहाद् फी इस्लाम' ग्रन्थ के लेखक ने भी एक बड़ा ग्रन्थ लिखकर उसी कातिल की सफाई दी। 'फी सबील अल्लाह' और 'बेलहक' उस दुधारी तलवार के समान हैं जो दोनों ओर चल सकती है। लेखक महोदय ने साधारण बात को इतना बढ़ाया है कि शायद मुसलमान पढ़ने वाले इससे प्रभावित हो जायँ। पुस्तक पारिभाषिक क्लिष्ट शब्दों से भरी हुई है। परन्तु वह कोई ऐसा दृष्टान्त नहीं देती जिसमें साधारण मुसल्मान जनता को जिहाद के अनुचित प्रयोग से रोकने की प्रेरणा हो सके। जब हज़रत उमर को क़तल किया गया तो कातिल ने इसको 'खुदाह की राहे' और 'बिल् हक़' हो समझा था। यह वैयक्तिक शत्रुता न थी। हजरत उसमान और हज़रत अली के साथ भी ऐसा ही हुआ। कातिलों ने 'जिहाद' किया और 'खुदा की राह' में। 'कूफे' के जिन कतलों का हमने ऊपर वर्णन किया है अर्थात् हजरत हुसैन, इब्नजयाद, मुख्तार और मस-अब का इनके कातिल भी कुरान शरीफ़ के बताये हुये 'सबील-अल्लाह' और 'बिलहक़' के श्रद्धालु थे। इसलिये यदि स्वामी श्रद्धानन्द के साथ भी वह व्यवहार प्रस्तुत किया गया तो विद्वान् लेखक को सोचना चाहिये था कि गलती कहाँ है? ई *खाना तमाम आफ़ताबस्त*। इस्लामी धर्म के विद्वानों को इस्लामी गाथाओं पर पुनर्दृष्टि डालने की आवश्यकता है। जिसमें ऊट-पटांग सफाई की आवश्यकता न पड़े।

खाना जंगी गर न मंजूरे खुदा होती तो क्यों?
हजरते क़ाबील आते खानये आदम के बीच?

हम यह नहीं कहते कि दूसरे देशों या धर्मों के लोग ऐसे

अपराधों के दोषी नहीं हैं। स्वयं भारत के इतिहास में जिसका विस्तार लाखों वर्ष तक जाता है अंधेरे से अंधेरा युग आ चुका है। और मानवी अवगुणों ने अत्यन्त कमीने रूप धारण किये हैं। ईसाइयों के कृत्य भी ऐसे ही काले हैं। परन्तु न तो इन पर गर्व प्रदर्शित किया गया है न इनकी सफाई पेश की गई है। उदाहरण के लिये, औरङ्गजेब ने अपने पिता शाहजहाँ या अपने भाई दारा शिकोह आदि के साथ जो दुर्व्यवहार किया ऐसा दुर्व्यवहार करने वाले भारतवर्ष तथा दूसरे देशों के इतिहास में भी मिलेंगे। यह मनुष्य जाति की निर्बलता की एक अधमतम् अवस्था है। इसका दोष न तो कुरान के माथे है न मुसल्मानी धर्म के। परन्तु जब मुसल्मान विद्वान् दाराशिकोह की धार्मिक उदारता के कारण औरंगजेब को धर्म का संपोषक समझकर उस पर गर्व करते हैं तो मामले की सूरत बदल जाती है। और औरंगजेब को स्तुति की दृष्टि से देखा जाता है। किसी दुष्कृत्य का स्तुत्य समझा जाना ही यह सिद्ध करता है कि कार्य सर्व-प्रिय और अनुकरणीय है। 'अल् जिहाद फिल् इस्लाम' के लेखक ने आरम्भ से ही यह उलहना दिया है कि मुसल्मानों के जिहाद की शिकायत उस समय की गई जब इस्लाम की तलवार को जंग लग गया था। स्वाभाविक रीति से यह शिकायत उस समय होनी चाहिये थी जब कि इस्लाम के अनुयायियों की तेज़ तलवार ने भूमण्डल में तहलका मचा रक्खा था (देखो संदर्भ सं० १), आश्चर्य है इस इस्लामी विद्वान् की 'दिलावरी' पर। जब पीड़ित की गर्दन पर घातक हो, और उसकी तेज़ तलवार की घातक धार उसके शरीर में चुभोई जा रही हो तो उस विचारे को तो आह भरने की भी आज्ञा नहीं होती। वह तो यही कहेगा कि यद्यपि आपने मुझे घायल कर दिया है फिर भी आपकी महती दया होगी यदि आप मुझे केवल जीवित रहने दें। मैं आपकी

कृपा का आयुपर्यन्त कृतज्ञ रहूँगा।' जो लेखक यह कहता है कि 'तबलीग का काम बीज बोना है और तलवार का काम हल चलाना है। पहले तलवार जमीन को नर्म करती है ताकि उसमें बीज को परवरिश करने की योग्यता पैदा हो जाय फिर तबलीग़ बीज डाल कर आबपाशी करती है।' (देखो संदर्भ सं० २२) उसके अनुयायी 'जिहाद' का क्या अर्थ लेंगे? यह बात सुगमता से समझ में आ जाती है। गर्दन पर तलवार रख दो कि उपदेश को बिना ननु नच के मानने की योग्यता हो जाय। अर्थात् बुद्धि से काम लेने का साहस न हो। क्या यह सफाई है या अपराध की स्वीकारी। गैर-मुस्लिम भी तो यही कहते हैं। भेद केवल इतना है कि वह कहते हैं और आप करते हैं। क्या यह 'बहुतान' है? आप हत्या करें तो प्रशंसनीय और क्षन्तव्य। पीड़ित लोग घावों के चिह्नों को भी दिखलावें तो आप इन पर 'बहुतानों' का इल्ज़ाम दें:—

हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम।
वह क़तल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता।

चर्चा तो होता है परन्तु पश्चाताप के साथ नहीं, अपितु गर्व के साथ।

कुरान शरीफ़ ने या हज़रत मुहम्मद साहेब ने जिहाद के क्या अर्थ लिये? इससे हमको बहस नहीं। परन्तु यह ध्रुव सत्य है कि हल चलाना और खेत सींचना दोनों तलवार के द्वारा होते रहे हैं। जो मुसल्मान इस्लाम के दायरे में मौजूद हैं और अपने को मौमिन कहते हैं। उसके ऊपर भी तलवार लटकती रहती है। यदि किसी ने थोड़ा सा भी सुधार का नाम लिया या कणभर भी प्रचलित सिद्धान्तों या विश्वासों से भिन्नता प्रकट की तो उसको मार डाला जाता है। सर सय्यद अहमद साहेब और उनके दोस्तों ने जब इस्लाम में अत्यल्प तथा ऊपरी सुधार

करना चाहा तो मौलवी महदी अली (मुहसिनुल्मुल्क) को 'मज़हरूल्हक़' ने एक धमकी का ख़त लिखा था जो 'तहज़ीबुल् इख़लाक़' जिल्द अव्वल के २६१वें पृ० पर छपा है। इसके कुछ वाक्य मेरे इस कथन की पुष्टि करते हैं :—

(१) 'हज़रत! न मुहत्सिब (हिसाब लेने वाला) है जिसके दुर्रे का ख़ौफ़ हो। न काज़ी है जिसके फतवे से दार (सूली) का डर हो। आज़ाद गवर्नमेंट की हुकूमत है। वरना इस आज़ादी से बक-झक करने की कैफ़ियत मालूम हो जाती। अब तक कब की आज़ादी दुनियाँ से आपको हासिल हो गई होती।'

(२) इससे बहतर है कि आप मज़हबी तहरीरों से बाज़ रहिये। बिद्अत के मूजिब न हूजिये वरना नाहक़ कोई जला हुआ मुसल्मान कुछ कर बैठे तो सब खैरख्वाही इस्लाम की मालूम हो। जले हुये बुरे होते हैं।

'जिहाद' से साधारण मुसल्मान जनता क्या अर्थ समझती है इसकी जीती जागती मिसाल हमने १९४७ ई० के मार्च में रावल पिण्डी और मुल्तान में देखी। जब 'अल्लाह की सबील' और 'बिल्हक़' के कुरानी शब्दों के मनमाने अर्थ लगाकर मुसल्मानों ने सिक्खों आदि हिन्दुओं के घरों को लूटा। स्त्रियों का सतीत्व लिया। निर्दोषों को कम्पायमान रीतियों से क़त्ल किया और अबोध बालकों के जबरदस्ती खतने किये। हमने स्वयं ठहर कर आर्य समाज के कैम्प और सिक्खों के कैम्प का अवलोकन किया। मुल्तान के जिहादियों ने तो गज़ब ढा दिया था। शायद आप कहें कि यह शरारत मुसल्मान जाहिलों की थी। यह बिल्कुल गलत है। मुसल्मान जाहिल तो मुद्दत से हिन्दुओं के साथ घुले मिले थे। वह उनके घरों में नौकरी करते थे और बड़ी भक्ति के साथ उनकी रक्षा करते थे। गैर मुस्लिम घरों की स्त्रियों के साथ मा और बहन का सा बर्ताव करते थे।

जब मुसल्मान विद्वानों ने उनके माथे में 'सबीलिल्लाह' और 'बिलहक़' के दूसरे अर्थ भरे तो उन विचारों को अपने कल्पित कर्तव्यों की याद आ गई और स्वर्ग के लालच से सांसारिक शिष्टाचार को त्याग दिया।

हम यह नहीं कहते कि क़ुरान ने जिहाद के यही अर्थ लिये हैं और जिहाद पर कड़ी रोक नहीं लगाई। वह पाबन्दियाँ कहाँ हैं और किसके लिये हैं ? और वह किस दिन काम आयेंगी ? जिहाद भी होता ही रहेगा और हज़रत अब्बुल आला मौदूदी जैसे मुसल्मान विद्वान् उन पर मुलम्मा भी करते रहेंगे। मुलम्मा साज़ी भी ऐसी कि सोने की चमक-दमक भी आ जाय और लोहे का कड़ापन वैसा ही काम करता रहे। जब ज़रूरत हो तो 'सबील-अल्लाह' के नाम पर जाहिलों को उभार दो और जब वह अत्याचार करने लगे तो उनको जाहिल कह कर क्षमा मांग लो।

यदि इस्लाम के सच्चे उद्देशों की पूर्ति करनी है तो प्रवृत्ति बदलनी होगी। अवसरवादिता से काम नहीं चलेगा। क़ुरान शरीफ़ में भी तो कहा है :—

'अल्लाह को अपने सुलूक का हीला मत बनाओ।'* (बक़र २२४)

———

* ला तज्अलु उल्लाह उर्ज़तन् लि ईमानेकुम्। (बक़र २२४)

अध्याय ३९

दो बड़ी त्रुटियाँ

हज़रत मुहम्मद साहेब ने इस्लामी क्षेत्रों के लिये बहुत से ऐसे नियम बनाये जिनसे इस्लामी सदाचार में उन्नति हो सके। दासों के साथ व्यवहार में सुधार। सन्तान-हत्या की भीषण प्रथा में सुधार, इस्लाम में ऊँच नीच के भेद भाव को मिटा देने का उपदेश, विवाह आदि की प्रचलित प्रथा का सुधार आदि। अरब की प्रचलित प्रथाओं में तो यह सुधार था ही, परन्तु दूसरी गैर-मुस्लिम जातियाँ भी जो इस्लाम के मजहबी सिद्धान्तों से सहमत नहीं हैं कई आर्थिक तथा सामाजिक बातों में क़ुरान शरीफ़ से शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। परन्तु खेद है कि यद्यपि एक सहस्र वर्षों से हिन्दुओं और मुसल्मानों का संपर्क चला आ रहा है परन्तु न तो मुसल्मानों ने हिन्दुओं से कुछ सीखा, न हिन्दुओं ने मुसल्मानों से। मुसलमान और हिन्दू दोनों ने बहुत दिनों तक विदेशीय शासन की दासता के क्लेशों को सहा परन्तु अपने भीतर उत्पन्न हुई कुवासनाओं को न सुधारा।

परन्तु इस अध्याय में हम केवल दो त्रुटियों का वर्णन करेंगे जो हमको इस्लामी विश्वासों, इस्लामी जीवन चर्या, इस्लामी गाथाओं तथा इस्लामी प्रथाओं में मिली जुली प्रतीत होती हैं। हम यह नहीं कहते कि हम सत्यता पर हैं। संभव है हमको भ्रांति हुई हो। यदि वस्तुतः हमारा भय गलत है और यह त्रुटियाँ मुसल्मानों में नहीं हैं अपितु हमारा भ्रम है तो हम क्षमा

की याचना करेंगे और हमको हर्ष होगा कि हमारी निराशा निराधार है।

यह दो बड़ी त्रुटियाँ हैं अहिंसा और ब्रह्मचर्य की भावनाओं का अभाव। योग दर्शन में महामुनि पतंजलि ने ईश्वर प्राप्ति के लिये 'योग' का उपदेश करते हुए योग के लिये दो बड़े गुणों अहिंसा और ब्रह्मचर्यों पर बहुत बल दिया है। जिन्होंने महात्मा गाँधी के ग्रन्थों का अवलोकन किया है वे 'अहिंसा' और 'ब्रह्मचर्य' से परिचित हैं। महात्मा गाँधी की शिक्षा में अहिंसा और ब्रह्मचर्य का विशेष स्थान है। इन दो गुणों को समस्त जीवनचर्या का मूलमंत्र समझना चाहिये। हमको ऐसा लगा कि इस्लामी शिक्षा में इन दो गुणों का या तो सर्वथा अभाव है या कम से कम इनको महत्व नहीं दिया गया है। इसलिये इस्लाम के विशाल भवन की नींव रेत पर है। यह एक बड़ा शामियाना है जो जरा सी आँधी से डगमगा जाता है।

अहिंसा और हिंसा दो संस्कृत के शब्द हैं एक दूसरे के प्रतिरोधी। 'हिंसा' का अर्थ है किसी को कष्ट पहुँचाना। 'हिंसा' का उलटा है 'अहिंसा'। अर्थात् हमारे अन्तःकरण की वह प्रवृत्ति जो हमको प्रेरणा करती है कि हम किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचावें।

हिंसा का आधार है स्वार्थ। जब हम देखते हैं कि दूसरों के पास वह चीज है जो हमारे पास नहीं है तो हम उनसे उस चीज को छीनना चाहते हैं। उस चीज को उनसे ले लेना ही उसको कष्ट पहुँचाना है। और ऐसा करना सदाचार की दृष्टि से अनाचार या पाप है। चोरी अपराध (पाप) है क्योंकि चोर दूसरे के माल को लेकर उसको कष्ट पहुँचाना चाहता है। डाका डालना अपराध है क्योंकि हम दूसरों से बलात् माल छीनना चाहते हैं। झूँठ बोलना भी पाप है क्योंकि झूँठ बोलकर हम

अपने सम्बोधित पुरुष को धोखे में रखना चाहते हैं कि जिससे हमारा स्वार्थ पूरा हो जाय और वह पुरुष वंचित रह जाय। इस प्रकार दुनियाँ के सभी पाप 'हिंसा' अर्थात् दूसरों को कष्ट पहुँचाने के भिन्न-भिन्न रूप हैं। जब हम किसी का बध करना चाहते हैं तो हम उसको उसके जीवन से वंचित करना चाहते हैं जिससे उसकी मृत्यु से हमारे स्वार्थ की सिद्धि हो सके। इसी को ज़ुल्म अर्थात् अत्याचार कहते हैं। कुरान शरीफ़ में लिखा है :—

(१) अल्लाह ज़ालिमों से मुहब्बत नहीं करता।* (आल उमरान् ५७)

(२) अल्लाह फ़िसाद से मुहब्बत नहीं करता।† (बक़र २०५)

यही 'ज़ुल्म' 'फ़िसाद' भी है। क्योंकि फ़िसाद से औरों को कष्ट होता है। क्या कष्ट देना कभी सत्कर्म भी कहा जा सकता है? बहुत से लोगों की धारणा है कि बिना दूसरों को कष्ट दिये जीवन ही असम्भव है। शास्त्रों में जहाँ लिखा है कि 'अहिंसा परमो धर्मः' वहाँ साथ ही यह भी लिखा है कि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।' इस वाक्य के अर्थ समझने में बहुत ग़लती है और हिन्दू लोग तो दीर्घकाल से इस गलती का शिकार हैं। कहते हैं कि गौतम बुद्ध ने तो वेदों का इसीलिये परित्याग किया था कि जिन पुस्तकों में दूसरों की हत्या करना विहित समझा गया हो वह मानने योग्य नहीं हैं। 'वैदिकी हिंसा' का क्या अर्थ? 'वह हिंसा जिसे वेदों में '*कर्तव्य*' बताया गया हो।' लोगों ने इसका यह अर्थ लगाया कि यदि वेद में आज्ञा है कि

---

* वल्लाहु ला युहिब्बुल् ज़ालिमीन् (आल उमरान् ५७)

† वल्लाहु ला युहिब्बुल् फ़साद। (बक़र २०५)

काली माई पर बकरा मार कर चढ़ाया जाय तो बकरे की हिंसा तो अवश्य हुई परन्तु वेद में इसकी आज्ञा है अतः यह 'हिंसा' 'हिंसा' में नहीं गिनी जायगी।

इस वाक्य के यह अर्थ कदापि न थे। कभी-कभी किसी दूसरे प्राणी को पीड़ा देना इसलिये कर्तव्य हो जाता है कि वह पीड़ा उस प्राणी के हित का कारण होती है। माता अपने बच्चे को पीटती है। पीटना हिंसा है क्योंकि इससे पीड़ा होती है। परन्तु यह पीड़ा बच्चे के हित के लिये है। माता का स्वार्थ इसमें नहीं है। अतः इस पीड़ा को हिंसा' में शामिल नहीं किया गया। यह है 'वैदिकी हिंसा' का *पहला* प्रकार!

कभी-कभी हम दूसरे प्राणी को इसलिये भी पीड़ा पहुँचाते हैं कि वह दूसरों को पीड़ा न पहुँचा सके। अर्थात् वह 'मूज़ी' है। हिंसक है। हिंसक को पीड़ा पहुँचना कुछ *परिस्थितियों में* कर्तव्य बताया गया है क्योंकि यदि उसे रोका न जाय तो वह अन्य प्राणियों को कष्ट देने में सफल हो जायगा। जैसे चोर, डाकू या हत्यारे को दण्ड देना। यह है *दूसरे* प्रकार की 'वैदिकी हिंसा।'

इन दो प्रकारों को छोड़कर हिंसा के शेष सभी रूप 'ज़ुल्म' और 'फ़िसाद' की कोटि में आ जाते हैं और निषिद्ध हैं।

याद रखना चाहिये कि 'पाप' का सम्बन्ध हमारी इच्छा-शक्ति तथा स्वतंत्रता से है इसके अतिरिक्त यदि इससे किसी को कष्ट पहुँच जाय और हम विवश हों तो वह काम स्वतन्त्रता पूर्वक हमने नहीं किया। अतः वह *हमारा कर्म* नहीं और उसको 'पाप' या 'पुण्य' नहीं कह सकेंगे। जैसे यदि हमारे हाथ से अकस्मात् बन्दूक छूट जाय और कोई मर जाय तो शायद हम प्रमाद के दोषी हो सकते हैं परन्तु नर-हत्या के नहीं। इसी प्रकार हमारे जीवन के साधारण कार्यों में प्राणियों को कष्ट पहुँचता है

परन्तु बहुत से तो उनमें से ऐसे कार्य हैं जिन पर हमारा वश नहीं है और उनके हम उत्तरदाता भी नहीं।

इस्लामी शरीअत में जानदारों को कष्ट पहुँचाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। मनुष्य को छोड़कर सारे जानदार उनके लिये प्रत्यय-शून्य, जीव-शून्य, और पत्थर वा लकड़ी के समान बेजान है। उनको दुःख या सुख की अनुभूति नहीं होती। इसलिये इनको मार डालना 'हिंसा' की कोटि से बाहर समझा गया है। अरब जैसे लड़ाकू और रक्त-पाती देश में भी प्राचीन काल से कुछ ऐसी धारणा चली आती थीं कि जानदारों को मार डालना पाप है चाहे वह मनुष्य हो चाहे पशु, इसलिये काबे के मन्दिर में विशेष मासों में क़ाबे की सीमा के भीतर किसी जानवर को मारना या शिकार करना निषिद्ध था। क्योंकि वह ऐसा समझते थे कि यद्यपि पाप करना हर स्थान पर निषिद्ध है परन्तु पवित्र स्थानों में तो पाप करना *महा पाप* है। इसलिये क़ाबे में हर जानदार को 'सजीव' या 'बारूह' समझकर उसको पीड़ा पहुँचाने से परहेज़ किया जाता था। अब भी हाजियों के लिये कुछ रुकावटें हैं। जो यद्यपि इस्लामी मंतव्यों के आधार पर नहीं हैं फिर भी प्राचीन भावनाओं की स्मृति-मात्र हैं। 'तफ़हीमुल् कुरान' के लेखक ने इसका इस प्रकार वर्णन किया है :—

'इन्हीं पाबन्दियों में से (अर्थात् अहराम की पाबन्दियों में से) एक यह भी है कि किसी जानवर को हिलाक न किया जाये, न शिकार किया जाय और न किसी को शिकार का पता दिया जाये।' (देखो तफ़हीमुल कुरान' सूरत मायिदा आयत १, पृष्ठ ४३८)

इससे इतना तो सिद्ध है कि प्राचीन अरब के लोग जानवरों को सजीव (ज़ी रूह) और समझदार मानते थे और पवित्र अवसरों पर उनको पीड़ा पहुँचाना *महापाप* समझा जाता था।

भारतवर्ष में बहुत से लोग मांस खाते हैं परन्तु पवित्र पर्वों पर जैसे एकादशी के व्रत के दिन या कुआर मास के पितृपक्ष में मांस छोड़ देते हैं। उनकी धारणा है कि मांस खाना है तो बुरा, परन्तु विशेष अवसरों पर यह बुराई अक्षम्य और असह्य समझी जाती है। इससे कम से कम इतना तो है कि हिंसा की अभद्रता और अहिंसा की महत्ता बनी रहती है। हिन्दुओं में सैकड़ों रस्में ऐसी हैं जिनमें 'हिंसा' अर्थात् 'पर-पीडन' को सह्य और क्षम्य समझा जाता है परन्तु इन क्रूर भावनाओं के पीछे एक हल्की सी यह भी भावना है कि '*अहिंसा धर्म* है।' हिंसा अधर्म है। यद्यपि सभी धर्मात्मा नहीं हो सकते और अधर्म किसी सीमा तक बना रहता है। परन्तु इस्लाम धर्म के नेताओं ने इस भावना को सर्वथा समाप्त कर दिया। यहाँ तक कि अरब की उस प्राचीन भावना का भी इस्लामी जीवन-चर्या में कोई स्थान नहीं रहा। इस विषय में सुधार की ओर पहला पग भी नहीं उठाया गया। क्या चीज़ खाना हराम (निषिद्ध) है और क्या चीज़ खाना हलाल (विहित) है इस विषय में प्राचीन युहूदी प्रथाओं में कोई सुधार नहीं किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि हज़रत मुहम्मद साहेब का ध्यान इस ओर गया ही नहीं। और उनकी मृत्यु के पश्चात् तो उनके अनुयायियों ने सुधार क्षेत्र को अधिक विस्तृत करना कुफ्र (पाप) समझा।

भारतवर्ष में 'अहिंसा परमो धर्मः' सबसे बड़ा धार्मिक कर्तव्य है (परम धर्म)। उस पर जितना बल दिया गया है उसका दशमलव भी मुसल्मानी जीवन-चर्या में पाया नहीं जाता।

इस्लाम में जहाँ 'हराम' और 'हलाल' के नियम दिये हैं वहाँ जानवरों के गोश्त के बारे में यह हिदायत है :—

'तुम पर हराम (निषिद्ध) हैं यह चीजें :—मरा हुआ जानवर, और खून, सुअर का गोश्त, जिस चीज पर अल्लाह के

सिवाय किसी गैर का नाम लिया जाय, जो जानवर गला घुटने से मर जाय, जो चोट लगकर मर जाय, जो गिर जाय, जो सींग लग कर मर जाय, जिसको दरिन्दे फाड़ खायें सिवाय इसके कि जिसको तुम (तकबीर पढ़कर) पाक कर लो। जो थान पर ज़िबह किया जावे। या जिस ज़बीहे पर पासों से शगुन निकालो।* (सूरत मायिदा आयत ३)

सूरत 'नहल' आयत ११६ में इसी आयत की ओर संकेत है।

यहाँ सवाल यह है कि खाने के लिये कौन जानवर हराम है और कौन हलाल। (हराम का अर्थ है वर्जित या निषिद्ध। हलाल का अर्थ है खाने योग्य। विहत)। यह सूची किसी नियम पर आधारित है या बिना किसी नियम के? हमारे भोजन का सम्बन्ध हमारे शारीरिक स्वास्थ्य से है। अर्थात् जिस चीज़ के खाने पीने से हमारा स्वास्थ्य अर्थात् हमारे शरीर के अंग दिल और दमाग ठीक रहें वह भोजन हमारे लिये 'हलाल' (विहित) है शेष सब 'हराम' (वर्जित)। रोटी हलाल है। विष हराम है। दूध हलाल है। शराब हराम है। परन्तु इन्सान 'अशरफ़ुल् मख़लूक़ात' (सर्वोत्कृष्ट प्राणी) है। अतः उसको दूसरों की भलाई का भी ध्यान रखना है। पाप क्या है? पुण्य क्या है? यह प्रश्न भी उसके समक्ष है। इसलिये वह चीज भी उसके लिये हराम (निषिद्ध) होनी चाहिये जो उसके

---

* हुर्रिमत् अलेकुं अल् मैततु वद्दमो, व लहमुल् खंजीरि, व मा अहिल्ल लिग़ैरिल्लाहि बिही, वल् मुख़निक़तु, वल् मौक़ूदतो, वल् मुतरद्दीयतो, वन् नतीहतो व म अकलस् सुबुउ इल्ला मा ज़क्केतुं, वा मा ज़ुबिह अलन्नुसुबि, व अन् लन् तक़्सिमू बिल् अज़लामि। (मायिदा ३)

स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाने पर भी दूसरे को हानि-प्रद हो। हलवा स्वास्थ्य की पुष्टि से हलाल है। परन्तु चोरी करके प्राप्त किया हुआ हलवा हराम है। क्यों? इस कारण कि इससे दूसरों को कष्ट होता है। इसलिये खाने पीने की चीज़ों के हराम और हलाल होने का सम्बन्ध हमारे शारीरिक स्वास्थ्य तथा हमारे सदाचार दोनों से है। शराब बिना चोरी के घर में बनाने से भी हलाल नहीं क्योंकि शारीरिक स्वास्थ्य के लिये हानि-प्रद है। हलवा चोरी से प्राप्त किया हुआ हलाल नहीं क्योंकि चोरी सदाचार की दृष्टि से पाप है। क्योंकि यह पर-पीड़ा का कारण है।

नियम की दृष्टि से हराम और हलाल के दो अंग हैं। अपने स्वास्थ्य के लिये हितकर हो। दूसरों को पीड़ा न हो। एक का सम्बन्ध वैद्यक शास्त्र (शरीर-विज्ञान) से है, दूसरे का आचार-शास्त्र से। हकीम जब नुसखे में लिखता है कि गुलबनफ़शा पीना चाहिये तो वह यह नहीं लिखता कि दवा बेचने वाले के यहाँ से चुराकर मत लाना। परन्तु यह मान लिया जाता है कि दवा की प्राप्ति में कोई जुर्म तो नहीं किया गया। इस्लाम में हराम और हलाल की समस्या को हल करने में हम नियमों को नहीं पा रहे। आयत का आरम्भ तो कुछ-कुछ समझ में आता है अर्थात् मुर्दा हराम है और खून हराम है। 'मुर्दा' (संकृत-मृत, अरबी 'मैत') किसको कहते हैं? जिस शरीर से जीव निकल गया वह मुर्दा है। चाहे वह किसी की छुरी से निकले या मैलेरिया के कीटाणुओं से। इससे तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि किसी जानदार का मांस नहीं खाना चाहिये। दूसरा हराम है 'ख़ून'। भाष्यकारों के मस्तिष्क ने मांसाहार को विहित (हलाल) सिद्ध करने के लिये 'खून' (अरबी 'दम') का अर्थ लिया है 'बहता हुआ खून'। वस्तुतः जैसे रोटी का अर्थ है रोज़ी

(खाना पीना आदि) इसी प्रकार ख़ून का अर्थ है 'हिंसा'। 'ख़ूख्वार' का अर्थ है 'ज़ालिम' न कि ख़ून का पीने वाला। जिसने ज़हर देकर किसी को मार डाला उसने भी 'ख़ून किया।' उसको भी परिभाषा में ख़ूंख्वार या ख़ून का अपराधी कहेंगे यद्यपि उसने ख़ून की एक बूंद भी नहीं बहाई। अरबो का मुहावरा है 'दमाअ व दमूऊ' ('दम' का अर्थ है रुधिर, 'दमूअ' का अर्थ है आँसू)। इसका अर्थ है 'ज़ुल्म' या अत्याचार।

कुरान शरीफ़ की उपर्युक्त आयत के पहले दो नियम तो ठीक हैं। परन्तु पीछे से जो सूची दी गई वह किसी नियम पर आधारित नहीं। वरन् पहले दो नियमों का उल्लंघन है। एक अच्छी शिक्षा देकर पीछे से कुछ ऐसे शब्द कह दिये गये जिनसे ज़ालिमों (क्रूरों) को अपनी वासनाओं की पूर्ति का अवसर मिल गया। 'अल्लाह' का नाम लेने से कोई 'पाप' पुण्य नहीं हो जाता। यह तो एक निर्विवाद बात है। शेष हिदायतें निरर्थक हैं। पीड़ित तथा हत पशु के लिये तो सब बराबर है। मृत्यु तो मृत्यु है। दो एक शर्तें केवल भ्रांति-युक्त प्रथाओं की ओर संकेत करती हैं जैसे किसी बलि चढ़ाये हुये पशु के मांस को देखकर शगुन निकालना या किसी दूसरे देवता का नाम लेकर पशु को मारना। जिस बकरे को मारा जाता है उसके लिये 'काली माई' और 'अल्लाह अकबर' एक ही है। इससे न तो हत्यारे की हत्या कम होती है न मांस की प्रकृति बदलती है।

बहुत संभव है कि आरम्भ में मुहम्मद साहेब की भावना यही रही हो कि खाने के लिये किसी की हिंसा न की जाय क्योंकि काबे की सीमा के भीतर किसी जानवर को मारना हराम था। यह अरब वालों की पुरानी भावना थी और 'अहिंसा परमो धर्मः' के उत्कृष्ट नियम पर आधारित था। परन्तु जब मुहम्मद साहेब ने अरब के साधारण निवासियों से काम लेना

चाहा तो उनके लिये कुछ छूटें देदी गईं जिससे वह चौंक न जायं। क्योंकि अशिक्षित और असंस्कृत लोग अहिंसा और परोपकार का अर्थ नहीं समझ सकते। संभव है कि कुछ शर्तें इसलिये लगा दी गईं कि मांस-भक्षण में सुगमता न हो। परन्तु है यह पापियों को प्रोत्साहित करना। इसने मुसल्मानों की जीवन-चर्या पर बुरा प्रभाव डाला। क़साइयों की एक क़ौम की क़ौम बन गई है जो दूसरों के भोजनालयों के लिये हर प्रातः काल 'रहमान और रहीम' की बख़शिशों को याद करने के स्थान में अल्लाह के नाम पर खून की नदियाँ बहा देते हैं। और लाखों पीड़ितों की चीख़-पुकार नरक का दृश्य उत्पन्न कर देती है।

खुदा रहीम है, बन्दे रहीम क्यों न बनें?
खुदा करीम है, बन्दे करीम क्यों न बनें?

रहीम (दयालु) के बन्दे (उपासक) बेरहम। यह तो इबादत (उपासना) नहीं। उस जमाअत की इबादत नहीं जो 'बिस्मिल्ला अर्रहमानिर्रहीम' के नारे लगाना अपनी महत्ता समझती है। 'कहाँ बहके बहके फिरते हैं।' (फ़ अन्ना यूफ़िकून)।

यह बात केवल मुसल्मानों पर ही लागू नहीं होती। हिन्दुओं में भी ऐसे लोग हैं जो 'अहिंसा' को अच्छा समझते हुये भी अपने लिये बहाना खोज निकालते हैं। फिर, इस्लाम में तो हलाल और हराम का मसला युहूदियों से चला आता है। इन पुरानी प्रथाओं ने मुहम्मद साहेब की सुधार-प्रियता को अधूरा कर दिया। शोक है कि यह बला उन जानवरों के सिर पड़ी जो नितान्त भोले और निर्दोष थे।

भेड़िये से है भागना आसां।
आदमी से बचे तो जाये कहाँ।

शैतान ने आदम को सिजदा करने से इन्कार कर दिया। इन्सान ने शैतान के आगे सिर झुका दिया। शैतान बड़े

अभिमान से कह रहा है :—

खूंख्वारी बशर ने खू बनाली।
दोज़ख न रहेगा मेरा ख़ाली।

दूसरी उल्लेखनीय बात है 'ब्रह्मचर्य' ब्रह्मचर्य के लिये अरबी का कौन सा शब्द ठीक होगा, यह कहना कठिन है। अतः हम विवश है कि उसका अरबी भाषा का पर्याय न देकर उसकी भावनाओं को व्यक्त करने का यत्न करें।

'ब्रह्मचर्य' एक संस्कृत शब्द है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है 'ब्रह्म' और चर्य। 'ब्रह्म' का अर्थ हैं 'खुदा' (ईश्वर)। और चर्य का अर्थ है 'चलना' या 'रहना'। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ हुआ 'ईश्वर के साथ चलना' या 'ईश्वर का अनुभव करना।' वह सूक्ष्म अनुभूति जो मनुष्य को ईश्वरासन्न रहने का भान देती है 'ब्रह्मचर्य' है। परन्तु 'ब्रह्मचर्य' के पारिभाषिक अर्थ हैं अपने 'वीर्य' की रक्षा करना और उन सब परिस्थितियों से बचना जिनमें वीर्य-क्षय की सम्भावना हो।

'वीर्य' क्या है। वेदों में 'वीर्य' का बड़ा महत्व है। अथर्व वेद में कहा है कि यद्यपि साधारणतया पशु भी वीर्य रक्षा द्वारा ही जीवित रहते हैं। घोड़ा ब्रह्मचर्य से ही घास खाता है। परन्तु मनुष्य ब्रह्मचर्य के द्वारा मृत्यु के भय से पार हो जाता है। इसके हृदय की गाँठ खुल जाती है और वह ईश्वर की सत्ता का इस प्रकार अनुभव करता है जैसे भौतिक आँख द्वारा हम सूर्य चन्द्र आदि को अवलोकन करते हैं।

यह बात कोई पहेली नहीं है। मानवी शरीर की प्रकृति पर विचार करने से स्पष्ट हो जाती है। हमारा शरीर भोजन से बनता है। हम जो भोजन खाते हैं उसका स्थूलतम भाग तो मल के रूप में बाहर निकल जाता है। परन्तु हर भोजन में कुछ स्थूल और कुछ सूक्ष्म तत्त्व रहते हैं। स्थूल तत्वों से हमारे शरीर के

स्थूल अंग बनते हैं जैसे रक्त, मांस, चर्म, अस्थि। परन्तु मांस, चमड़ा तथा हड्डियाँ रक्त के स्थूल भागों से बनते हैं। रक्त के सूक्ष्म भागों से कई परिवर्तनों के पश्चात् वीर्य बनता है। यह समस्त भोजन का रस है। इसकी रक्षा पर समस्त शरीर की रक्षा का आधार है। अतः उपदेश है कि हर प्रकार से वीर्य-रक्षा करनी चाहिये। वीर्य से भी सूक्ष्मतर एक रस है जो रसों का रस है। उसे संस्कृत में 'ओज' कहा है। इस ओज से प्राणियों के शरीर का वात-संस्थान (नर्वस सिस्टम Nervous System) बनता है इस वात-संस्थान का नाम है 'प्राण'। प्राण को लोक में 'सांस' कहते हैं। सांस एक प्रकार की हवा है जो नाक से निकलती है। अस्तुतः 'प्राण संस्थान' या 'नर्वस सिस्टिम' हमारा सूक्ष्मतम शरीर है। यह वीर्य से बनता है। वीर्य के निकलने से शरीर में तुरन्त ही निर्बलता अनुभव होती है। जैसे रुधिर के निकल जाने से शरीर में निर्बलता आ जाती है उसी प्रकार वीर्य के निकल जाने से इससे भी अधिक कमजोरी हो जाती है। व्यभिचारी लोगों का वीर्य बहुत क्षीण हुआ करता है। इसीलिये वह सदा रोगी रहते हैं। वैद्य लोग उनको ऐसी ओषधियाँ दिया करते हैं जिनसे वीर्य अधिक बने और क्षीण कम हो। परन्तु वीर्य के क्षय से नर्वस सिस्टम कमजोर हो जाता है। और ऊपरी ओषधियाँ केवल स्थूल अंगों को सुस्वस्थ रखने में कुछ-कुछ सफल हो जाती हैं।

वीर्य रक्षा और ईश्वर-अनुभूति से क्या सम्बन्ध है? इसको समझने के लिये विचार करना होगा।

हम भौतिक इन्द्रियों से स्थूल ज्ञान प्राप्त करते हैं। सूक्ष्म तत्वों को जानने के लिये सूक्ष्म उपकरण अर्थात् मस्तिष्क की आवश्यकता है। मस्तिष्क वस्तुतः पाँच इन्द्रियों से सूक्ष्म वस्तु है। इसको सूक्ष्म ज्ञान की प्राप्ति का उपकरण समझना चाहिये।

परन्तु ईश्वर की सत्ता तो समस्त सूक्ष्म सत्ताओं से भी सूक्ष्मतम हैं। उसको न तो पाँच भौतिक इन्द्रियों से जान सकते हैं न साधारण मस्तिष्क के औज़ार से। जिस मनुष्य के शरीर में वीर्य पूर्णतः सुरक्षित रहता है। उसमें एक विशेष प्रकार की आन्तरिक शक्ति पैदा हो जाती है जो ईश्वर को सूक्ष्मतम सत्ता का अनुभव कर सके। जो लोग इन्द्रियों के जीवन अर्थात् भौतिक जीवन को ही जीवन समझते हैं उनके ज्ञान और अनुभव की सीमा स्थूल चीज़ों तक ही रहती है। इसलिये कहा है कि ईश्वर की सूक्ष्मतम सत्ता की अनुभूति के लिये वीर्य रक्षा करो। उपनिषदों में लिखा है कि जब कभी ब्रह्म विद्या का इच्छुक अपने गुरु के पास जाता है तो गुरु कहता है कि इतने काल तक पूरा ब्रह्मचर्य रक्खो अर्थात् कोई ऐसा काम न करो, न ऐसा विचार मन में आने दो जिससे वीर्य क्षीण हो सके। क्योंकि यदि ऐसा करोगे तो ब्रह्म विद्या को समझ न सकोगे। इसलिये ब्रह्मचर्य से शरीर रक्षा के साथ-साथ ईश्वर की पहचान भी होती है।

अब आप समझ सकेंगे कि वीर्य रक्षा का ईश्वरोपासना से क्या सम्बन्ध है। जो पूर्ण ब्रह्मचारी है उसे ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। वह जिस प्रकार अपने अस्तित्व को अनुभव करता है उसी प्रकार ईश्वर की सत्ता भी उसको स्पष्ट दीखती है। जो लोग ब्रह्मचर्य नहीं रखते वह ऊपरी घटनाओं से ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं जो प्रायः अव्यक्त या धुंधला रहता है।

वीर्य रक्षा बहुत कठिन है। हर सूक्ष्म तत्व की रक्षा कठिन है। पैर की एड़ी की रक्षा इतनी कठिन नहीं जितनी आँख की पुतली की है। क्योंकि आँख की पुतली पैर की एड़ी से अधिक सूक्ष्म है। आँख की पुतली से भी सूक्ष्मतम अन्तःकरण है।

था आँख का क़सूर, छुरी दिल पै चल गई।

छोटी सी घटना से अन्तःकरण में आँधी उत्पन्न हो जाती है। अन्तःकरण में हलचल होने से वीर्य सुरक्षित नहीं रहता। दुष्ट विचार वीर्य को पतला कर देते हैं और वह स्वप्न में क्षीण हो जाता है। इसलिये शास्त्रों में लिखा है कि विचारों को पवित्र रक्खो अन्यथा वीर्य-रक्षा न हो सकेगी।

वीर्य की महिमा तो आप इसी से समझ सकते हैं कि हर शरीर की नींव है वीर्य। अरबी में जिसको 'नुतफ़ा' कहा है वह वीर्य ही तो है। इसी को कहीं 'साफ़ पानी' कहा है, कहीं 'पेशाब की बूंद'। लोक में कहा जाता कि मनुष्य का शरीर मूत की बूंद से बना है। यह विचार बहुत ग़लत है और इसने बहुत बड़ी भ्रांति फैला रक्खी है। पेशाब तो उस पानी का स्थूलतम मल है जो मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है। मूत्र से सूक्ष्म तो रुधिर है। जिस चीज से मनुष्य के शरीर की नींव आरम्भ होती है वह न तो पेशाब है न इसी तरह की कोई और स्थूल चीज। पेशाब में शरीर-निर्माण की कुछ भी शक्ति नहीं। पेशाब वह अंश है जो यदि मनुष्य के शरीर से निरन्तर न निकलता रहे तो सैकड़ों रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव यह कहना भ्रममूलक है कि हमारा शरीर पेशाब की बूंद से बना है। जिस 'नुतफे' से हमारा शरीर बनता है वह हमारे पूज्य पिता जी के शरीर का सूक्ष्मतम अंश है। यह इत्र (रस) है जो बड़ी कठिनाई से बनता है। भोजन को वीर्य के रूप में सूक्ष्मीकरण करने में बहुत दिन लग जाते हैं। कुछ शरीर शास्त्र के विशारदों ने हिसाब लगाया है कि यदि शरीर के सब अंग सुचारु रूप से कार्य करते रहें तो जो भोजन हम करते हैं उससे वीर्य बनने में चालीस दिन लग जाते हैं।

हम यहाँ शरीर शास्त्र की समस्याओं को उठाना नहीं चाहते। हमारा यहाँ तो केवल इतना अभिप्राय है कि शारीरिक

स्वास्थ्य, मानसिक सुख तथा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के लिये वीर्य-रक्षा और ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता है। हमारा वीर्य सबसे पहले तो हमारे शरीर की रक्षा करता है और तत्पश्चात् हमारी सन्तान के शरीर-निर्माण में सहायता करता है। हम पहले वर्णन कर चुके हैं कि हमारी सन्तान हमारे शारीरिक तथा आचार सम्बन्धी गुणों को दायभाग में किस प्रकार प्राप्त करती है। सन्तान प्रवाह को सुस्थित रखने के लिये भी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। व्यभिचारियों की सन्तान दुर्बल और अयोग्य होती है।

कुछ लोगों की धारणा है कि वीर्य भी मल-मूत्र के समान एक मल है जिसका शरीर से निकल जाना ही अच्छा है। यह बड़ा भ्रम है। इसने मनुष्य को व्यभिचार की ओर प्रोत्साहन दिया है। व्यभिचार ने मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क को विकृत करके उसके सदाचार तथा धार्मिक प्रवृत्तियों को दूषित कर दिया है।

इश्क़ ने गालिब निकम्मा कर दिया।
वरना हम भी आदमी थे काम के।

शास्त्र कहता है कि वीर्य से आप दो काम ले सकते हैं। अपने शरीर की रक्षा करें और केवल एक दशा में उसको व्यय करें अर्थात् जब सन्तानोत्पत्ति इष्ट हो। जानवरों में तो कुदरत अपने नियमों द्वारा इस उद्देश की पूर्ति कराती रहती है। परन्तु मनुष्य तो स्वतन्त्र है। इसकी सबसे पहली कोशिश यह होती है कि सृष्टि के सभी नियमों का उल्लंघन किया जाय। कुरान शरीफ़ में भी तो लिखा है :—

'इसमें कोई सन्देह नहीं कि खुदा ने इन्सान को जो हुक्म

दिया उसका उसने पालन नहीं किया।* (सूरत अबस आयत २३)

वीर्य के व्यय के नये-नये ढङ्ग निकाले गये हैं जिससे व्यभिचार में वृद्धि होती है।

यहाँ शायद आप यह प्रश्न करें कि इस्लामी दीन में कौन सी ऐसी शिक्षा है जिससे मनुष्य के ब्रह्मचारी रहने में बाधा पड़ती है। हमारा कहना है कि इस्लामी शिक्षा ने ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया है कि जिससे ब्रह्मचर्य का महत्व सर्वथा क्षीण हो गया है। हमारा यह कदापि आशय नहीं कि दूसरे धर्मों में बदचलनों या व्यभिचारियों की कमी है। ब्रह्मचर्य है ही सबसे मुश्किल चीज़। उतनी ही मुश्किल, जितनी ईश्वर-सत्ता की अनुभूति। परन्तु जब धार्मिक ग्रंथों में ब्रह्मचर्य पर बल दिया जाता है और धर्म के नेता अपने आदर्शों से वासनाओं को दमन करने की शिक्षा देते हैं तो बुराई में कमी हो जाती है। वैदिक ऋषियों में ब्रह्मचारी रहना एक आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। और छोटी सी भूलों पर भी कड़े से कड़े प्रायश्चित किये जाते थे कि दुबारा गलती न हो। महात्मा बुद्ध ने ब्रह्मचारी रहने का आदर्श स्थापित किया। स्वामी शंकराचार्य बाल ब्रह्मचारी रहे। स्वामी दयानन्द बाल ब्रह्मचारी थे। महात्मा गाँधी ने बाल ब्रह्मचारी न होते हुये भी अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग ब्रह्मचर्य में लगाया। और ब्रह्मचर्य के मूल्य तथा महत्व को बढ़ाया। हज़रत ईसा बाल ब्रह्मचारी थे। और उनके अनुयायियों ने एक सीमा तक ब्रह्मचर्य को ईश्वर की पूजा के लिये आवश्यक समझा। परन्तु इस्लामी क्षेत्र में ब्रह्मचर्य को वह महत्व नहीं दिया गया। अपितु प्रायः लोग ब्रह्मचर्य का मज़ाक

---

* कल्ला लम्मायक़्जि मा अमरहू। (अबस २३)

उड़ाते और ब्रह्मचर्य के उपदेश को सृष्टि-नियम के विरुद्ध बताते हैं। कुछ ऐसे भी लोग हमको मिले जो हज़रत ईसा के विवाह न करने को उनकी कमज़ोरी से सम्बद्ध करते हैं।

यदि मुसल्मानों के अन्दर भी एक प्रबल समुदाय उत्पन्न हो जाय जो ब्रह्मचर्य के महत्व को सुस्थित रख सके तो तौहीद का वह उद्देश्य जिसके आधार पर दीन-इस्लाम संस्थापित किया गया था सच्चे अर्थों में पूरा हो सकता है। इसके लिये सबसे आवश्यक प्रवृत्ति यह है कि हम धर्म के नेताओं का केवल उन्हीं बातों में अनुकरण करें जो इस्लाम के मूल-उद्देश्यों की पूर्ति करते हों। यदि दीन के हादियों (धर्माध्यक्षों) की ओर से कोई ऐसी निर्बलता प्रस्तुत हो जाये तो उसको अनुकरणीय न समझा जावे चाहे वह कितना ही बड़ा पुरुष क्यों न हो। ईश्वर को छोड़ कर और कोई सर्वथा पूर्ण नहीं है। सभी धार्मिक नेता ईश्वर के समक्ष तो निर्बल ही सिद्ध होते हैं। उनकी अच्छी बातों को लेना चाहिये और यदि उनसे कोई निर्बलता प्रकट हो, चाहे वह शारीरिक हो या आचारिक, ऐहिक हो या पारलौकिक, तो उससे सावधान रहने की आवश्यकता है। इस्लाम के प्राचीनतम इतिहास, तथा इस्लाम से पूर्व के नबियों के किस्से जो कुरान शरीफ़, हदीस, इतिहास या दूसरे कथानकों में मिलते हैं उनमें सबसे प्रशस्त, माननीय केवल एक उदाहरण है जो ब्रह्मचर्य के विषय में मुझे अनुकरणीय लगता है। वह है हज़रत यूसुफ़ की ज़ात कि जिन्होंने अपने आप को जोखों में डाल कर कुरान शरीफ़ की इस हिदायत पर अमल किया कि 'अपनी गुप्त इन्द्रियों की रक्षा करो'। फारसी के प्रसिद्ध कवि *फ़िरदौसी तूसी* ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'यूसुफ़ जुलैख़ा' में हज़रत यूसुफ़ का जो चरित्र-चित्रण किया है उससे हज़रत यूसुफ़ के जीवन को चार चाँद लग

जाते हैं। और वह संसार के लिये एक लाभदायक आदर्श सिद्ध होते हैं। नीचे के पद्यों पर विचार कीजिये :—

यूसुफ़ जुलैखा को सम्बोधित करके कहते हैं :—

'अपने प्रेम की बात मुझ से न कह। अपने प्रेम के रोग की औषध मुझसे न मांग।

'मैं ऐसी बात पर कभी ध्यान नहीं देता। जीवन भर मैं इस मार्ग पर नहीं चला।

'मैं संसार के रचयिता से डरता हूँ। वह तो सभी प्रकट और अप्रकट बातों का ज्ञाता है।'*

फिर हज़रत यूसुफ़ खुदा से दुआ करते हैं :—

'हे परमात्मा इस दास पर दृष्टि रख।
मेरे मन में शैतान न घुसने पावे॥
तू ही मेरा संरक्षक है। तूही मेरी बात सुनने वाला है।
शैतान से बचाने वाला भी तूही है॥
हे ईश्वर तू मेरे अन्तःकरण के भेद को जानता है।
तू मेरे मन के भीतर जो कुछ है सब देख रहा है।'†

---

* सखुन बामन अज़ इश्क़ हरगिज मगोय।
ज़ि मन दारुये इश्क़ हरगिज मजोय॥
कि मन सूय ईं दास्तां न नगरम।
बिदीं राह ता जिन्दाम न गुज़रम॥
बितरसम् मन अज किरद-गारे-जहां।
कि दानद हमीं आश्कारो निहां॥

† निगाहदार ईं बन्दारा ज़ीं गुनाह।
मदद देवरा बरदिलें दस्तगाह॥

फिर यूसुफ़ ज़ुलैखा को उत्तर देता है :—

'संसार के बनाने वाले ईश्वर की प्रसन्नता का ध्यान रखना सातों आसमानों और भूलोक के वैभव से भी अधिक मूल्यवान् है।'*

कैसा अच्छा हो यदि क़ुरान शरीफ़ के पढ़ने वाले फिरदौसी के काव्य के इस भाग को पढ़े।

यहाँ एक प्रश्न उत्पन्न होता है। हज़रत मुहम्मद साहेब ने उन दोनों गुणों की ओर क्यों ध्यान नहीं दिया जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है ?

हमारी यह धारणा है कि अरब की उस युग की परिस्थितियाँ ऐसी थीं, कि साधारणतया इन पर बल देना कठिन था। हर एक उपदेष्टा अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। और एक सीमा से आगे नहीं जा पाता। नेता या जाति का सुधारक ईश्वर नहीं है कि उसे सभी सामर्थ्य हो। एक विद्वान् आचार्य अपने शिष्यों को वही पढ़ा सकता है जिसकी उनमें योग्यता होती है। एक उपदेष्टा अपनी जाति को वही आदेश दे सकता है जिसको अङ्गीकार करने की उनमें योग्यता हो। महात्मा बुद्ध के भारत और मुहम्मद साहेब के अरब में बड़ा अन्तर था। हर समय लड़ाई में संलग्न रहने वाले और ज़रा-ज़रा सी बात

पनाहं तुई, गोशदारं तुई।
अज़ इब्लीस परहेज़ गारं तुई॥
खुदाया तो आगाही अज़ खिश्मन।
हमीं बीनियं दर दिले ख्वेशतन॥
* रिज़ाये खुदाये जहां आफ़रीं।
बह अज मुल्के हफ्त आस्मानो ज़मीं॥

में तलवार खींच लेने वाले अरबों को अहिंसा और ब्रह्मचर्य की शिक्षा देना सुगम न था। परन्तु साथ ही एक और कारण भी था। सिविल और मिलीटरी की शासन-पद्धति में कुछ अन्तर होता है। शान्ति के समय के आचारिक तथा सामाजिक नियम युद्ध के समय के नियमों से भिन्न होते हैं। हज़रत मुहम्मद साहेब का समस्त जीवन युद्ध में व्यतीत हुआ। नबूअत के दावे से पहले वह एक शान्ति-प्रिय नागरिक थे। नबूअत के दावे ने सारी क़ौम को उनका शत्रु बना दिया। और उनके अंतिम वर्ष युद्ध के क्षेत्र में ही कटे। वह हर समय सेना से घिरे रहते थे। उनका घर लड़ाई का कैम्प था। सिपाहियों को न अहिंसा का पाठ पढ़ाया जा सकता है न ब्रह्मचर्य का। जिस आदर्श से हम साधारण जनता को परखते हैं उसी आदर्श से सेना के सिपाहियों को नहीं देख सकते। इसलिये सदाचार के गूढ़ सूत्र युद्ध के काल में तिख़ाल में रख दिये जाते हैं। इसलिये इस्लाम के आरम्भ में यह त्रुटियाँ रह गईं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। हाँ। हज़रत मुहम्मद साहेब के पीछे आने वाले लीडरों को इसका ध्यान रखना चाहिये था। परन्तु वे स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने के स्थान में लकीर के फ़क़ीर हो गये। इसलिये सुधार का जो पुरोग्राम हज़रत मुहम्मद साहेब ने बनाया था वह अधूरा रह गया। चौदह सौ साल की पक्की सड़क बन जाने के बाद इस्लामी विद्वानों के दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन होगा या नहीं। यह भविष्य के हाथ में है।

———

अध्याय ४०

सुधार की आवश्यकता है

जब हज़रत मुहम्मद साहेब ने सुधार का काम आरम्भ किया तो सत्य के लिये निष्ठा थी, उत्साह था। और उमंगें थीं। अरब के लिये यह सुधार का उषाकाल था। इस परिस्थिति का सुविज्ञ पुरुष कह सकता था कि सत्य आया और झूठ भाग गया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हज़रत मुहम्मद साहेब ने जिन साधनों का प्रयोग किया वह स्वभावतः वही हो सकते थे जो अरब जैसे पिछड़े हुये देश में प्राप्य थे। इसमें उनको कितनी और किस सीमा तक सफलता हुई इस बात को इन चौदह सौ वर्ष के इतिहास के दक्ष पंडित ही जान सकते हैं। साधारण गैर-मुस्लिमों को तो कुछ पता नहीं और साधारण मुस्लिम जनता की श्रद्धालुता उनके पूरे संतोष के लिये पर्याप्त है। उनकी धारणा है कि जो सुधार आवश्यक था वह मुहम्मद साहेब कर गये और चूँकि वह अन्तिम पैगम्बर थे और उन पर पैगम्बरी-व्यवस्था की समाप्ति हो गई इसलिये उन्होंने न केवल उन बुराइयों का सुधार किया जो पुराने दीन में पैदा हो गई थीं अपितु उन्होंने अल्लाह के हुक्म से भविष्य के लिये ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि कयामत के दिन तक किसी सुधारक की आवश्यकता न होगी। देखिये कुरान शरीफ़ इन दोनों बातों की पुष्टि करता है :—

(१) 'आज मैंने तुम्हारे लिये तुम्हारा दीन मुकम्मिल (पूर्ण) कर दिया। और तुम पर अपनी नियमत (दैन) पूरी कर दी।

और तुम्हारे लिये इस्लाम के दीन को पसन्द किया।'* (अल्-मायिदा आयत ३)

(२) 'हमने कुरान को उतारा और हम अवश्य इसकी रक्षा करेंगे।'† (अल् हिजर, आयत ९)

परन्तु दूरदर्शी, जानकार मुसलमान भली भाँति जानते हैं कि केवल श्रद्धालुता से किसी जाति की रक्षा नहीं होती। कोई मानवी संस्था ऐसी नहीं जिसमें दोष न आ जायें और जिनके सुधार की आवश्यकता न हो।

इस्लाम के खेत की जुताई किसने और कैसे की। इसमें बीज कैसे बोया गया और इसकी सिंचाई कैसे की गई? इन प्रश्नों पर विस्तृत और समीक्षात्मक विचार करना भ्रान्ति-उत्पादक हो सकता है। यह काम उत्तमता से तो केवल मुसल्मान विद्वान् ही कर सकते हैं। परन्तु हम इतना जानते हैं कि इस्लामी पौधे की संवृद्धि बहुत जल्दी बन्द हो गई। जिन जातियों को इसने उठाने का यत्न किया वह उठीं तो परन्तु थोड़ी सी। इसका मुख्य कारण यह था कि उन्होंने समझा कि हमारा धार्मिक सुधार पूर्ण हो गया। अब कुछ करने को शेष नहीं है। कोई मनुष्य अथवा कोई समाज उन्नति नहीं कर सकता यदि वह अपने को पूर्ण समझ लें। जो पूर्ण है उसको पूरा करने के यत्न की आवश्यकता नहीं। यदि पूर्ति की आवश्यकता नहीं तो उन्नति की आवश्यंकता नहीं। उन्नति रुक जाय तो अवनति आरम्भ हो जाती है। यह रीति हर धर्म, हर सम्प्रदाय तथा हर जाति को

---

* अल्‌यौम अकमल्तु लकुं दीनकुं वतमत्त अलैकुं नियमती व रजैतु लकुंमिल् इस्लाम दीनन्। (मायिदा ३)

† इन्ना नह्‌नु नज्जल्‌नज् जिक्र व इन्ना लहू ल हाफ़िज़ून (हिज्र ९)

रही है। और इस्लामी संगठन इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता। साधारण मुसल्मान समझता है कि उसका संगठन पूर्ण है, उसके सिद्धान्त और मंतव्य पूर्ण हैं। उसके पैगम्बर अन्तिम हैं और उनकी धर्म पुस्तक अन्तिम है। इसमें विकास का अवकाश नहीं, न आवश्यकता। मुसल्मान विद्वान् तो ऐसा नहीं समझते। समय-समय पर जाति के सुधारक, संगठन के सुधारक, मुसल्मानी देशों में उत्पन्न होते रहते हैं, जैसे सर सय्यद अहमद हमारे युग में हुये। या दूसरी समितियाँ हमारे देश में या विदेशों में उत्पन्न होती रहती हैं। परन्तु कुछ मौलिक भूल है जिसके समक्ष किसी की चलती नहीं। मुअतज़िला* सम्प्रदाय एक सुधारक सम्प्रदाय था। परन्तु असहयोग मात्र इस्लामी दुनियाँ की सहायता न कर सका। जब तक रोगी अपने को रोगी न समझे उसका रोग दूर नहीं हो सकता। जो मुसल्मान नहीं हैं वह भी मुसल्मानों की अवस्था से उदासीन नहीं रह सकते। क्योंकि मुसल्मान वर्तमान जगत् के मानवी समुदाय का एक मुख्य भाग हैं। और मुसल्मान और गैर-मुस्लिम वर्तमान वातावरण में एक दूसरे से इतने मिले जुले हैं कि एक की अवस्था तथा विचारों का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। यदि हमारा पड़ोसी रोगी है तो उसके कराहने की आवाज़ हमारे विश्राम में अवश्य विघ्नकारी होगी। यदि वह दरिद्र है तो उसका कष्ट हमारी

---

* 'मुअतज़िला' का अर्थ है 'असहयोगी।' यह एक सम्प्रदाय था जिसने सुधार के उद्देश्य से अपने को मुसल्मान जनता से अलग कर लिया था। हसन बसरी से उसके एक शिष्य ने कुछ शंका कर दी। गुरु जी क्रुद्ध हो गये। उन्होंने कहा 'निकल जा' 'एतिज़िल' शब्द का अर्थ है अलग हट। शिष्य ने अलग समाज खोला। इन लोगों का नाम मुअतज़िला हो गया।

सम्पन्नता पर प्रभाव डालेगा। यदि पड़ोसी अशिक्षित है तो उसकी अज्ञता से हमको हानि होगी। यदि हमारा पड़ोसी सुसम्पन्न है तो उसके घर से उठती हुई बाजे की ध्वनि हमारे कानों को भी भली लगेगी। उसके स्वादिष्ट पक्वान्नों की सुगन्ध हमारे मस्तिष्क को सुगंधित करेगी, अतः हर मनुष्य का कर्तव्य है कि स्वतंत्र विचार का और उदार-हृदय वाला होवे।

यदि मुसल्मान विद्वान् वर्तमान अवस्था से संतुष्ट हैं तो गैर-मुस्लिमों की समालोचना का कोई मूल्य नहीं। इस्लाम का सुधार तो इस्लामी विद्वान् ही कर सकते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि इस्लामी विद्वान् वर्तमान अवस्था से संतुष्ट नहीं हैं। सर सय्यद अहमद 'तहजीबुल् इख्लाक जिल्द अव्वल के १९१वें पृष्ठ पर लिखते हैं :—

'मगर मुसल्मानों की हालत पर अफ़सोस और हजार अफ़सोस है कि इनकी आंखों में ग़फ़लत की नींद वैसी ही भरी हुई है और इनके चौंकने और जागने की कोई निशानी देखने में नहीं आती। कैसी अफ़सोस की बात है कि बजाय इसके कि आज कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के समान मुसल्मानों का कोई अरबी विद्यालय दिल्ली में होता या आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी के समान हमारी शिक्षा के लिये कोई विद्यालय लखनऊ में होता' इत्यादि इत्यादि। सर सय्यद अहमद के आंसू बहाने का कुछ तो परिणाम निकला। उन्होंने अलीगढ़ यूनीवर्सिटी की स्थापना की और मुसल्मानों में जागृति उत्पन्न हुई। यद्यपि केवल राजनीतिक। मिथ्या भावनाओं को दूर करने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है यद्यपि मिथ्या भावनायें सुगमता से नहीं जातीं। मुसल्मानों ने पश्चिमी शिक्षा को उसी भाँति अपनाया जैसे दूसरे धर्मों के लोगों ने। सायंस के आरंभ में विरोध धर्मों की ओर से ही हुआ। ईसाइयों ने घोर विरोध किया क्योंकि जिन स्थानों में सायंस ने

अपना हिंडोला बनाया वहाँ ईसाई धर्म का प्राबल्य था।' मुसल्मानों ने भी सायंस का स्वागत करने से मुंह मोड़ा। हिन्दू धर्म के पुरोहितों ने यद्यपि बहुत विरोध नहीं किया, परन्तु चौंकते तो वह भी रहे। परन्तु जब सायंस ने सिद्ध कर दिया कि सायंस की उन्नति सृष्टि की बात है और सृष्टि ईश्वर की वस्तु है तो धीरे धीरे सब धर्मों ने सायंस के साथ मैत्री करने में ही कल्याण समझा। आज कोई मस्जिद, कोई मन्दिर, कोई गिरजा या कोई उपासनालय ऐसा नहीं जहाँ सायंस वालों के पराक्रमों से धन्यवादपूर्वक लाभ न उठाया जाता हो। परन्तु आज सब को यह शिकायत है कि सायंस ने मनुष्य को ईश्वर से विमुख कर दिया है। यह शिकायत इस्लाम को भी है और दूसरे धर्मों को भी। यह लोग बड़े असमंजस में हैं। न तो सायंस के लाभों से वंचित रहना चाहते हैं न सायंस को अपने मन माने सिद्धान्तों में हस्तात्तेप करने की आज्ञा देना चाहते हैं। सायंस इस लोक की वस्तु है और धर्म परलोक की। यदि लोक और परलोक दो सर्वथा अलग चीजें होतीं तो बटवारा सुगम था। जन्म से मृत्यु तक हम लोक में रहते हैं। मरने पर परलोक का प्रश्न उठता तो उठता रहता।

> 'उम्र भर देखा किये मरने की राह।
> मर गये पर देखिये दिखलायें क्या ?'

परन्तु कठिनाई यह है कि परलोक की बातें हमारे इस लोक के जीवन में उत्पन्न हो जाती हैं। सायंस कहती है कि यदि परलोक का इस लोक से कोई सम्बन्ध नहीं तो हम को इससे कुछ लेना नहीं। सायंस को शिकायत यह है कि यदि परलोक इस लोक से ऊपर कोई लोकोत्तर वस्तु है तो रहा करे। परन्तु वह हमारे ऐहिक कार्यों में क्यों हस्तत्तेप करती है। मरने के पश्चात् जब हम परलोक में प्रवेश करेंगे तो देख लेंगे कि वहाँ की

क्या दशा है और हमको क्या करना चाहिये। मरने से पहले व्यर्थ रोना क्यों ? तुम हमसे 'परलोक' की बात न करो और इस लोक में रह कर जो कुछ आविष्कार हम कर रहे हैं उनसे लाभ उठाते रहो और उठाने दो। विद्यमान को कल्पना-युक्त करके गदला मत करो। धर्म के संशोषकों का दावा है कि इस लोक और परलोक में सम्बन्ध है। हम इस लोक में रह कर ही परलोक को बना सकते हैं। इसलिये जब सायंस वाले परलोक का निषेध करते हैं या उसकी विद्यमानता पर संदेह करते हैं तो धर्म वाले उनका विरोध करते हैं। परन्तु एक कठिनाई है। धर्म वाले एक दूसरे से विरुद्ध दावे करते हैं। सायंस वालों में मौलिक ऐक्य है। धर्म वालों में मौलिक विरोध है। किंचित् मतभेद रखते हुये सायंस वाले एक दूसरे को काफ़िर या हन्तव्य नहीं समझते। मतावलम्बी एक दूसरे को काफिर समझते हैं। सायंस वेत्ताओं ने उपालम्भ रूप से कहा है कि यह लोग कहते तो अपने को गौडली (Godly) अर्थात् ईश्वर-भक्त हैं परन्तु हैं डौगाली (Dogly) अर्थात् कुत्तों की भाँति लड़ते हैं। इसलिये न केवल इस्लाम धर्म के नेताओं को वरन सभी धर्मों के नेताओं को मिल कर यह सोचना चाहिये कि उनके सिद्धान्तों का महत्तम समापवर्तक (G.C.M.) क्या है ? और वह कहाँ तक सायंस के अनुकूल है। यदि ईश्वर है और उसने सृष्टि की रचना की तो सायंस का हर नियम ईश्वर का नियम है और कोई धार्मिक सिद्धांत सायंस के विरुद्ध नहीं हो सकता। बहुत से बड़े-बड़े सायंस-वेत्ता इस बात को मानने के लिये उद्यत हैं कि संसार केवल उतना ही नहीं है जितना हमारी दृष्टि के समक्ष है। हम तो केवल समुद्र के तट के घोंघे बटोर रहे हैं। ज्ञान का विशाल सागर हमारे समक्ष बह रहा है। उसका अनुसंधान करना है। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि धर्माध्यक्षों के कल्पित और प्रमाद-युक्त मंतव्यों को स्वीकार

कर लें। जो पीर, फ़कीर, साधु सन्त किसी सायंस-वेत्ता की बात को इसलिये झुटलाता है कि सायंस वेत्ता एक अल्पज्ञ मनुष्य है उससे हम पूछ सकते हैं कि तुम भी तो अल्पज्ञ हो। सायंस वेत्ता सुशिक्षित है उसकी भूलें शिक्षा-विधान के द्वारा शोधी जा सकती हैं। परन्तु तुम तो कोरे अज्ञ, अशिक्षित और भ्राँति-युक्त हो। तुम ईश्वर नहीं, प्रमादवश ईश्वर के प्रतिनिधि बने फिरते हो। इसलिये तुम्हारा तो कोई विश्वास नहीं। सारांश यह है कि अब वह युग आ गया है कि धर्माध्यक्षों को अपने-अपने धर्म के दीपकों में बुद्धि और विद्या का तेल डालना चाहिये। आत्म-संरक्षण के लिये भी अब न पुराने समय को दीवारों, या खाइयों से काम चल सकता है न पर्वत, नदी या दुर्ग काम कर सकते हैं। भाप, बिजली और बम के युग में यदि रक्षा मिल सकती है तो केवल विचारों से। अतः विद्या के प्रकाश में विचार-परिवर्तन का प्रयास होना चाहिये। कार्लमार्क्स कहते थे कि धर्म एक अफ़ीम है जो मनुष्य की बुद्धि को बिगाड़ देती है। हम कार्लमार्क्स की बात को ज्यों का त्यों मानने के लिये उद्यत नहीं। हम को तो कम्यूनिज्म भी एक मत ही दिखाई पड़ता है और कम्यूनिज्म की अफ़ीम का नशा कुछ कम भयानक सिद्ध नहीं हुआ। परन्तु यदि भिन्न-भिन्न प्रकार के ईश्वर-भक्त मिथ्या-विश्वास और कल्पनाओं को त्याग कर निष्पक्षता से काम लेते तो आधिभौतिक विज्ञान के साथ अध्यात्म की भी उन्नति हो सकती है क्योंकि सायंस-वेत्ता लोगों की भी ऐसी धारणा बनती जा रही है कि केवल आधिभौतिक उन्नति मानवी शान्ति के लिये पर्याप्त नहीं है। परन्तु स्मरण रहे कि अन्ध-विश्वास और अज्ञान के आधार पर बनाया हुआ अध्यात्म वास्तविक अध्यात्म नहीं है और वह नई रोशनी के समक्ष पनप नहीं सकता। यह प्रश्न केवल इस्लाम का नहीं है। सब धर्मों का है। यदि हर धर्म-दीपक में बुद्धि और विद्या

का तेल डाल दिया जाय तो भिन्न-भिन्न दीपक मिलकर एक नवीन जाज्वल्यमान आध्यात्मिक युग के प्रवर्त्तन को आरम्भ कर सकते हैं जिसका जयघोष होगा 'ईश्वर एक है और हम सब भाई।' इत्यलम्।

———

परिशिष्ट १

समान वचन

कुरान	वेद
अल् हम्दु लिल्लाहे रब्बिल आलमीन। (फातिहा १)	मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः। (ऋ० ५-८१-१)
सब स्तुति ईश्वर के लिये ही है जो जगतों का स्वामी है।	उस जगत् के स्वामी के लिये बड़ी स्तुति है।
अर्रहमानिर्रहीम। (फातिहा २)	वसुर्दयमानः। (ऋ० ३-३४-१)
जो कृपालु और दयालु है।	जो धारक और दयालु है।

इस परिशिष्ट में कुरान शरीफ़ की आयतों और वेद के मन्त्रों के वह अंश दिये जाते हैं, जिनके अर्थ लगभग मिलते हैं। वेद मन्त्रों के निर्वचन के लिये हम संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् और गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड (श्री देव मुनि वानप्रस्थी) के कृतज्ञ हैं। (लेखक)*

यहाँ बहुत थोड़े मन्त्र और आयतें नमूने के लिये दिये गये हैं। वैदिक तथा इस्लामी साहित्य में ऐसे समान-वचन बहुत मिलते हैं। इनसे सिद्ध होता है कि इस्लाम और अन्य धर्मों में इतना भेद नहीं है जितना सर्वसाधारण ने समझ रक्खा है। यदि यह भ्रांति दूर हो जाय तो कुछ मतभेद रखते हुये भी भिन्न-भिन्न धर्मों वाले मेल जोल से रह सकते हैं।

कुरान	वेद
ईयाक नाबुदु व ईयाक नस्तईन। (फातिहा ४) हम तेरी ही पूजा करते हैं और तुम्ही से मदद मांगते हैं।	अभित्वा शूर नोनुमः (ऋ० ७-३८-८८) हे शक्तिमन, हम तुम्ही को बहुत बहुत नमस्कार करते हैं।
इह्दिनस्सरातिल् मुस्तकीम (फातिहा ५) हमको सीधे मार्ग पर लगा।	नय सुपथा राये अस्मान् (यजु० ४०-१८) हमारे हित के लिये हम को सीधे मार्ग पर लगा।
हुवल्लाहु अहदुन्। (अखलास १) अल्लाह एक ही है।	एक इद्राजा जगतो बभूव (ऋ० १०-१२१-४) जगत् का स्वामी एक ही है।
	एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋ० १-१६४-४६) ईश्वर एक है। विद्वान् उसको बहुत से नामों से पुकारते हैं।
ला तावुदून इल्लल्लाह। (बक़र ८३) अल्लाह के सिवाय किसी को न पूजो।	मा चिदन्यद् विशंसत। (ऋ० ८-१-१) किसी दूसरे को मत पूजो।
ला तज्अलू मअल्लाहे	य एक इत्। तमुष्टुहि।

कुरान	वेद
इलाहन् आख़र। (जारियात ५१) अल्लाह की पूजा में किसी को शरीक न करो।	(ऋ० ६ ४५-१६) वह एक ही है। उसी की स्तुति करो।
	एक एव नमस्यः सुशेवाः। (अथर्ववेद २-२-२) वह एक ही है नमस्कार और पूजा के योग्य है।
अ लं तालं अन्नल्लाह लहू मुल्कुस्समावाति वल् आंर्ज। व मा लकुं मिन् दूनिल्लाहे मिं वलीइन् व ला नसीरिन्। (बक़र १०७) क्या तुम नहीं जानते कि आस्मान और जमीन अल्लाह की ही हैं और तुम्हारे लिये उसके सिवाय कोई दोस्त और मददगार नहीं।	महोदिवः पृथिव्याश्च सम्राट्। (ऋ० १ १००-१) वह बड़ा द्यौ और पृथ्वी का मालिक है। नो भवत्विन्द्र ऊती। (ऋ० १-१००-१) वह ईश्वर हमारी सहायता करे।
हुवल्लज़ी युसव्विरुकुं फ़िल् अर्हाम। (आल अमरान ६) ईश्वर वही है जिसने गर्भ में तुम्हारी शक्ल बनाई।	प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमाः (अथर्ववेद ७-१९-१) ईश्वर सब प्रजा को रचता है।
व इन्न लकुं फ़िल् अनआमि	विद्मा हित्वा गोपतिं शूर

कुरान

व इन्नलकुम् फ़िल् अन्आमि लइब्रतन् नुस्क़ीकुं मिम्मा फ़ी बुतूनिहि मिन् बैनि फ़र्सिम् व दमिन् लबनन् खालिसन् साबिग़न् लिल् शारिबीन। (नहल-६९)

पशुओं में तुम्हारे लिये शिक्षा की निशानियाँ हैं। हम तुम को उनके पेट के गोबर और लोहू में से शुद्ध दूध पिलाते हैं जो पीने वालों को स्वादिष्ट लगता है।

व इलाहुकुं इलाहुं वाहिदुं ला इलाह इल्ला हुवर्रहमानुर्रहीमु। (बकर-१६३)

तुम्हारा ईश्वर एक है। सिवाय इसके दूसरा नहीं। वह दयालु और उदार है।

वेद

गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः। (ऋ० १०-४७-१)

हे प्रभु ! मैं आप को गौओं का पति जानता हूँ। आप ही उनके द्वारा हमको विचित्र अच्छी अच्छी चीजें देते हैं।

य एक इद् विदयते वसु मर्त्याय दाशुषे। (ऋ० १-८४-७)

ईश्वर एक है। वह दयालु दानशील पुरुष को जीविका प्रदान करता है।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। (ऋ० १-१२१-१०)

हे सब के स्वामी। तेरे सिवाय कोई दूसरा सारे संसार का स्वामी नहीं है।

कुरान	वेद
हुव युत्इमु -व ला युत् -अमु । (अनआम १४) वह खिलाता है। खाता नहीं ।	अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति । (ऋ० १-१६४-२०) वह खाता नहीं । जीवों को खिलाने की व्यवस्था करता है ।
व लिल्लाहिल् मश्रिक़ो वल् मग़रिबो फ़ एनमा तवल्लौ फ़ सुम्म वजहुल्लाहे । इन्नल्लाह वासिउं अलीमुन् । (बक़र ११५) पूर्व और पश्चिम खुदा की ही हैं। जिधर को मुंह करो उधर ही अल्लाह है। अल्लाह फैला हुआ और ज्ञाता है।	यस्येमाः प्रदिशः । (ऋ० १०-१२१-४) सब दिशायें उसी की हैं । सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरातात् सविताधरात्तात् । (ऋ० १०-३६-१४) प्रभु पश्चिम, पूर्व, ऊपर और नीचे है । विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः । (ऋ० १०-८१-३) ईश्वर की आँखों हर ओर का है। ईश्वर का मुख हर ओर को है।
फ़ इन्नी क़रीबुन् । उजीबो दावतद् दाय । (बकर १८६) मैं अवश्य निकट हूँ और बुलाने वाले की बात का उत्तर देता हूँ ।	त्वं नो अन्तम उत त्राता । (ऋ० ५-२४-१) तू हमसे निकटतम और रक्षक है ।

कुरान

इन्न फी खलक़िस्समावाति वल्अर्ज़ि वख्तलाफ़िल् लैलि वन् निहारि वल् फ़ल्कि अल्लती तज्री फ़िल बहरे बिमा तन् फ़उन्नास व मा अंजल मिनस्स-माये मिं मायिन् फ़ अह्या बिहिल् अर्ज़ि बाद मौतिहा व बस्स फ़ीहा मिन् कुल्लि दा बतिन् व तसूरीफ़िल रयाहि वस्सहाबि लमुसख्खर बैनस्स-माये वल् अर्ज़ि ल, आयातिन् लिक़ौमि याक़िलून। (बक़र १६४)

निस्सन्देह आकाशों और पृथिवी के उत्पन्न करने में और रात दिन के एक दूसरे के पीछे आने जाने में और किश्तियों और जहाज़ों में जो दरिया में लोगों के फ़ायदे के लिये चलते हैं और मेंह में जिसको खुदा आसमान से बरसाता है और इससे ज़मीन को मरने के बाद जिन्दा करता है और ज़मीन पर हर तरह के जानवर फैलाने में और खाओं के चलाने में और बादलों में जो आसमान और

वेद

न यस्य द्यावा पृथिवी अनु-व्याचो न सिंधवो रजसो अन्त-मानशुः। नोत स्ववृष्टिं मदे यस्य युध्यत एको अन्यच् चकृषे विश्वमानुषक्। (ऋ० १-५२-१४)

न पृथिवी न आकाश उस ईश्वर की व्यापकता को सीमा को पा सकते हैं। न आकाश के लोक, न आकाश से बरसने वाला मेंह, सिवाय उस ईश्वर के और कोई दूसरा इस विश्व पर अधिकार नहीं रखता।

वेद नावः समुद्रियः। (ऋ० १-२५-७)

वह समुद्र की नावों को जानता है।

देवं वहन्ति केतवः।

दुनियाँ की चीजें ईश्वर की (झण्डे) निशानियाँ हैं।

कुरान	वेद
ज़मीन को घेरे हुये हैं बुद्धिमानों के लिये खुदा की कुदरत की निशानियाँ हैं।	
तूलिजुल्लैल फिन् नहारं व तूलिजुन् नहार फिल् लैल। (आल अमरां २७)	अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी। (ऋ० १०-१९०-२)
तू ही रात को दिन में मिलाता है और दिन को रात में।	समस्त प्राणियों को वश में रखने वाले ईश्वर ने रात और दिन का क्रम स्थापित किया।
तुख्रिजुल् हय्य मिनल् मैति व तुख्रिजुल्मैति मिनल् हय्य। (आल अमरान २७)	यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः। (ऋ० १०-१२१-२)
तू ही मौत से जीवन और जीवन से मौत देता है।	जिसकी छाया अमृत और जिसको ही मृत्यु है।
व अन्नल्लाह ला युज़ीओ अज्रल् मौमिनीन्। (आल अमरान १७१)	यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः। (ऋ० १-१-६)
अल्ला धर्मात्माओं के कर्मों के फलों को नष्ट नहीं करता।	हे प्रकाश स्वरूप ईश्वर! आप धर्मात्मा पुरुष का कल्याण करते हैं। यह आप का सच्चा स्वभाव है।
इन्नल्लाह ला युहिब्बु मन्	ऋतस्य पथा नमसा

कुरान	वेद
कान मुहतालन् फुजूरन्। (नसा ३६)	विशासेत्। (ऋ० १०-३१-२)
ईश्वर घमण्डी और पातकी को नहीं चाहता।	मनुष्य को चाहिये कि सत्य के मार्ग में नम्रता से चले।
इन्नल्लाह युहिब्बुल् मुक्सितीन (मायिदा-४२)	प्रियः सुकृत् प्रय इन्द्रे मनायुः। (ऋ० ४-२५-२)
बेशक अल्लाह न्याय करने वालों से प्रेम करता है।	ईश्वर को अच्छे काम करने वाला और मननशील मनुष्य प्यारा है।
सिर्रकुंव जहरकुं व यालमो मा तक्सिबून। (अनआम-३)	यो विश्वाभि वि पश्यति भुवना सं च पश्यति। (ऋ० १०-१८७-४)
वह तुम्हारी गुप्त और प्रकट् बातों को जानता है और उसको भी जो तुम कमाते हो।	वह ईश्वर सारे संसार को भली भांति जानता है।
	यत् तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति, यो निलायं चरति यः प्रत्यङ्कम्। द्वौ संनिपद्य यन् मंत्रयेते राजातद् वेद वरुणस्तृतीयः। (अथर्ववेद ४-१६-२)
	जो खड़ा होता, चलता, धोखा देता, छिपता फिरता और दूसरे की हिंसा करता है। दो चुपके चुपके कुछ बात करते हैं। तीसरा ईश्वर उन सबको जानता है।

क़ुरान	वेद
व हुवल् क़ाहिरो फ़ौक़ इबादि हि। (अनआम-१८) वह अपने बन्दों पर अधिकार रखता है।	विश्वस्य मिषतो वशी। (ऋ० १०-१९०-२) वह सब प्राणियों को वश में रखता है।
	जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी। (ऋ० ४-५३-६) ईश्वर जंगम और स्थावर दोनों को वश में रखता है।
व इन्दहू मिफ़ातहुल्ग़ैब लायालमु हा इल्ला हुव। वयालमु मा फ़िल् बर्रि वल् बह्रि। व मा तस्क़ुतु मिन् वरक़तिन् इल्ला यालमुहा। अनआम ५९) उसके पास परोक्ष की कुंजियाँ हैं जिनको उसके सिवाय कोई नहीं जानता। वह थल और जल की सब बातें जानता है। कोई पत्ता भी नहीं गिरता जिसे वह न जानता हो।	सर्वंतद् राजा वरुणोऽभिचष्टे यदन्तरा रोदसी यत् पुरस्तात्। (अथर्व० ४-१६-५) जो कुछ पृथिवी में या आकाश में या इसके ऊपर है उसको ईश्वर देखता है।
	वेद वातस्य वर्तनिमुरो ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते। (ऋ० १-२५-९) वह ईश्वर वायु के सुखद मार्ग को जानता है और उन सब पदार्थों को जो उसके सहारे हैं।
फ़ालिक़ुल् अस्बाह व	अहोरात्राणिविदध

कुरान	वेद
जअल लैल सकनन्। वश्श-मूस वल् क़मर हुस्बान्। (अन-आम ९७)	(ऋ० १०-१९०-२)
उसने प्रातःकाल को फाड़ निकाला। और रात को विश्राम के लिये रचा। और सूर्य तथा चाँद को गणना के लिये।	दिन और रात बनाये।
	सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् । (ऋ० १०-१९०-३)
	सूर्य और चाँद को विधाता ने पूर्वकल्पों के समान रचा।
सुबहानहू । व तअल्ला अम्मा यसिफ़ून। (अनआम १०१)	यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते। (केन उपनिषत् १-६)
ईश्वर के जो गुण लोग बताते हैं ईश्वर उनसे अलग है।	जो आँख से नहीं देखता, जिससे आँख देखती है। उसी को ब्रह्म समझ। उसको नहीं जिसको लोगों ने अपने मन से ब्रह्म मान लिया है।
ला तुद्रिकुहुल् अब्सारो। व हुव युद् रिकुल् अबसार। व हुवल् लतीफुल् खबीरो। (अनआम १०४)	
उसको आँखें नहीं देख सकतीं। वह आँखों को देखता है। वह सूक्ष्म और सर्वज्ञ है।	
कुल् इन्नल्लाह ला यामुरु बिल फुहशाउ (ऐराफ़ २८)	नघाउ सोमोवृजिनं हिनोति (ऋ० ७-१०४-१३)

कुरान

कह दे कि अल्ला बुराई के लिये आदेश नहीं देता।

उद्ऊ रब्बकुं तुजर्रुअन् व खुफ्यितन्। इन्नहू ला युहिब्बुल् मौतिदीन (ऐराफ़ ५५)

अपने ईश्वर से नम्रता से और धीरे-धीरे प्रार्थना करो। वह बढ़ चढ़कर कहने वालों को पसन्द नहीं करता।

व याबिदून मिन् दूनिल्लाहे माला यजुर्रुहुँ व ला यन्फ़ऊहुम्। (यूनस १८)

काफ़िर लोग ऐसी (जड़) चीजों को पूजते हैं जो न उनका कुछ बिगाड़ सकती हैं। न बना सकती हैं।

कुल् लौकान मअ इलाहतुन् कमा यकूलून इज़न लब्त-

वेद

ईश्वर कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा नहीं करता।

होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत्। (ऋ० ६-१६-४९)

पृथ्वी और आसमान को ठीक मार्ग पर चलाने वाले पूजनीय प्रभु से नम्रता से ऊपर हाथ उठाकर प्रार्थना करो।

इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैः। (ऋ० १-३३-२)

ईश्वर को उचित शब्दों में स्तुति करो।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः। (यजु० ३२-३)

उस प्रभु की कोई मूर्ति नहीं बन सकती। उसका यश बहुत बड़ा है।

स एष एक, एकवृदेकएव। (अथर्व० १३-४-२०)

कुरान	वेद
गूइला ज़िल् अर्शि सबीलन्। (बनीइसराईल ४२)	ईश्वर एक है। एकवृत् है। एक ही है।
कहदो कि यदि ईश्वर के साथ कोई और ईश्वर भी होता जैसा कि (मूर्तिपूजक) लोग कहते हैं तो अवश्य आकाश की ओर लड़ाई का मार्ग बना लेते। (अर्थात् लड़ाई होती)	
लौकान फ़ीहिमा आलिहतुन् इल्लाल्लाहु लफ़दसता। (अंबिया २२)	
यदि आसमान और जमीन में अल्लाह के सिवाय पूजनीय होता तो झगड़ा हो जाता।	
फ़ लहुल् अस्माउल् हसना। (बनी इसराईल ११०)	एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋ० १-१६४-४६)
सब अच्छे नाम ईश्वर के हैं।	ईश्वर एक है। विद्वान् उसको अनेक नामों से पुकारते हैं।
व कब्बरहु तकबीरम्। (बनी इसराईल १११)	अद्धा देव महाँ असि। (अथर्व० २०-५८-३)
ईश्वर को बड़ा जानकर बड़ाई करते रहो।	विश्वदेवो महाँ असि॥ (अथर्व० २०-६२-६)
	ईश्वर बहुत बड़ा है।

कुरान	वेद
अलैहा ला तब्दील। (रूम ३०)	अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि। (ऋ० १-२४-१०)
व लन् तजिद् लि सुन्नतिल्लाहि तब्दीलन्। (फ़तह २३)	ईश्वर के नियम अटल हैं।
खुदा कानून बदलता नहीं।	न किरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि। (अथर्व० १८-१-५)
	ईश्वर के नियमों का कोई नहीं बदल सकता।
व लिल्लाहे मा फ़िस् समावाति व मा फ़िल् अर्ज़ि। लि यज् ज़ियल्लज़ीन असाऊ बिमा अमिलू व यज् ज़ियल्लज़ीन अहसनू बिल् हुस्ना। (नज्म ३१)	अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा। वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे। (ऋ० १-१६०-४)
जो कुछ आस्मान और जमीन में है सब अल्लाह का है जिससे जिन लोगों ने बुरे काम किये उसको बुरा बदला दे। जिन्होंने भले काम किये उसको भला बदला दे।	यह ईश्वर सब देवों से अधिक काम करने वाला है। इसने विश्व की भलाई के लिये पृथ्वी और आकाश रचे। उसने दोनों लोकों को इसलिये रचा कि लोग ठीक-ठीक काम करें। वह अपनी निरन्तर शक्तियों से जगत् को संभालता है।
युदब्बिरुल् अम्र मिनस्समायि इलल् अर्ज़ि। (सिजदा ५)	इमे चित् तव मन्यवे वेपेते भियसा मही। यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीर-

कुरान

वह आकाश से ज़मीन तक सबका प्रबन्ध करता है।

वेद

चंन्निनु स्वराज्यम्। (ऋ० १-८०-११)

हे ईश्वर पृथ्वी और द्यौलोक तेरे भय से काँपते हैं। हे ईश्वर, तू अपने कोप से दुष्टों को मारता है और श्रेष्ठ पुरुषों को आत्मिक प्रकाश प्रदान करता है।

हुवल् अव्वलो वल् आखिरो वज् ज़ाहिरो वल् बातिनो। व हुव बिकुल्लिशैयिन् अलीमुन्। (हदीद ३)

ईश्वर आदि में है और अन्त में। वह प्रत्यक्ष है और परोक्ष। वह सब पदार्थों को जानता है।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः। (ऋ० १-३१-२)

हे ईश्वर तू सबसे पहला है और सबसे अधिक जानने वाला है।

ला तुतिअ कुल्लहल्लाफ़म् महीन्। (क़लम १०)

बहुत क़समें खाने वाले के कहने में न आओ।

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। (ऋ० १-४१-८)

अच्छे लोगों को कष्ट देने वाले और शपथ खाने वाले का मैं विश्वास नहीं करता।

ला तल्बिसुल् हक्क़ बिल् बातलि, व तक्तमुल् हक्क।

दृष्ट्वारूपेव्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः अश्रद्धामनृते दधाच

कुरान

(बक़र ४२)

सत्य के साथ असत्य न मिलाओ। सत्य को न छिपाओ।

वेद

श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः। (यजुर्वेद १९-७७)

ईश्वर ने सत्य और असत्य के तथ्य को समझकर सत्य को असत्य से अलग कर दिया। उसकी आज्ञा है कि सत्य में श्रद्धा करो। असत्य में अश्रद्धा करो।

व अन्तुं ततलूनल् किताब। अ फ़ लाताकिलून। (बक़र ४४)

तुम किताब पढ़ते हो। क्या समझते नहीं।

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचम्। उत त्वः शृण्वन्न शृणोत्यंनाम। (ऋग्वेद १०-७१-४)

मूर्ख लोग वाणी को देखते हुये नहीं देखते और सुनते हुये नहीं सुनते।

उलायिकल लज़ीन शतरुल् ह्यातद् दुनिया बिल आखिरति फ़ ला युखफ़्फ़ु अनहुमुल् अज़ाबो। व लाहुँ युन्सुरून। बक़र ८६)

जिन्होंने परलोक को बेच कर यह लोक खरीदा। उनके दुःख कम न होंगे न उनको मदद मिलेगी।

महेचन त्वामद्रिवः पराशुल्काय देयाम्। न सहस्राय नायुताय बज्रिवो न शताय शतामघ। (ऋ० ८-१-५)

हे एक रस प्रभु, मैं तुझे किसी मूल्य के लिये न त्यागूं। न हज़ार को लिये, न अरब के लिये, न सैकड़ों लोगों के लिये तू बहुमूल्य या अमूल्य है।

कुरान	वेद
व ला तज़िरो वाज़िरतुन् वज़्र उखरा। (अनआम १६५)	स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व। (यजु० २३-१५)
कोई बोझ ढोने वाली दूसरे का बोझ नहीं उठाती।	तू ही स्वयं कर्म कर। तुही उसका फल भोग।
व कुल आमिलू फ़ यसयरय ल्लाहो अमलकुम्। (तोबा १०५)	कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषे च्छतं समाः। (यजु० ४०-२)
कह दे कि कर्म करो। ईश्वर तुम्हारे कर्म को अवश्य देखेगा।	कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष व्यतीत कर।
ली अमली व लकुं अमलकुम्। (यूनस ४१)	
मेरा कर्म मेरे लिये। तुम्हारा कर्म तुम्हारे लिये।	
इन्नल्लाह ला यज़्लिमुन्नास शैयन् व लाकिन्नन्नास अन्फ़सहुँ यज़्लिमून। (यूनस ४४)	क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे। मृला सुक्षत्र मृलय। (ऋ० ७-८९-३)
खुदा किसी पर कुछ जुल्म नहीं करता। लोग अपने ऊपर जुल्म करते हैं।	हे महान् और पवित्र प्रभो। हम अपनी मूर्खता से कुमार्ग पर चलते हैं। हे रक्षक। हम पर दया करो।
इन्नल् नफ़सल् अम्मारा	अचित्ती यत् तव धर्मा

कुरान

बिस् सूये। (यूसुफ ५३)

हमारी कुवासना ही हम को कुमार्ग में ले जाती है।

वेद

युयोपिम। (ऋ० ७-८९-५)

हमारी बुरी प्रवृत्ति ही हमको आपके धर्मों से विचलित करती है।

कुलिरूहोमिन् अम्रि रब्बी। व मा यूतीतुं मिन ल् इल्मि इल्ला क़लीलन्। (बनी इस्राईल ८५)

कह दे कि जीव मेरे स्वामी का आदेश है। तुमको इसका बहुत कम ज्ञान दिया गया है।

अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः। (ऋ० १६४-३०)

जीव अमर है। नश्वर शरीर में आकर प्राणी बन जाता है।

वल्लाहो अख़्जकुं मिन् बुतूनि उम्महातिकुं ला तालिमून शैयन् व जअल लकुमस्समअ वल् अब्सार वल् अफ़िदत ल अल्लकुं तश्कुरून। (नहल ७८)

अल्लाह ने तुमको तुम्हारी माओं के पेट से निकाला। इसका तुमको कुछ ज्ञान न था। फिर तुम्हारे कान, आँख, दिल बनाये कि तुम कृतज्ञता प्रकट करो।

यईं चकार, न सो अस्य वेद यईं ददर्श हि रुगिन्नु तस्मात् स मातुर्योना परिवीतोऽन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश। (ऋ० १-१६४-३२)

जो पिता गर्भ धारण कराता है वह नहीं जानता। जो गर्भ को देखकर अनुमान करता है वह भी नहीं जानता कि भीतर क्या है? जीव जो माता के पेट में गुप्त है वह बहुत जन्म लेता है और अपनी माता के पेट में प्रवेश करता है।

क़ुरान

ला तनालुल् बिर्रं हत्ता तुन् फ़िक़ू मिमा युहिब्बून । (आल अमरां ९२)

तुमको पुण्य नहीं मिल सकता जब तक कि तुम अपनी प्यारी कमाई में से दान न करो ।

वेद

केवलाघो भवति केवलादी । (ऋ० १०-११७-६)

जो अकेला खाता है वह पाप खाता है ।

क़ुरान

अल्लज़ीन युन्फ़िक़ून फ़िस्सर्रांय वज़् ज़र्रांयि वल काज़िमीनल् गैज़ वल् आफ़ीन अनिन्नामि । वल्लाहो युहुब्बुल् मुहांसनीन । (आल अमरां १३४)

जो अमीरी में और गरीबी में दान करते हैं । क्रोध को क्षमा करते है । ईश्वर ऐसे भद्र लोगों से प्यार करता है ।

वेद

स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय । अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् । (ऋ० १०-११७-३)

जो भूखों और असहायों को दान देता है वही पुण्यशील है । उसी का भला होता है । शत्रु भी उसका मित्र बन जाता है ।

क़ुरान

फ़ अम्मल् यतीम । फ़ ला तक़्हर । व अम्मस् सायिल फ़ ला तन् हर् । व अम्मा बिनियामति रब्बक फ़हद्दस् । (जुहा ९, १०-११)

जो अनाथ है उस पर अत्याचार मत करो । जो

वेद

य आध्राय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे । स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतोचित् स मर्डितारं न विन्दते । (ऋ० १०-११७-२)

जो रक्षा के पात्र अनाथ, अन्न चाहने वाले भूखे को अन्न

कुरान	वेद
मंगता है उसको मत झिड़क। ईश्वर की कृपाओं का वर्णन कर।	होते हुये भी अन्न नहीं देता या उपेक्षा करता है। स्वयं कठोर हृदय होकर खाता रहता है उसको विपत्ति आने पर कोई सुख नहीं मिलता।
ला तावुदून इल्लल्लाहि। (बक़र ८-३) ईश्वर के सिवाय किसी को मत पूजो।	य एक इत्। तमुष्टिहि। (ऋ० ६-४५-१६) वह एक ही है। उसी को पूजो।
व बिल वालिदैन अह्सानन् (बक़र ८३) माँ बाप का अहसान मानो।	अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। (अथर्व वेद ३-३०-३) पिता के व्रतों को अनुसरण करो। माता से प्यार करो।
कूलुन्नास हुसनन् (बक़र ८३) लोगों से मीठा बोलो।	अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत। (अथर्व० ३-३०-५) अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या। (अथर्व० ३-३०-५) एक दूसरे से ऐसा व्यवहार करो जैसे गाय अपने नवजात शिशु से करती है।

कुरान

यस् अलूनक अनिल् खम्रि वल् मैसिरि। कुल् फ़ीहिमा इस्मुन् कबीरुन्। (बक़र २१९)

तुझसे शराब और जुये के विषय में पूछते हैं। कहदे यह दोनों महापातक हैं।

वेद

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व। (ऋ० १०-३४-१३)

जुआ मत खेल! खेती कर।

परिशिष्ट २

बिखरे अक्षर (मुक़त्तिआत)

कुरान शरीफ़ में कुछ सूरतों के आरम्भ में कुछ अक्षर पढ़े जाते हैं। यह न तो वाक्य हैं न इनके कुछ अर्थ हैं। यह अक्षर अलग-अलग करके पढ़े जाते हैं। इनको मिलाकर वाक्य या शब्द नहीं बनते। प्रसिद्धि है कि इनके अर्थ अल्लाह ने किसी को नहीं बताये और न हज़रत मुहम्मद साहेब ने इनका स्पष्टीकरण किया। भाष्यकारों ने कुछ अटकलें लड़ाई हैं। परन्तु उनका कोई प्रतिफल नहीं निकला। हमारी समझ में यह नहीं आता कि यदि खुदा को इन अक्षरों के अर्थ बताना अभीष्ट न था तो इन अक्षरों का पढ़ना क्यों आवश्यक समझा गया? हम जो कुछ यहाँ लिख रहे हैं उसके लिये हमारे पास न कोई युक्ति है न प्रमाण। केवल अनुमान है। और हमारा अभिप्राय यह है कि संभव है कि कोई विद्या-प्रिय अनुसन्धाता हमारे संकेतों के आधार पर कोई अच्छी चीज़ निकालने में सफल हो जाय।

इन अक्षरों को क़ुरान की परिभाषा में *मुक़त्तिआत* (बिखरे अक्षर) कहा गया है क्योंकि यह अक्षर किसी शब्द या संदर्भ से अर्थ का सम्बन्ध नहीं रखते।

यह अक्षर यह हैं :—

(१) अ, ल, म (अलिफ़, लाम्, मीम्) यह सूरत बक़र, आलअमरां, अंकबूत, रूम, लुकमान और सिजदा के आरम्भ में पढ़े जाते हैं।

(२) अ, ल, म, स (अलिफ़, लाम्, मीम्, स्वाद) सूरत एराफ़ के आरम्भ में।

(३) अ, ल, रा (अलिफ़, लाम्, रा) सूरत यूनस, हूद, यूसुफ़, इब्राहीम, हजर के आरम्भ में)

(४) अ, ल, म, रा (अलिफ़, लाम्, मीम्, रा) सूरत राद के पहले।

(५) क, हा, या, ऐन स (काफ़्, हा, या, एन्, स्वाद) सूरत मरियम के पहले।

(६) ता, हा सूरत ताहा के पहले।

(७) ता, स, म (ता, सीन, मीम) सूरत शुअरा और क़सस के पहले।

(८) ता, सीन सूरत नमल के पहले।

(९) या, सीन सूरत यासीन के पहले।

(१०) स्वाद, सूरत स्वाद के पहले।

(११) हा, मीम् सूरत मोमिन्, हामुस्सिजदा, शूरा, जख़रफ़, दुःखान, अल् जासियता के पहले।

(१२) हा, मीम्, एन, सीन, क़ाफ़, सूरत शूरा के पहले।

(१३) काफ़, सूरत क़ाफ़ के पहले।

(१४) नून, सूरत क़लम के पहले।

इस प्रकार यह १४ बिखरे अक्षर हैं जो २८ सूरतों के आरम्भ में पढ़े जाते हैं। शेष ८६ सूरतों के पहले इस प्रकार का कोई अक्षर पढ़ा नहीं जाता। कुरान के पढ़ने वाले, अ, ल, म को मिलाकर 'अलम' नहीं पढ़ते अपितु 'अलिफ़ लाम, मीम' ऐसा पढ़ते हैं। इन अक्षरों को अलग-अलग गिना जाय तो इनकी संख्या १४ होती है अर्थात् अलिफ़, लाम, मीम, स्वाद, रा, काफ़, हा, या, ऐन, ता, हा, सीन, क़ाफ़, नून।

प्रश्न यह है कि जिन सूरतों के पहले यह 'मुक़त्तिआत्' अक्षर पढ़े जाते हैं उन सूरतों में क्या विशेष बात है जिसके कारण इन अक्षरों का पढ़ना आवश्यक समझा गया? उदाहरणार्थ यह देखना है कि सूरत यूनस, हूद, युसुफ़, इब्राहीम, हजर में कौन सी विशेषता है कि इनके आरम्भ में 'अलिफ़, लाम्, रा' पढ़ा जाय, अथवा बक़र, आल अमरां अंकबूत, रूम, लुक़मान और सिजदा नामक सूरतों में कौन सी बातें हैं कि इनके पहले अलिफ़, लाम्, मीम् पढ़ा जाय?

भारतवर्ष के मतमतान्तरों के धार्मिक ग्रन्थों में हम इस प्रकार के अक्षरों का प्रयोग देखते हैं। कुछ तो वाम-मार्गीय तन्त्रों में हैं। वहाँ ह्रीं, क्लीं, आदि अक्षरों का पाठ होता है। केवल आतंक के लिये। अर्थ कुछ नहीं। हमने कुछ साधू सन्त गुरुओं और शिष्यों को यह कहते सुना है कि बिना अर्थ समझे मंत्रों का पाठ या जाप करने से आध्यात्मिक लाभ अधिक होता है। अर्थ समझने पर वह लाभ नष्ट हो जाता है। बहुत से गुरु लोग निरर्थक, बे जोड़ मंत्र बनाकर अपने चेलों को दे देते हैं। हमने कई श्रद्धालु विद्वानों को ऐसे मंत्रों का जाप करते देखा है। वेदों में इस प्रकार के जाप को निरर्थक, जघन्य और त्याज्य बताया है। जो मनुष्य वेद मंत्रों को बेसमझे पढ़ता है वह दूध न देने वाली गाय को पालता है या पत्ते, फल, फल से रहित वृक्ष को सींचता है (देखो ऋग्वेद, मंडल १०, सूक्त ७१, मंत्र ५) । वह उस चौपाये के समान है जिस पर किताबों का बोझ लदा हुआ है।

संस्कृत में कुछ एकाक्षरी कोष हैं। जो लाघव के लिये प्रयुक्त होते हैं। उनके अर्थ हैं। 'मुकत्तिआत्' अक्षरों से जो अक्षर मिलते जुलते हैं उनके कतिपय अर्थ नीचे दिये जाते हैं। यह नहीं कह सके कि इनके बीच में कोई निकटस्थ या दूरस्थ सम्बन्ध है या

नहीं। अरबी और संस्कृत भाषाओं में कभी किसी प्रकार का सम्बन्ध था या नहीं यह एक अनुसंधान का विषय है। साधारणतया आधुनिक भाषा-विज्ञों का कथन है कि संस्कृत आर्य-भाषा है और अरबी सामी भाषा। यह भेद कब उत्पन्न हुआ? साम नूह के बेटे का नाम है। इनके नाम पर 'सामी' नाम पड़ा। क्या नूह के बापदादे कोई ऐसी भाषा बोलते थे जिसका सम्बन्ध संसार की अन्य भाषाओं से था? हर अवस्था में अन्वेषण के लिये अधिक सामग्री चाहिये। यहाँ हम केवल संस्कृत अक्षरों के अर्थ देते हैं :—

अरबी अलिफ़ = संस्कृत 'अ' ईश्वर को अकार इसलिये कहते है कि संसार का आरम्भ उसी से होता है। अर्थात् आदि मूल।

अरबी लाम् = संस्कृत 'ल'। अर्थ = प्रकाश या प्रकाश स्वरूप।

अरबी मीम् = संस्कृत 'म'। कल्याण कारक।

अरबी स्वाद = संस्कृत धा (?) सहारा देने वाला। (अरबी सीन और अरबी 'स्वाद' के उच्चारण में भेद है। 'स्वाद' को हमने 'धा' समझा है और 'ज्वाद' को 'दा'। क्योंकि ज्वाद को कहीं-कहीं 'द्वाद' बोलते हैं।

अरबी रा = संस्कृत 'रा'। धन या सम्पत्ति। धन देने वाला।

अरबी काफ़ = संस्कृत 'क' = प्रजापति। संसार का स्वामी।

अरबी हा = संस्कृत 'हा'। दुःख दूर करने वाला।

अरबी 'या' = संस्कृत 'या'—यश या बुद्धिमत्ता।

अरबी क़ाफ़ = संस्कृत 'ख'। सर्वव्यापक। सब जगह मौजूद।

अरबी 'नून' = संस्कृत 'ना' = नेता या लीडर।

अरबी के ऐन, हुत्ती वाले ह (या जीभ के पास क ह), और 'तो' के विषय में हम कोई अनुमान नहीं लगा सके।

यह पूरा विषय अनुसन्धान के योग्य है। यदि संस्कृत और अरबी के विद्वान गहरा अवगाहन करेंगे तो अरब देश और भारत के प्राचीन सम्बन्ध पर पर्य्याप्त प्रकाश पड़ेगा। भारतीय प्राचीन संस्कृति और अरब की इस्लामी संस्कृति दोनों के संपोषक एक बात तो स्वीकार ही करते हैं कि मानव सृष्टि आरम्भ में एक थी। फिर विभक्त हो गई। मुसल्मानों का भी यह दावा नहीं है कि अरब वाले जैसे आदम की सन्तान हैं वैसे भारतीय नहीं हैं। जब आदि स्रोत एक हुआ तो मौलिक सम्बन्ध के मानने में कोई आपत्ति नहीं रहती।

वैदिक साहित्य प्रचार की

सबसे पुरानी !

सबसे प्रसिद्ध !!

सबसे प्रिय संस्था !!!

ट्रैक्ट विभाग, आर्य समाज चौक,

इलाहाबाद

[स्थापित १९२३ ई०]

सम्पादक

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०

लगभग १०० ट्रैक्ट हिन्दी, १५ उर्दू, १३ अंगरेजी बीसियों छोटी बड़ी अन्य पुस्तकें।

हमारी सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि ट्रैक्टों की लाखों प्रतियाँ हर वर्ष वितरण हो जाती हैं।

हिन्दी ट्रैक्टों की सूची प्रथममाला

मूल्य ५) सैकड़ा

१. ईश्वर और उसकी पूजा
२. हमारे बच्चों की शिक्षा
३. प्राचीन आर्यावर्त
४. हमारे धर्मशास्त्र
५. हमारा धर्म
६. घर की देवी
७. राजा और प्रजा
८. हमारी देश सेवा
९. हमारे बिछुड़े भाई
१०. सच्ची बात
११. हमारा संगठन
१२. मुसल्मानी मत की आलोचना
१३. राम भक्ति का रहस्य
१४. हमारे स्वामी
१५. ईसाई मत की आलोचना
१६. कुम्भ माहात्म्य
१७. देवी देवता
१८. धार्मिक भूल भुलैयाँ
१९. जिन्दा लाश
२०. हमारा भोजन
२१. दलितोद्धार
२२. वैदिक सन्ध्या
२३. हवन विधि
२४. प्रार्थना भजन
२५. वैदिक प्रार्थना
२६. वेदोपदेश
२७. मूर्ति पूजा
२८. अवतार
२९. आर्य समाज क्या है ?
३०. जीव रक्षा
३१. नशा
३२. अछूतों का प्रश्न
३३. ब्रह्मचर्य
३४. हमारा बनाने वाला
३५. संस्कार
३६. आनन्द का श्रोत
३७. हिन्दुओं के साथ विश्वासघात
३८. स्वामी दयानन्द की दो भारी भूलें
३९. हिन्दू जाति का भयंकर भ्रम
४०. मुसल्मान भाइयों के सोचने योग्य बातें
४१. कलियुग
४२. ग्रहण
४३. साधु सन्यासी
४४. जीव क्या है ?
४५. गुरु माहात्म्य
४६. पुनर्जन्म

४७. अद्भुत चमत्कार
४८. पितृ यज्ञ
४९. लोग क्या कहते हैं ?
५०. स्वामी दयानंद की सूक्तियाँ
५१. ईश्वर और जीव का सम्बन्ध
५२. पंच यज्ञ महिमा
५३. वेदों में ईश्वर का स्वरूप
५४. यज्ञोपवीत और जनेऊ
५५. दलित जातियाँ और नया प्रश्न
५६. धर्म से होने वाली कल्पित हानियाँ
५७. भेड़िया धसान
५८. आर्य समाज की सार्वजनिकता
५९. यज्ञ के सामान्य मंत्र
६०. वैदिक त्रैतवाद
६१. ईसाई मत की समीक्षा (खुदा का बेटा)
६२. तुम कौन हो ?
६३. तुम्हारी भाषा क्या है ?
६४. तुम्हारा धर्म क्या है ?
६५. शुद्धि पद्धति
६६. मुर्दा क्यों जलाना चाहिये
६७. गाजी मिया की पूजा और हिन्दू

हिन्दी ट्रैक्टों की सूची द्वितीय माला

मूल्य २॥) सैकड़ा

१. मौलवी साहब और जगत सिंह
२. हिन्दू स्त्रियों की लूट का कारण
३. हिन्दुओ जागो
४. हिन्दू धर्म का नाश
५. हिन्दू जाति के रक्षा का उपाय
६. दान की दुर्गति
७. विधवायें और देश का नाश
८. दहेज
९. दुखदाई दुर्व्यसन
१०. मस्जद के सामने बाजा
११. हिन्दू मुसल्मानों के मेल का प्रश्न
१२. हिन्दुओं का हिन्दुओं के साथ अन्याय
१३. स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान
१४. हिन्दुओं पर एक नई आफत

१५. आदि हिन्दूसभा क्या है ?
१६. आदि हिन्दू कौन है ?
१७. शारदा एक्ट क्या है ?
१८. आर्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन का अंतिम पाठ
१९. डा० अम्बेदकर की धमकी
२०. हिन्दू संगठन का मूल मंत्र
२१. आर्य गीतावली
२२. आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग
२३. शिवलिंग पूजा पर शास्त्रार्थ
२४. कीर्तन
२५. ऋग्वेद का अंतिम सूक्त
२६. भगवान की याद
२७. ईसाई क्यों बनते हो ?
२८. देवी पर बलि

उर्दू के ट्रैक्ट

२'५० सैकड़ा, ३ नये पैसे प्रति

१. दस अहकाम
२. आर्य समाज क्या है ?
३. इल्मे इलाही का पहिला सबक
४. कलामे इलाही (ईश्वर की वाणी)
५. वहदत इलाही
६. चूहे की कहानी
७. तीन बागे
८. इस्मे आजम (ओ३म्)
९. महाव्याहृतियाँ
१०. अहिंसा या अदमे अनाद
११. गायत्री
१२. जन्नत का बाग और दोजख की आग
१३. गोश्त और गोश्त खोरी
१४. बातिल परस्ती
१५. नमस्ते

अन्य धार्मिक पुस्तकें

१. मीमांसा प्रदीप	६ ००
२. कर्म फल सिद्धान्त (हिन्दी तथा उर्दू)	१'००
३. वेद और मानव कल्याण	०'३७
४. वैदिक विवाह पद्धति	०'३७
५. वैदिक उपनयन पद्धति	०'३७
६. अथ ऋषि तर्पणम् प्रथम भाग	०'३
७. ,, ,, द्वितीय भाग	०'६

मैनेजर—ट्रैक्ट विभाग, आर्य समाज चौक, इलाहाबाद ।

अँग्रेजी ट्रैक्टों की सूची

मूल्य ५) सैकड़ा

1. The Arya Samaj Introduced.
2. The Vedic Conception of God.
3. The Five Great Sacrifices of the Arya Samaj.
4. Claims of the Arya Samaj.
5. Between Man and God.
6. The Great Bug Bear.
7. The Vedic View of Life.
8. Vedic Woman-Hood.
9. Shuddhi.
10. The Arya Samaj and Depressed Classes.
11. The Arya and Hinduism.
12. The Arya Samaj and Christianity.
13. The Arya Samaj and Mohammadans.

Religious Renaissance Series. Price 2·50 nP.

1. Reason and Religion.
2. Swami Dayananda's Contribution to Hindu Solidarity.
3. I and My God.
4. Origin and Scope and Mission of the Arya Samaj.
5. Worship.
6. Humanitarian Diet
7. Christianity in India.
8. Superstition.
9. Marriage and Married Life.
10. Agnihotra. 0·12 nP.

मैनेजर—ट्रैक्ट विभाग, आर्य समाज चौक, इलाहाबाद ।

'इस्लाम के दीपक

लेखक के अमर ग्रन्थ "मसाबीहुल इस्ला[illegible]
हिन्दी अनुवाद है। इसका प्रकाशन इस उद्देश्य से किया
गया है कि एक ओर पाठक को इस्लाम धर्म का पूरा
परिचय मिल जाय, दूसरी ओर जो खाई इस्ला[illegible] तथा
अन्य धर्मावलम्बियों के बीच में बनी है उसकी पूर्ति हो
सके।

इस ग्रन्थ में इस्लाम के ताने के साथ वैदिक धर्म
तथा विगत १४०० वर्षों के संसार भर के धार्मिक उतार
चढ़ाव का बाना इस प्रकार बुना गया है कि वैदिक
सिद्धान्त की गूढ़ गुत्थियाँ सुगमता से खुल जाती हैं।

—:o:—